मीरा : लोकतात्त्विक अध्ययन

आवरण चित्र साभार
श्री सुरेश शर्मा

सघी प्रकाशन
जयपुर उदयपुर

मीरां : लोकतात्त्विक अध्ययन

प्रकाशक विजेन्द्र कुमार सघी
सघी प्रकाशन
सी 177, महावीर माग,
मालवीय नगर
जयपुर

शाखा 53, बापू बाजार,
उदयपुर-313001

मूल्य एक सौ रुपये
संघी प्रकाशन, जयपुर-उदयपुर द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण 1989
/कोचरा प्रिंटर्स मोहन पार्क दिल्ली 110032 में मुद्रित

MEERA LOKTATTVIK ADHYAYAN
by Dr Alam Shah Khan

Rs 100 00

समर्पित

प्रथम गुरु श्री पुरुषोत्तम लाल जी तिवारी

को

इस भावना से—

मेरा मुझ मे कुछ नही
जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझ को सौपता
क्या लागै है मोर।

—कबीर

प्रस्तावना

मीरा राजस्थानी साहित्य मे एक ऐसी भक्त हुई है कि जिसका व्यक्तित्व दो बड़े राजघरानो के बीच सेतु बन रहा है। तथापि दोनो मे से किसी ने भी उसके व्यक्तित्व या उसकी भक्ति के दस्तावेजी सबूत सहेज कर नही रखे। मीरा की भक्ति गरिमा का अनुमान इसी तथ्य से किया जा सकता है कि अपने जीवन काल मे ही गुजरात से वृन्दावन तक और सुदूर पूरब मे काशी और बगाल के बाउलो तक उसके पद गाये जाने लगे थे।

ऐसा क्या था मीरा की भक्ति मे, उसके जीवन की परिस्थितियो और घटना क्रम मे कि एक ठाकुर घराने की कन्या, मात्र पैंतालीस वर्ष की होते होते भावना रूप होकर मृत्युञ्जयी बन गयी, कालजयी हो गयी।

यह सवाल लम्बे अरसे से मन माथे मे घुमड़ रहा था। अतः निश्चय किया कि मीरा के प्रामाणिक माने-जाने वाले पदो को लेकर एक अध्ययन के द्वारा यह खोजने का प्रयास किया जाय कि किन किन तत्त्वो विशेषताओ के रहते कोई सत, कोई भक्त या वीतरागी अपने देश-काल की सीमाओ को लाँघ कर सर्वदेशीय और सर्वव्यापी हो जाता है।

यो तो मीरा को लेकर काफी ऐतिहासिक विवेचन हुआ है उसके देशव्यापी पदो को छान कर प्रामाणिक अप्रामाणिक का विभेदीकरण भी किया गया है, उस पर पूर्ववर्ती भक्तो सतो एव कवियो के प्रभाव की छाप को पहचानने के प्रयत्न भी किये गये है, उसके पदो को काव्य शास्त्र की कसौटियो पर कस कर यह सिद्ध करने की कोशिश भी की गयी है कि वह कवयित्री थी या नही वह भक्त थी या नही यदि वह स्वय भी थी या नही ?

इस प्रकार के साहित्यिक ऊहापोह और अनुमानो के चक्कर मे न पड कर प्रस्तुत अध्ययन मे यह जानने का प्रयास किया गया है कि दो सुरमूलीय राजघरानो ने अमरत्व को प्राप्त मीरा जैसे व्यक्तित्व के जनक होने का गौरव भाव जानबूझ कर क्यो छोड दिया ?

यह खोजने का प्रयत्न भी किया गया है कि वे कौन-सी सामाजिक, सास्कृतिक

एव मनोवैज्ञानिक गुत्थियाँ थीं जिनके रहते मीरा के विशिष्ट, अन्तर्मुखी, हठीले और अक्खड़ व्यक्तित्व का गठन हुआ था। तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक एव आध्यात्मिक-लौकिक धरातल के साथ मीरा के व्यक्तित्व का समीकरण बिठाने का प्रयत्न भी इस अध्ययन मे किया गया है, जिसे अपने ढग का प्रथम व्यवस्थित प्रयास कहा जा सकता है।

मीरा के व्यक्तित्व को चरण बद्ध करके देखने के इस प्रयास मे उसके रचनाकार के स्वरूप को समझने की एक दृष्टि उभरती है, किंतु यहाँ गहराई मे न जाकर उसकी ओर सकेत मात्र किये गये हैं।

इस अध्ययन का मुख्य लक्ष्य लोक साक्ष्य म मीरा और मीरा मे लोक साक्ष्य की तलाश है। साथ ही यह भी देखना है कि मध्यकालीन वजनाओ मर्यादाओ से बँधी एक राजवधू, वह भी विधवा बागी बन कर लोक मे ऐसे कैसे रलमिल गयी कि मीरा म लोक और लोक म मीरा मूत हो उठी। वस्तुत मीरा हिन्दी देश की प्रथम जन-कवयित्री है और उसका काव्य कबीर के साथ, प्रथम जन काव्य। इसलिए प्रस्तुत अध्ययन मे शास्त्रानुगमन एव चिन्तन नही है, यदि कुछ है तो लोक धरातल पर मीरा काव्य की परख का प्रयास। आशा है, इससे मीरा को समझने की एक और दिशा मिल सकेगी।

15 अगस्त, 1987 —आलम शाह खान

'आँगन छाया
23, सुन्दर वास (उत्तरी)
उदयपुर-313001 (राज०)

विषय सूची

1 मीरा एव उसका युग

पृष्ठ भूमि

अजमेर दिल्ली के चौहानो, कनौज के गहरवालो, गुजरात मालवा के सोलकियो परमारो का पतन होने पर 15वी सदी के अतिम चरण मे मारवाड-मेवाड मे राठौडो गुहिलो का वचस्व बढ गया।1(5) इन दो राजपूतवशो के जोर पकडने का यह परिणाम हुआ कि दिल्ली के सुलतानो की राज्य सीमा सिकुड गयी और यह स्थिति आ गयी कि, "राजधानी दिल्ली के पश्चिमी दरवाजे दोपहर की नमाज के बाद ब द कर दिए जाते थे। उसके बाद उस ओर से न कोई शहर म आ सकता था न बाहर जा सकता था, उस नमाज के समय मेवाती लोग बहुधा सरे हौज पर आ-जाते थे और पानी भरने वालो के बतन-कपडे तक छीनकर ले जाते थे।2(105)

मेवाड के महाराणा कुभा (विक्रमी 1525 मे मृत्यु) और राणा रायमल की (विक्रमी 1565 मे) मृत्यु के समय गुहिल राणाओ के लिए 'हिन्दूपत पातशाह', 'हिदुवा सूरज', 'परमेश्वर', 'राजे द', जैसी उपाधिया अभिलेखो मे आती हैं, 3(13) जबकि जोधपुर और मेडता के राठौडो के लिए 'राव' की उपाधि लगती थी।4(22-23) अर्थात पश्चिमी भारत की राजनीतिक मर्यादाएँ इस तरह से गुँथ चली थी कि गुजरात मे पठान शासक 'सुल्तान' हो गए थे, मालवा मे भी वे 'सुलतान' हो गये थे, मेवाड मे 'महाराणा' थे जो वस्तुत अपने को 'दीवाण' कहते थे, मारवाड मे 'राव' थे और धुर पश्चिम मे भाटी राजपूत भी 'राव' कहलाते थे। बीच के छोटे-मोटे सामत, जागीरदार, ठिकानेदार कोई राव' कोई रावराजा, कोई रावल, कोई 'सरदार' कहलाते थे।

सम सामयिक गुजरात राजस्थान की सास्कृतिक भूमिका कुछ इस तरह की थी।5(8 9) —

(1) राठौडो तथा गुहिलौतो का मूल स्थान गुजरात, काठियावाड, मे था और कम से कम 18वी सदी तक गुजरात राजपूताने की सास्कृतिक और भाषातात्विक विशेषताओ मे समता मिलती है।5(8) हमे पता है कि 8वीं विक्रमी मे बप्पा रावल

ने मेदपाट का इलाका जीतकर गुहिलोत राज्य की नीव डाली थी। जो अगले 700 800 वर्षों मे फैलकर इतना बडा हो गया था कि उत्तर मे वह आगरा को छूता था पूव मे अजमेर-थोनगर को पश्चिम म बदायू को और दक्षिण म गिरनार की सीमा छूता था। उस वश की अद्वितीय प्रतिष्ठा थी और इतना मान था कि पडोसी राजा और राजपूतवश के लोग नजराने मे महाराणा को अपने कुल के 10,000 50 000 सिर नजरान मे देने की प्रतिज्ञा करते थे। 1(32 32)

हमे यह भी पता है कि राव सीहा ने पवारो व भण्डारे को जीतकर जिम राठौडी राज्य की स्थापना की थी, वह 200 300 वर्षो मे गगानगर स सिरोही और ईडर तक फैल गया था और इस तरह से पश्चिमी भारत के पूरे भाग पर राठौडो का नियत्रण हो गया था। दिल्ली और गुजरात के बीच मालवा होकर जाने के अलावा सारे रास्ते या तो गुहिलोतो या राठौडों के राज्यो मे से होकर जाते थे। ये रास्ते सदा व्यापारियो, साधुसतो, शिल्पियो और अश्वविक्रेताओ से व्यस्त रहने वाले माग थे जिन पर राठौर यशी छोटे मोटे रावल, लोगो की रक्षा भी करते थे और अवसर पडने पर लूटमार भी करते थे4(38)।

(2) राजपूती जीवन सदा तलवारो की झकारो के बीच, घोडा की पीठ पर और युद्ध तथा सघर्षो के बीच बीतता था। घर पर रहना, सामाजिक या धार्मिक कामो मे मन लगाना न तो गुहिलोना म प्रमाणित है, न राठौडो मे। हा, छोटे मोटे जागीरदार, सूबेदार या ठिकानेदार कभी-कभार आलस और अमल पानी का सुख उठा लेत थ 5(36-37)। राजपूती वीरो की दिनचर्या इतनी युद्ध सकुल होती थी कि उन्हें स्त्रियो और उनकी गतिविधिया पर व्यक्तिगत ध्यान देने की फुरसत ही नहीं होती थी। उस समाज मे राजपूत घराने की पत्नियाँ या तो नजराने मे आई हुई भेंट होती थी या फिर युद्ध और सधि के नतीजे में आई हुई 5(8 9)। उनक साथ दायजियो, दासियो के जचे भी हुआ करत थे और इस तरह की स्त्रिया स बडे सामता और राजाओ के अन्त पुर भरे रहते थे, जो आपस म एक दूसरी की भाषा भी नहीं समझ पाती थी। खुद महाराणा सागा की 27 रानियाँ थीं 1(87), जो हाडा, राठौड, चौहान, सेराड, देवडा, तवर, सोलकी, वागडिया चौहान, साकला, ईडरिया राठौड घरानो से थी। जिस राव, राजा और महाराणा का जितना शौय और प्रताप होता था उसके अन्त पुर मे स्त्रियो की उतनी ही भरमार होती थी।

बताया जाता है कि राजपूतो का पारिवारिक जीवन लगभग शून्य होता था। किसी राव या राजा को जब अपने महलो म रात बितानी होती थी तो अन्त पुर के रक्षक से पता किया जाता था कि किस रानी के यहाँ समय बिताया जा सकता है? तदनुसार सूचना होती थी और उस रानी के महल म चहल पहल हो जाती थी। दासियाँ कासा बनाती थी, समय होने पर सरदार वहाँ पहुँचते,

जीमण चाटण, पासा चौपड होता और मनोरंजन का वातावरण बनता था 5(37)। रानियों का पद और गौरव राजनीति और युद्ध के वातावरण से बंधा रहता था। वे रानियाँ अपने निर्वाह और व्यय के पृथक साधन भी रखती थीं—अपने पास आभूषण, नकदी, हीरे, जवाहरातों का संचय करती रहती थीं। ताकि वक्त-जरूरत काम आए 5(38)। ऐसे प्रमाण भी हैं कि जब ससुराल में निभाव न हो तो पीहर वाले अपनी कन्या के निर्वाह की व्यवस्था करते थे। राणा सांगा की एक बहिन आनंदाबाई का विवाह सिरोही के राव जगमाल के साथ हुआ था। उसका वहाँ निभाव नहीं हुआ तो सांगा के भाई पृथ्वीराज ने 1566 विक्रमी में जगमाल को अपमानित करके उसे अपनी बहन के चरण चूमने को मजबूर किया था 1(39 40)। उसी तरह पृथ्वीराज गिरनार के यादव राजा मंडलीक के यहाँ से अपनी बुआ—रमाबाई—को मेवाड़ ले आया था और उसके निर्वाह के लिए जावद का परगना निर्धारित किया था।1(30)।

इससे पता लगता है कि राजपूत राज घरानों में रानियों की प्रतिष्ठा और मर्यादा स्थिर नहीं होती थी। अपनी संतान के लिए कई बार उन्हें कूटनीतिक-योजना भी करनी पड़ती थी। हाड़ी रानी करमैती ने इसी तरह योजना करके अपने पुत्रों—विक्रमाजीत और उदयसिंह—के लिए राणा सांगा से रणथम्भौर का इलाका निर्धारित करवा लिया था और मेवाड़ की कुल परम्परा के विरुद्ध अपने भाई सूरजमल हाड़ा को उनका संरक्षक बनवाया था। (17-18)। ऐसे प्रमाण भी हैं जहाँ राव या राजा के साथ वीर पत्नी युद्धरत भी रहती थी। सांगा के भाई पृथ्वीराज का पूरा जीवन घोड़े की पीठ पर बीता था और उसकी पत्नी 'तारा' उसके साथ हर युद्ध में साथिन रही थी 1(40)। बल्कि 1566 विक्रमी में वह उसके साथ सती भी हुई थी 1(40)।

अर्थात् 16वीं सदी में राजघरानों की रानियों के दो स्पष्ट कर्तव्य थे। एक तो यह कि वे अपने महल में अपनी दासियों, दावड़ियों और सेवकों के साथ अपनी मंडली बनाकर मर्यादा में जिए और जैसी राजनीतिक स्थिति हो वैसा गौरव या अवमानना सहें अथवा यह कि वे राजनीतिक दांव पेंचों का संचालन करें या पति गृह त्यागकर पीहर में रहें। पहले उदाहरण में निन्यानवे फीसदी रानियों की गिनती हो सकती है, परन्तु दूसरे उदाहरण में गिनीचुनी महिलाएं आएंगी जैसा कि मेवाड़ की हाड़ी रानी करमैती या सीसोदिन रमाबाई या आनंदाबाई 1(29, 30,40)।

(3) सोलहवीं सदी के गुजराती राजपूती समाज में पुत्रियों का जन्म नरक भोग के समान माना जाता था 5(123)। पुत्र जन्म पर चारों ओर से बधाई और नजराने आते थे मगर पुत्री के जन्म पर सब ओर मौन छा जाता था 5(121)। तथापि, राज-कुलों में पुत्री के पालन पोषण और शिक्षा-दीक्षा में कसर नहीं रखी

जाती थी। उन्हें कुल-मर्यादा, भक्ति, संगीत, नृत्य और शस्त्र-कौशल की शिक्षा पुत्रों के साथ और उनके समान ही दी जाती थी। राजपूती घरानों में कन्याओं की शिक्षा पुरोहित के सुपुर्द की जाती थी और ध्यान रखा जाता था राजकुल की मर्यादा के अनुकूल उनकी तैयारी हो 5(123)। स्वयं मीरा के लिए गूजर गौड़ पंडित गजाधर को नियुक्त किया गया था और वह तथा उसका परिवार, विवाह के बाद, मीरा के साथ चित्तौड़ भी गया था—

श्री चित्रकूट मुरलीधर नाम मूर्ति—
र्व्यासासन द्विज राज गजाधराय।
प्रददाति मीरापरयु स्वस्ति मय वामा
तस्यान्वय कुल जन प्रथमो हि व्यास ॥7(68)

यह पंडित मीरा को संगीत, वाद्य कथा, पुराण, भजन, आदि सिखाया करता था और मीरा के निज मंदिर में पूजा पाठ किया करता था। राज-कुल के चारण भाट, बच्चों को पूर्वज कथा और पारिवारिक नाते रिश्तों की बातें सुनाते थे 4(185)। घराने की बूढ़ी दासियाँ, विधवा रानियाँ अथवा रिश्तेदार महिलाएं, महलों में बच्चों की देख रेख करती थीं और उन्हें पूर्वजों की कहानियाँ सुनाया करती थीं। ऐसे प्रमाण हैं कि महलों में पुत्रों का आवागमन प्रतिबंधित रखा जाता था जबकि कन्याओं के आवागमन पर उतने प्रतिबंध नहीं होते थे। राणा रायमल के पुत्र पृथ्वीराज का आवागमन सीमित कर दिया गया था, रानी करमैती ने अपने पुत्र विक्रमाजीत और उदयसिंह को चित्तौड़ में न रखकर रणथंभौर में रखवाया था, मगर रायमल की कन्या आनंदाबाई पूरे चित्तौड़ के राज-परिवारों में निर्द्वन्द्व घूमती थी। आज भी राजपूताने में कन्याएँ नाते-रिश्तेदारों में स्वतंत्रता से आ जा सकती हैं। किन्तु राजपूत परिवारों में पुत्रों का निर्द्वन्द्व आवागमन नहीं होता। उन पर रक्षात्मक नजर रखी जाती है।

(4) राज परिवारों में पिता की अपेक्षा माता का स्थान अधिक आदरणीय और रक्षात्मक होता था। अपने पुत्रों के भविष्य की चिन्ता माता को होती थी 3(125) जबकि कन्याओं की चिंता पितृव्य जन करते थे क्योंकि उन्हें राजनीतिक मोहरों के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता था।

(5) सती होना और निर्विरोध समर्पण में रहना राजपूत रमणी का परम धर्म माना जाता था 5(125) यद्यपि सती होने का कहीं दुराग्रह नहीं मिलता। वह भावनात्मक आवेश की बात होती थी कि सत का आवेग दासियों और रखैलों तक को हो जाता था। जो रानी विधवा होकर जीवित रहना चाहती थी उसके लिए कठोर नियंत्रण होते थे। 5(127) राजस्थान की सवर्ण प्रथा में विधवा का आरंभ के 9 महीने तक 'खूणे' में यानि घर में किसी अंधकार युक्त स्थान पर रहना होता था। उस अवधि में कोई भी उसका मुख दर्शन नहीं करता था, उसे भूमिशयन और

रूखे भोजन पर जीवित रहना होता था। उसके बाद उसके पीहर वाले उसका शोक भग करते थे, उसे पीहर ले जाते थे। देव-दशन और तीथ व्रत इत्यादि करके वह वैधव्य भोगने को तैयार होती थी। बाद मे वह अपने ससुराल मे जीवन यापन करती थी। यदि वहाँ समायोजन नही हो पाता तो पीहर वाले उसके निर्वाह की व्यवस्था करते थे 5(128)।

राजपूती घरानो मे साल भर कोई-न कोई उत्सव, पव, व्रत आदि की गहमा-गहमी रहा करती थी और उस माध्यम से सारा रनिवास राग रग मे मगन रहा करता था। तीथ मेले, दशन आदि भी उनके लिए अभियानिक महत्व के होते थे 5(132)। उनका उपयोग वैर भजन के लिए, शक्ति सतुलन के लिए, या लूट-मार कन्या हरण, दप-दलन जैसे कामो के लिए होता था। उनमे राजघराने अपने प्रतिष्ठा चिह्नो के साथ, रनिवास के साथ, जाया करते थे और बल-प्रदशन करते थे (वगणावत महागाथा)।

जहाँ राज परिवार बसता था और राजधानी होती थी, वहाँ हर तरह की प्रवत्ति के केन्द्र होते थे। उसी तरह हर प्रसिद्ध तीर्थ स्थान पर हर राज्य और शक्तिशाली सामतों के स्थान होते थे 5(143)। वैसे स्थान आज भी हर तीर्थ स्थान और हर पुरानी राजधानी मे मौजूद हैं चाहे उनके स्वामी अब नही हैं। द्वारिका और गिरनार के आस पास, व दावन और मथुरा मे, पुष्कर म, उज्जयिनी और बदरगाहो पर बहुत चहल-पहल रहती थी और हर शक्तिशाली राज्य के वहाँ अपने स्थान होते थे।

(8) गांवो, शहरो और राजधानियो मे बस्ती की बसावट इस तरह से होती थी कि केन्द्र मे राजमहल और उसके चौतरफ घेरो मे सामत, मन्त्री, ब्राह्मण, व्यापारी आदि तथा बाहरी छोर परकमीन, शूद्र आदिबसे होते थे 5(146 47)। किले के पास रक्षक और विश्वसनीय लोगो को बसाया जाता था। बस्तियाँ जाति बन्द समूहा मे बसती थी। हर जाति के अपने त्योहारो, उत्सवो का आयोजन राजाज्ञा से होता था, मगर धार्मिक आयोजनो पर पाबदी नहीं थी। जब कभी राजाज्ञा से कोई आयोजन होता था तो उसका खर्चा विशेष कर लगाकर निकाला जाता था 3(148-49)। तदनुसार राजमहलो मे आयोजित आराधना, पूजा, पाठ, यज्ञ हवन सत सम्मेलन आदि के व्यय का भार प्रधान और मन्त्री जनो पर पडता था। उन्हे सब व्यवस्था पहले से या बाद मे करनी पडती थी।

(9) राज्य की गतिविधियो प्रशसा निन्दा, स्थिति, प्रतिष्ठा, निबलता, सबलता धम रुचि आदि का प्रचार करने वाले साधन औपचारिक नही थे, न उन पर राज्य का कोई नियत्रण होना था 5(153)। साधु सत चारण, भाट पुरोहित, बजारे, व्यापारी, नाई आदि चाहा अनचाहा प्रचार किया करते थ और स्वभावत वह प्रचार प्रवादो, अफवाहो, किंवदतियो के रूप म फैलता था। यही कारण है कि

यहाँ के ऐतिहासिक लेखे तथ्यो और प्रमाणो की अपेक्षा किवदंतियो पर अधिक निर्भर हैं और उनमे अति रजना अथवा अवमानना के तत्व मौजूद होते हैं। जनापवाद और किवदंतियो पर राज्य का नियत्रण सभव भी नही था क्योकि राज्यो और जागीरो की सत्ता स्थिर नही होती थी। सत्ता, अधिकार और जीवन तथा प्रतिष्ठा सब कुछ काल की तरह गतिमान था। ऐसे म किसी लोकापवाद को रोकना या नियत्रित करना राज्य के वश की बात हो ही नही सकती था। बजारो का आवागमन और व्यापारियो के सचरण म इन लोकापवादो का बडा महत्व था। 16वी 17वी सदी विक्रमी मे—जबकि राठौरो गुहिलोतो के प्रगाढ सम्बन्ध थे और मार्ग सुरक्षित थे तब बजारो के काफिले गाँव-गाव पहुँचते थे 4(164), मगर उससे 50 वष पहले जब राठौर लूट मार मे व्यस्त थे और पश्चिमी क्षेत्र म अशाति थी तब सैनिकों के लिए आटा मिलना भी मुश्किल हो गया था 8(41-42), प्रजा तक राज्य छोडकर चली जाती थी।

मेडता प्रादुर्भाव, उत्थान और सघष का समय

मेडता कभी आदि शहर था—पौराणिक राजा मा धाता का बसाया हुआ। 8 (37) बाद म यह चौहानो के आधिपत्य मे रहा था। 14वी-15वी सदी विक्रमी मे यह अचल उजाड रहा। अत सारा प्रदेश घने झाड-झखाडो से भर गया था 8 (37)। नागौर के चौहान कभी कभार वहाँ शिकार करने के लिए डेरे लगाते थे।

राव जोधा ने जब सवत 1515 वि० मे जोधपुर बसाया तब परम्परा के अनुसार भाइयो और पुत्रो को धरती बाँटने का विचार किया। अपने दो सहोदर पुत्रो—वरसिंह और दूदा—को उसने मेडता का उजाड इलाका बसाने के लिए दिया। तदनुसार उन्होने वतमान मेडता नगर की स्थापना सवत 1518 मे चत्र सुदी 6 को हस्त नक्षत्र मे की 8 (39)।

उस अनबसे क्षेत्र मे लोगो को बसाने के लिए राठोडो को नागौर पाली, फलोदी बीकानेर, अजमेर आदि स्थानो से राजपूतो, जाटो तथा अन्य जनो को लाकर बसाना पडा 8 (39 41)। तत्कालीन आवश्यकता और राठोड परम्परा के अनुसार राजघराने और प्रजावग के बीच शासक शासित का वैसा नाता नहीं होता था जैसा कि गुजरात, मालवा या मेवाड के स्थापित राज्यो मे था 9 (97)। वे अपेक्षाकृत उनके निकट होते थे और उनमे सुख दुख की बधी हुई भागीदारी होती थी। खेती म, नई जमीन तोडने म पानी की व्यवस्था म, आसपास के क्षेत्रो की लूटमार मे सब निस्सकोच भाग लेते थे। वैसे भी मेडता का क्षेत्र कम वर्षा और आवागमन की कठिनाइयो के कारण उजाड पडा हुआ था यद्यपि वह मारवाड साम्भरी, अजमेर, जालोर, सिरोही के बीच महत्त्वपूण केन्द्र था 8 (40)।

तत्कालीन जोधावत, राजा कम और योद्धा अधिक थे तभी वि० स० 1550 तक बीकानेर से लेकर अजमेर तक, उधर जालोर—बाडमेर तक और दक्षिण मे ईडर तक उनका वचस्व फैल चुका था 10 (126, 236)। राजघरान और सामत-भूमिघरो के साथ-साथ अन्य जनों के निरतर सम्यक सगत के लिए भक्ति, कीतन, पव, उत्सव, मेलो का आयोजन मेडतियो की विशेषता थी 9 (99 100)।

मेडता राज्य की स्वतत्र सत्ता मे, उसके विकास और उत्थान मे, तीन पीढियो —दूदाजी वीरम दे और जयमल—का योगदान रहा था। 9 (97-137)। मेडता बसाने मे मुख्य भूमिका दूदाजी जोधावत की थी यद्यपि वह दो सहोदर भाइयो की सम्मिलित जागीर थी 8 (38-39)। मेडता बस जाने पर दोनो भाइयो मे अनबन हो गई जिसके कारण दूदाजी बीकानर जाकर रहे 8 (44 45) और वापस तब आए जब बरसिंघ का परलोक वास हुआ 8 (46)। दूदा मेडतिये का और उसके पुत्रो का मेडता पर स्वत्व कभी निर्विवाद और निर्विरोध नही रहा। अत उन परिस्थितियो मे उनके पारिवारिक जीवन और सामाजिक परम्पराओ मे हम स्थिरता और अविचलता की वैसी कल्पना नही कर सकते (12) जैसी कि जोधा घराने मे थी, गुहिल घरानो मे थी या सोलकी घरानो मे थी। हमे मानना होगा कि विक्रमी 1550 से 1560 तक के अपेक्षाकृत शात समय के अलावा मेडतिया दूदाजी, वीरमदे एव जयमल को कभी स्थिर रहने का अवसर नही मिला होगा। यही समय मीरा के जन्म और पालन पोषण का समय था 9 (67)।

मेडते का राज्य कभी शान्त नही रहा। स्थापना के कुछ समय बाद दूदाजी को बीकानेर और शेखावाटी की तरफ रहना पडा। बाद मे जब वे मेडता वापस आए तो सचाड की तरफ रहने को बाध्य हुए। ढलती उमर मे मेडतावास किया तब तक उनके सहोदर बरसिंघ जोधाणा के पौत्र और राव सीहा के पुत्र राव जैसा गागा और भोजा से उनके वैर पड गए 8 (47)। तब से लेकर सवत् 1590 वि० तक मेडता और जोधपुर के रावो के बीच सघर्ष बना रहा—जब तक कि वीरमदे दूदावत ने मेडता से पलायन नही किया और बाद मे उसका पुत्र मवाड का सूबेदार होकर न चला गया 1 (41)। वि० सवत् 1518 मे स्थापित मेडता सिर्फ 70 वर्ष तक येनकेण प्रकारेण मेडतियो के हाथ मे रहा, वह भी निर्विरोध नही। सदा अशात और सदा युद्धरत जीवन के कारण यह सहज अनुमान हो सकता है कि दूदा और उसके वशजों को कभी घर परिवार की सुध लेने का समय मिला हो, यह सभव नहीं। राज्य कुल की और वश परम्परा की जैसी विशेषताएँ और मर्यादाओ के बधन गुहिलौतो मे विकसित हुए थे वैसे मीरा के कुल म हुए होगे, ऐसी सभावना नही लगती।

कहा जाता है कि दूदाजी के पाँच पुत्र थे—क्रमश वीरमदे, रतन सी, राय-मल, रायसल और पीथाण 11 (42)। इनमे से प्रथम दो के बारे मे तो सूचनाएँ

मिलती हैं, मगर बाकी तीन के बारे में कोई विगत प्राप्त नहीं है। मीरा के पिता रतन सी को दूदा की तरफ से 12 गाँव—जिनमें सबसे बड़ा कुड़की था—मिले हुए थे और उनकी देखरेख तथा मोर्चाबंदी में उसका पूरा जीवन खप गया। वे सदा ही गुहिलोतों को विविध अभियानों में साथ देते रहे और अन्ततः खानवा के युद्ध में वि० संवत 1584 में काम आए।

इतिहास इस बात का गवाह है कि मेवाड़ के राणा रायमल के पुत्र सांगा को अपना प्रारंभिक जीवन देशाटन और गुप्तवास करके बिताना पड़ा था। कम से कम वि० संवत 1566 तक वे श्री नगर (अजमेर) की ओर गुप्तवास कर रहे थे 1 (40), तभी उनका सम्पर्क और सम्बन्ध दूदाजी एवं रतन सी से हुआ होगा। वीरमदे के साथ सांगा की बहिन गोरज्यादेवी का विवाह हुआ था 11 (39) और वीरमदे के भाई रतन सी की पुत्री और वीरमदे की पालिता मीरा का विवाह राणा सांगा के पाटवी पुत्र भोजराज के साथ हुआ था 11 (80)। यह विवाह सम्बन्ध निश्चित रूप से मेड़ता और मेवाड़ घनी सांगा के पूर्वकालिक सम्बन्धों का राजनीतिक परिणाम था।

निश्चित रूप से राठौर अपनी दुर्दम युद्धशक्ति, निष्ठा और समर्पण की विशेषताओं के लिए विख्यात थे। कहावत है—"जात राऊदा, मरण रा दूदा" 46 (7) सांगा से पहले भी गुहिलोतों तथा राठौरों में राजनीतिक और वैवाहिक सम्बन्ध थे 9 (101) और वे सम्बन्ध सांगा के समय इतने प्रगाढ़ हुए कि चित्तौड़ के कई अभियानों में और संकट के समय राव वीरमदे तथा जयमल गुहिलोतों के स्तम्भ बनकर काम आए थे 11 (42) जयमल ने अकबर के चित्तौड़ आक्रमण में अपनी अदम्य वीरता की छाप छोड़ दी था 11 (42)।

तत्कालीन राजनीति में वीरता और अदम्य साहस ही राजपूती आन-मान के आधार होते थे। राजनीतिक दृष्टि से राठौरों का मध्य-पश्चिमी भारत पर—दिल्ली से लेकर बीकानेर, शेखावाटी, मेड़ता, नागौर, पाली, सिरोही तक—अखंड प्रभाव होने से वैसे भी उनकी प्रभुता मित्रता योग्य थी, फिर उनकी वीरता, सहनशक्ति और दुर्दमनीय साहस किसी को भी शत्रुता से बचाने में सहायक था। यद्यपि उनमें आन्तरिक संघर्ष कम नहीं था 4 (38) फिर भी वे भीतर-बाहर सब ओर अपना डंका बजाते रहे और टूटे तो आपसी वैर से ही टूटे। मगर, विक्रमी 1518 से लेकर 1588 तक के समय में तो वे दुर्जेय ही कहलाए 11 (40 41)।

अवश्य ही वि० स० 1590 में मेड़ता के पतन और वीरमदे के मेड़ता छोड़कर चले जाने के पीछे पारिवारिक संघर्ष को टालना एक कारण था और मेड़ता को दुर्गबद्ध न कर रखना एक दूसरा कारण था 3 (143)। और यही वह समय था जब मीरा चित्तौड़ से रूठकर मेड़ते आई थी। निश्चित रूप से उसे अपने

भाई भतीजों के साथ मेड़ता छोड़कर अजमेर शेखावाटी तक भटकना पड़ा होगा। क्योंकि एक बार जब जोधपुर के मालदेव ने मेड़ता पर अधिकार कर लिया तो उसने मेड़तियों के महल, आवास, कोठरियाँ सब नष्ट करके मैदान कर दिया था और वहाँ मूलों की खेती करवाई थी 4 (70 71)। प्रतिहिंसा उनमें इतनी तीखी होती थी कि वे अपने पूर्वजों या भाइयों तक का विवेक नहीं रखते थे। ऐसे समाज में बहनापा, भांजापन, पुत्रत्व, वात्सल्य आदि की कल्पना करना कठिन ही है। फिर जब कोई राज-परिवार दर-बदर हो और अपने अस्तित्व के लिए मारा-मारा फिरता हो तो उसका मानस किसी अयाचित का बोझ सहन कर सकेगा, यह मानना और भी कठिन काम होगा 13 (74)। ऐसे में यदि वीरमदे और जयमल ने मीरा को वात्सल्य और सत्कार न दिया हो तो इसमें उनका दोष मानना उनके प्रति अन्याय कहा जाएगा। एक बार जब मेड़तिया वीरमदे के पैर अपनी धरती से उखड़े तो 14 बरस तक वे मारे-मारे फिरते रहे। परिवार तितर बितर हो गए, जिसका जहाँ सिर समाया वह वहाँ शरणागत हो गया और मालदेव 14 बरस तक वीरम दे के पीछे-पीछे लगा रहा 4 (72)।

सारांश वि० संवत 1518 म राव दूदा न जिस मेड़ता राज्य की स्थापना की, उसकी बसावट के लिए जिस उद्दाम-नीति की पालना की उसमें जनता के साथ निकटता भाई चारा, अपनापा और भक्तिभावना की निच्छलता थी। वहाँ बसने वाले अधिकतर तो जाट परिवार थे जिन्हें कृषि की लगन ज्यादा थी। जो राजपूत थे वे प्रतिबद्ध और निष्ठावान थे सभी राव वीरमदे, रतन सी और उनके सभी भाई निरंतर युद्धरत रहते थे। राणा सांगा उनकी अदम्यवीरता और निष्ठा के प्रति आश्वस्त थे। अकेले वीरमदे ने उनके साथ 18 युद्धों मे भाग लिया था और खानवा के युद्ध मे घायल सांगा की प्राण रक्षा की थी 11 (42)। मीरा के पिता राव रतन सी उसी युद्ध मे वि० स० 1584 में काम आए थे।

मेड़ता का राज्य अपनी स्थापना के बाद शांत और स्थिर कभी रहा नहीं। सदा युद्ध की छाया चौ तरफ मडराती रही, जोधपुर घराने से सदा अधिकार का आतंक बना रहा और पड़ौस मे अजमेर और दक्षिण मे गुजरात से घुसपैठ भी होती रही। भीतरी समस्याओं म अकाल की समस्या अक्सर बनी रहती थी, तब रतन सी और वीरमदे को विशेष अभियान भी करने पड़ते थे। वि० सवत 1542 एव 1547 म भारी अकाल पड़े थे 4 (186)। मेड़ता का विकास सदा अवरोधित रहा, इसमे सदेह नही और राव दूदा का परिवार सदा भीतरी-बाहरी समस्याओं से जूझता रहा।

मीरा के समय—सवत 1555 से 1603 तक—को केन्द्र बनाकर देखें तो कह सकते हैं कि इस अवधि के आरभ म तो मेड़ता को राव दूदा और वीरमदे के अपूव उत्साह और वीरत्व का वरदान मिला हुआ था। राव दूदा अपनी ढलती

अवस्था मे मेडतावासी होकर रह रहे थे, जोधपुर की ओर का आतक शिथिल पडा हुआ था और अजमेर का शाही प्रतिनिधि शात था। मेडता होकर जाने वाले मार्ग प्रशस्त थ और मडतिय राजपूत सीमाओ पर चौकस थे। कम से कम वि० सवत 1570 तक शाति का वातावरण था, जन जीवन सामान्य था और बीकानेर, नागोर, शेखावाटी के साथ मेडता के सम्बन्ध सौमनस्यपूर्ण थे।

वि० सवत् 1570 के बाद, मेडता पर जोधपुर की कुदृष्टि गहरी होती गई, राव दूदा का अतिम काल (स० 1572) आ गया, मेवाड के राणा सागा के व्यापक अभियान शुरू हो गए और मालवा तथा गुजरात के बादशाह भी सक्रिय हो उठे। देश की राजनीतिक गतिविधियो मे अभूतपूव मोड आने लगे। पश्चिम की ओर भाटियो और तुर्कों की हलचलें भी बढने लगी और मेडता के साथ जोधपुर के सम्बन्ध कटुतापूर्ण होते चले गए। इधर जब मेडतिये महाराणा सागा की फौज के साथ एक सशक्त सगठन बनाने और पूरे पश्चिमी भारत को अक्षुण्ण रखने के प्रयत्नो मे लगे हुए थे, तब उन्ही क कुटुम्बी उनकी जडें खोदने का काम कर रहे थे। वि० स० 1572 से लेकर 1584 तक का समय मेवाड और मेडता की दोनो शक्तियो के लिए अपने अस्तित्व के सघष मे लगे रहने और दिल्ली, गुजरात और मालवा की राजनीति की काट करने का विकट समय रहा था। उसका अवसान सागा की मृत्यु राव रतन सी के खेत रहने और मेवाड घरान के विध्वस मे हुआ। मेडता के दुर्दिन भी मडरा रहे थे जो स० 1590 मे उसके पतन का परिणाम लेकर आए जबकि मीरा उसी समय कभी स० 1589 मे मेवाड त्याग कर वहा आई थी। वह विनाश भी ऐसा था कि मेडतियो के भवन आवास, सब नेस्तोनाबूद कर दिए गए, सिवाय चार भुजा के एक मदिर के सब नष्ट हो गया था।

मेवाड प्रतिष्ठित गुहिलवश और मीरा कालीन राणा

गुहिलो का राजवश मेडतिये राठौरो की तुलना मे प्राचीनतम माना जाता है। इस वश की स्थापना विक्रमी स० 512 मे कही जाती है।1(2) जब कन्नौज पर हर्ष वधन का राज्य था तब मेवाड मे शिलादित्य की आन फिरती थी। कहा जाता है कि मेवाड से पहले गुहिलो का उदय गुजरात कच्छ-बनासकाठ मे हुआ था।1(2) राठौरो का अभ्युदय भी उधर ही हुआ था। तुजुके जहाँगिरी के मुताबिक मेवाड के राजाओ का राज पहले पूव मे था। उस समय उनकी पदवी राजा की थी, बाद मे वे दक्षिण म गए और रावल कहलाए। वहाँ स मेवाड के पहाडी प्रदेशो म धीरे धीरे बढकर उन्होने चित्तौड ले लिया। यहाँ से उनकी पदवी महाराणा हुई। 15 (73) जहाँगीर के समय इस घटना को 1421 वष हो गए थे।

ऐतिहासिक मान्यताओ के अनुसार गुहिल रघुवशी कहलाते हैं। राय के पुत्र

कुश के वश मे गुहिल से पहले अतिम राजा सुमित्र था। सुमित्र का पुत्र गुहिल हुआ जिसके नाम पर यह वश गुहिल, गुहिलौत, गोहिल कहलाया। गुहिल का राज्य उत्तर में आगरा चाटसू तक फैला हुआ था। विक्रमी स० 1044 के उसके सिक्के उस क्षेत्र मे प्राप्त हुए हैं।(14) उससे पहले विक्रमी स० 718 का गुहिल अपराजित का एक शिलालेख नागदा के पास कुण्डेश्वर मदिर मे मिला कहा जाता है।(14) इससे स्पष्ट होता है कि मेवाड के पर्वतीय प्रदेश मे इनका प्रवेश दक्षिण से हुआ था और वे बढते बढते आगरा तक पहुँच चुके थे। इतना बडा राज्य उस समय देश मे कोई नही था और उसका अस्तित्व राणा रायमल पृथ्वीराज और सागा के समय तक—विक्रमी स० 1584 तक—भी था। यानी एक विशाल राज्य के रूप में मेवाड की स्थिति—मीरा के समय तक—800 वर्ष पुरानी हो चली थी।

इस प्राचीनता और विशालता के सन्दर्भ से देखा जाए तो मेवाड की शक्ति, प्रतिष्ठा और गौरव की कल्पना की जा सकती है। अनेक शिलालेखो मे, ताम्रपत्रो मे वहाँ के राजाओं को अवनीश्वर (एपिक इडिका भाग 24, 323) हिंदूपत पातसाह, समस्त राजवलिसमलकृत महाराजकुल (दरीबा का शिलालेख), महाराणा (हम्मीर के समय से), महाराजाधिराज (15) हिन्दुवा सूरज जैसी उपाधियाँ दी गई थी।

चित्तौड का दुर्ग कई बार गुहिलो के हाथ से गया और आया, मगर छोटे-मोटे विक्षेपो के बावजूद मेवाड की प्रभुता और उसका गौरव अक्षुण्ण रहा। दीर्घ-कालीन प्रभुता के साथ वहाँ के राजवश की मर्यादाएँ भी उसी अनुपात मे बढी और उन मर्यादाओ की रक्षा भावना भी उतनी ही तीव्रतर रही हो तो यह सहज स्वाभाविक माना जाएगा।

महाराज लाखा, मोकल, कुभा और रायमल की परम्परा मे यद्यपि मेवाड का राजघराना कुत्सित षड्यन्त्रो, पितृघात, 15 (54) भ्रातघात 15 (47) के अन्दरूनी कुकर्मो से मुक्त नही था तथापि उसकी बल प्रभुता और राजनीतिक प्रतिष्ठा कम नही हुई थी। विक्रमी स० 1525 के बाद रायमल के समय मे उसका शक्तिवर्धन सिरोही से आगरा-बयाना तक और गोडवाड से मालवा तक हो चुका था 1 (2 5)।

रायमल के तीन पुत्रो—पृथ्वीराज सग्राम सिंह और जयमल मे यद्यपि पारस्परिक जानलेवा शत्रुता थी 15(47) तथापि उन्होने मेवाड के विशाल राज्य को सबल करने मे ही अपनी शक्ति का उपयोग किया था। राणा सग्रामसिंह को अपने कवर पदे का समय (विक्रमी स० 1566 तक) अजमेर के पवारो के बीच छद्मवेश मे बिताना पडा था 4(I331-333)। वि० स० 1566 से जब उन्होंने राजग्रहण किया तब से वि० स० 1572 तक मात्र छह वर्षों मे इतना

शक्ति सचय कर लिया था कि उनके नेतृत्व म 80 हजार अश्वारोही, सर्वोच्च श्रेणी के 7 राजा, 9 राव, 500 रावल और रावत, और 104 सरदार सदा तैयार रहत थे। मारवाड़, आमेर, ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, रायसेन, कालपी, चदेरी, बूदी, गागरोन, रामपुरा, आबू के राव उनके मरद थे 1(2) और मेडता, जोधपुर, ईडर, जैसलमेर से उनके पारिवारिक और कौटुम्बिक सम्बन्ध थे।16

इससे पता लगता है कि सागा के समय मे मेवाड की शक्ति और प्रतिष्ठा अप्रतिम थी। यहाँ तक कहा गया है कि यदि खानवा के युद्ध का परिणाम उलटा निकलता तो देश के साम्राज्य का झडा चितौड पर लहराता।

यह सवाल जरूर विचारणीय है कि इतने प्रतिष्ठित, शक्तिशाली और मर्यादा श्रेष्ठ मेवाड ने मेडता के उन राठौडो से वैवाहिक सम्बन्ध क्यो किए जो किसी धरती के निर्विवाद धणी नही थे ? वस्तुत मेवाड की राजनीति मे विवाह, सम्बन्ध-स्थापन और मैत्री का साधन रहा था। राणा सागा से पहले के हर मेवाड नरेश ने 14 से 28 तक विवाह किए थे। खुद रायमल के 28 रानियाँ थी जो हर छोटे-मोटे राजकुल की थी 1(11) और उनसे राणा सागा के 14 भाई और 2 बहिनें थी। स्वय राणा सागा ने कई विवाह किए थे, उनके 4 पुत्र और 2 पुत्रियाँ थी, कई पासवानिये पुत्र थे और अनक धाय भाई थे 1(12-17)। बहु-विवाह के कारण ही मेवाड के राजकुल मे आन्तरिक कलह, विद्वेष और षडयत्रो की गहमागहमी रहती थी। उनके परिणाम स्वरूप राणा कुभा को उसके एक पुत्र उदाकण द्वारा विष देकर मारा गया था, 1(4)। एक पुत्र जैसा और उसकी माता ने राणा रायमल से कपट करने का यत्न किया था तो जसा की हत्या कराई गई थी और उसकी मा को महलो से नीचे उतार दिया गया था 14(12 15)।

राजनीतिक विवाहो के ऐसे परिणाम मेवाड के शासको को हर युग मे भोगने पडे होगे। आमतौर पर राज कुलो मे पुत्री या बहिन का विवाह राजनीतिक लक्ष्य पूर्ति से किया जाता था 9(98)। मेवाड घराने ने ऐसा ही किया था जब रायमल ने अपनी पुत्री का विवाह राव दूदा के पुत्र वीरम दे के साथ किया और राणा सागा ने दूदा की पौत्री मीरा का विवाह अपने पुत्र भोजराज के साथ किया 9 (103)। इन सम्बन्धो का यह प्रभाव रहा कि चित्तोड और मेडता के राजनीतिक सम्बन्ध सागा के समय से लेकर राजसिंह के समय तक लगातार बने रहे। 4(220 30) वीरम दे के पुत्र जयमाल ने उदयसिंह के समय मे अकबर के आक्रमण की बेला ऐसी अनोखी वीरता से प्राण त्यागे थे कि अकबर भी चमत्कृत रह गया था। हर सम्पत्ति विपत्ति मे दोनो कुलो के सम्बन्ध 150 200 वर्षों तक अनवरत बने रहे। इससे स्पष्ट होता है कि यदि मीरा दोनो के बीच सेतु थी तो भी दोनो कुलो मे वह प्रतिष्ठा का बिन्दु कभी नही बनी। वैसे भी राजपूत

युग मे नारी राजनीतिक सम्बन्ध-सेतु तो होती थी मगर उसकी प्रतिष्ठा की स्वतत्र इयत्ता ऐसी नही होती थी कि जो प्रगाढ़ता को कम करे या राजनीतिक हितो को खडित करे। ऐसे प्रमाण भी हैं जब राजा लोग पारिवारिक कटुता के कारण अपनी कन्याओ को पीहर वापस ले आए हैं और उनके निर्वाह के लिए व्यवस्था की है मगर उससे राजनीतिक हितो पर असर नही पडा। राणा सग्राम सिंह की एक भुआ (रमाबाई) का विवाह सोराष्ट्र (गिरनार) के यादव राजा मडलीक से हुआ था। वहा अनबन होने के कारण सागा के भाई पृथ्वीराज उस मेवाड ले आए थे और राणा रायमल ने उसके निर्वाह के लिए जावर का परगना निर्धारित किया था 1(29 30)। उस रानी ने अपना सारा जीवन चित्तौड मे बिताया मगर गिरनार के साथ राजनीति सम्बन्ध खडित नही हुए। राणा सागा के साथ मडलीक ने उसके बाद भी कई युद्धो मे भाग लिया था और मीरा क द्वारिका वास के समय गिरनार के चारण उसकी सेवा मे बने रहते थे। उनके कुछ दूहे आज भी प्रचलित हैं—

मीराबाई राठोडा नी कुवरी
रोहीदास जात ना चमार।
मीराबाई घेर जाओ ने
घेरे बैठे रटो राधेश्याम।
चित्तौड के रे चौक माँ मीराबाई
बातो एवी थाय।
चित्तौडा रा जानसी तो मारसी
थाँरी चोपे करसी बात। 9(503)

यह स्पष्ट तथ्य है कि मेवाड के राजघराने मे अनेकानेक ठिकानो से कुल-ललनाएँ ब्याही जाती थी और वैसे सम्बन्धो से कुल प्रतिष्ठा और बल वृद्धि होती थी। यह भी निश्चित है कि बहुत बडी सख्या मे भीड होने से रनिवास या अन्त पुर की व्यवस्था भी उतनी ही जटिल, मर्यादानुसार और कठोर होती हागी। कुछ सकेत ऐसे जरूर मिलते हैं जो बतात हैं कि रानियो की प्रतिष्ठा और राजनीतिक महत्व के अनुसार अन्त पुर मे उनकी गरिमा, आदर और मर्यादा निभायी जाती थी। राणा सागा के समय उनकी हाडी रानी करमैती का वचस्व अधिक था। उसके राजनीतिक कुचक्रो के कारण मेवाड घराने मे विशृ खलता उपजी थी और गुजरात के सुलतान ने करमैती का प्रिय बन, चित्तौड का भेद लेकर उस पर आक्रमण किया था। 15(60 61)। अवश्य ही अन्त पुर की कुटिल नीतियो, कुचक्रो और लोकापवादो से चित्तौड का राजवश मुक्त नही था।

यही कारण रहा होगा कि मेवाड के राजकुल ने सावजनिक धार्मिक या

सामाजिक पर्वों उत्सवों से राजघराने को असम्पृक्त रखने की परम्परा बना रखी थी। साधु सगत, जोगी बिरागी आदि के प्रवेश पर वहाँ पाबंदियां थीं और अन्त पुर की मर्यादाएँ आश्चयजनक रूप से कठोर थीं। यही कारण था कि राणा-साँगा के बाद और वि० सवत 1588 के बाद जब राणा रत्नसिह (वि० स० 1553 1588) को मारा गया और मेवाड की राजनीति मे विशृ खलता आ गई, तब बाहरी लोगो के दुग प्रवेश पर कठोर नियमण किया गया था। इसका पता इसमे भी लगता है—

राणाजी थाडो देसडो मो रग रूडो।
थारे देस मइ राणा साध नहि छ, लोग बसे सब कूडा॥

—मीरा

और यही समय था जब मीरा के साधु सगत के आयोजनो पर—राजनीतिक कारणो से—आक्षेप उठे थे अथवा निषेध लागू किए गए थे।

मेवाड की राजनीति मे निषेध, मान्यता, स्वीकृतियाँ आदि मे राणा की अपेक्षा उसके सरदारों, उमरावा, पुरोहितो का वचस्व अधिक होता था। उनकी राय जनमत बनाती थी 1(5)। उन्होने ही वि० सवत् 1525 मे राणा कुभा के हत्यारे उदा को राणा मानने से इनकार किया था और रायमल को ईडर से लाकर गद्दी पर बिठाया था। बनबीर और विक्रम के अनाचारी आचरणा का विरोध और प्रतिकार उन्होने ही किया था और उदयसिह को कुभलगढ से लाकर चित्तौड की गद्दी पर बिठाया था। सरदारो-उमरावो के वचस्व की परम्परा इतनी सुदृढ़ रही है कि—स्वतत्रता के बाद भी और देशी रियासतो के अस्तित्व-हीन हो जाने के बाद भी—महाराणा भगवतसिह के बाद उत्तराधिकार के प्रश्न पर मेवाड के सरदारो-उमरावो मे तनातनी बनी हुई है। मीरा के साधु-सगत के विरोध मे जितनी भूमिका राणा की नही रही होगी, उससे ज्यादा मेवाड के सरदारो उमरावो की रही होगी। मेवाड की कहावतो मे प्रसिद्ध है कि—

बीजावर्गी वाणियो, दूजो गूजर गोड।
तीजो मिलै जो दाहिमो, करै टापरो चोड॥ —इनकी भूमिका

मीरा की भक्ति की धारा को रोकने, मोडने और तोडने मे प्रमुख मानी जाती है। हो सकता है विष देन और सप पिटारी भेजने मे इनका हाथ रहा हो और अन्त पुर की कुटिल नीतियो की जोड तोड से वे विफल भी हुए हो। इन दो घटनाओ के अन्त साक्ष्य भी हैं और बहिर्साक्ष्य भी। तथापि इन घटनाओ मे मेडतियो और गुहिलोनो के राजनीतिक और सामरिक गाढ़ेपन पर कोई विपरीत प्रभाव नही पडा था, यह भी तथ्य है।

मेवाड की भूमि, अपने प्राचीन काल से, नई जमीन तोड़ने, राजनीतिक प्रसार करने और घोड़े की पीठ पर उमर बिताने वालों की रही है। यहाँ के सरदार-उमराव और राणा के भाई बंद नजराने में राणा को अपना सर देने की शान रखते थे 1(28-32)। ऐसे वातावरण में राजपूतों के घराना में बल्कि सामान्य प्रजा में भी वैरागी, साधुओं और कर्महीन लोगों के प्रति सम्मान या भक्ति का अभाव कालोचित माना जाना चाहिए। आज भी लोक में यदि कोई स्त्री भक्ति करे या वैराग बताए तो उसे मेवाड में 'भगतण' कहा जाता है जो कि एक तरह की गाली है। अतः मीरा को उस समय के राजकुल के परिवार उपेक्षा से बरतते रहे हों, वर्जना करते रहे हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं माननी चाहिए। बल्कि ऐसे प्रमाण भी हैं कि राजकुल में किसी अवमानना के दंड स्वरूप रानियों को 'महलों से नीचे उतार दिया जाता था', रायमल के समय में जैसा और उसकी माँ के साथ ऐसा किया गया था 1(12-15)। यदि मीरा के साथ उपेक्षा का व्यवहार किया गया हो तो विस्मय की बात नहीं। मीरा के कुछ पदों से ऐसी ध्वनि निकलती भी है—

तात, मात, भ्रात बंधु अपना नहिं कोई।
छोडि दई कुल की कानि, कहा करि है कोई॥
मोती माणक परत न पहिरूँ, मैं तो कब की नटगी।
गैणो तो म्हारे माला दोवडी, अर चन्दण की कुटकी॥

कुल मिलाकर मेवाड की तत्कालीन राज परम्परा उतनी भक्ति प्रवण नहीं थी जितनी कि मेड़ता की वैष्णव परम्परा थी। दीर्घकालीन राजपरम्परा, बहु-विवाह और अनेकानेक राजवंशों की कन्याओं से भरे हुए अन्तःपुर की राजनीतिक कूटबुद्धि के कारण आंतरिक विद्वेष और सरदारों सामंतों की वर्चस्व वाली राज बुद्धि मेवाड को एक विशिष्टता प्रदान करती थी। यह विस्मय कारक तथ्य है कि राज रानियों को, उनके राजनीतिक महत्व के अनुकूल, महलों में सम्मान भी मिलता था, अवमानना और उपेक्षा भी होती थी, महलों से नीचे भी उतारा जाता था मगर उन व्यवहारों का सामरिक सहयोग और राजनीतिक मित्रता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता था। मीरा के साथ यदि वर्जना, प्रतिबंध और निषेध का व्यवहार था तब भी मेड़तिया के साथ मेवाड के सम्बन्ध सौ से अधिक वर्षों तक—रायमल के समय से लेकर अमरसिंह के समय तक—अक्षुण्ण बने रहे थे 15(53-75)। यह भी तथ्य है कि सब कुछ होते हुए भी मीरा मेवाड में अरक्षित नहीं थी। राणा सांगा ने अपनी इस विधवा पुत्र-वधू के लिए मांडल और पुर के परगने निर्धारित कर रखे थे 17(13)। मगर मीरा को उन परगनों की व्यवस्था, सुख भोग आदि में कोई रुचि नहीं थी। यह बात उनके इस पद में व्यक्त

होती है—

> हाल्यां मोस्यां सूं काम नहिं रे, सीख नहिं सिरदार।
> कामदारां सू काम नहिं रे, मैं तो जाय करूं दरबार॥

मीरा दो विरोधी युगवृत्तियों के बीच विवादग्रस्त इकाई बनी थी। एक ओर उसके बचपन का मेडता-युग था जिसने उसे निश्छल भक्ति, प्रेम, लोक चेतना और स्वतन्त्र चेता भावुकता से पोषित किया था तो दूसरी ओर मर्यादाओं, प्रतिबंधों, निषेधों का मेवाड युग जिसने उसके लोकचेता मानस को क्षुब्ध किया था। दो विरोधी वातावरणों के बीच उसका लोकमानस प्रखर होकर उभरा और अन्तत राज वैभव, सत्ता और मर्यादा का त्याग करके वह लोकाभिमुख हो उठी।

2 मीरा : पारिवारिक परिवेश

किसी व्यक्तित्व के निर्माण मे उसके जन्म स्थान, वातावरण और बाल्यकालीन परिवेश का विधायक महत्व होता है। जिन सस्कारो का निर्माण अबोध तथा बल्यावस्था मे होता है, वे कई बार अनमनीय और अपरिवतनशील भी होते हैं। उनकी अवचेतन प्रभाव कारिता को निरूपित और निर्दिष्ट कर पाना चाहे दुष्कर काय हो, किन्तु यह मनोसामाजिक तथ्य विवाद ग्रस्त नही रहता। इस तथ्य को ध्यान मे रखकर मीरा के व्यक्तित्व और भक्ति वैभव के लिए हमे उनकी पीहर और ससुराल की पारिवारिक स्थितियो का समन्वय करना चाहिए।

(1) मेडता और मेवाड का समकालीन परिवेश

जैसा कि पहले कह चुके हैं मेडता की स्थापना के समय यह इलाका काफी समय से वीरान पडा हुआ, गैर आबाद क्षेत्र था। वरसिंह और दूदा ने नागौर, अजमेर तथा जोधपुर के कई भागो से जाटो और कई साखो के राजपूतो को ला-लाकर वहाँ बसाया तथा उसे आबाद कराया 19(39 41)। अधिकतर प्रवासी नागौर के थे। वहाँ के निवासियो म जाट, राजपूत, ओसवारा, माहेसरी, अगरवाल, खडेलवाल महाजन, भोजक, खत्री, भाट, निरतकारी जो, कि नाचने गाने वालो मे से थे, ब्राह्मणो मे पोकरण, राजगुरु, गूजरगौड, पारीटव, दाहिमा, सनावड, सखवाल उपाध्याय, श्रीमाली, गुजराती, गौड, सिपाही श्रेणी मे पठान, तुर्क, तरकसबद, तोपची, देसवाली, काजी, और उनके अलावा 52 अन्य जातियो के लोगो को सम्मिलित करके बसाया गया था 19(83 86)। जिन जाटो को पहले लाकर बसाया गया था। उनके साथ मेडतिया का घरोवापन था, बल्कि सभी नव-निवासियो के साथ उनका सम्बन्ध राजा प्रजा का न होकर सहभागी और सह-योगियों का था 19(39)। इस तरह से नये राज्य की स्थापना के कारण स्थान नाम से दूदा के वशज मेडतिये कहलाए। निश्चित है कि नये राज्य की स्थापना के साथ राज परिवार को लोक रुचि का और लोक समूह को राज रुचि का परस्पर मान रखना पडता था। नई जमीन, नये राज्य और सुविधाओ के पदा होन पर धार्मिक मतो और साधु सतों की जमावट भी एक स्वाभाविक प्रक्रिया थी। राव

दूदा परम वैष्णव कहे जाते हैं और उनके साथ साथ उनके समय के कुछ दरजी, सुनार आदि भी परम वैष्णव कहे गए हैं। कहा जाता है कि व कंठीधारी वैष्णव थे। मीरा के पद म भी सकेत है कि—

म्हारा पीयरिया का लोक भलेरो, बाधें कठी माला।"

यह स्वाभाविक भी हो सकता है। जिस समय दूदा ने मेड़ता राज्य की स्थापना की थी उस समय ब्रज से लेकर गुजरात तक और मालवा प्रदेश तक का क्षेत्र वैष्णव भक्ति मे सराबोर था 20 (38-51)। वैष्णव भक्ति जन-आदोलन के रूप मे स्थानीय भाषाओ, लोक भावनाओ और निष्ठाओ को लेकर पनपी थी, 20(39) अत उसके प्रसार प्रचार मे जन ज्वार का उफान था। प्राचीन दार्शनिक मतो की लौकिक मान्यता जीव ब्रम, परम तत्व, असारता, सेवा, निष्ठा, मोक्ष, अहिंसा प्रेम नानात्मक दृष्टिकोण परचे, चमत्कार,—सब मिलकर एक ऐसा सश्लिष्ट लोक मानस उस भक्ति की भूमिका म कायरत था कि आम आदमी को कुछ भी समझाने की किसी को जरूरत ही नहीं थी। 20(39 41) केवल समपण और भावुकता के बल पर ही अनपढ और अनगढ भक्त महात्मा और सत बन सकते थे—ऐसा सवेदनशील लोक मानस उस युग मे मौजूद था। मारवाड़—बीकानेर नागौर शाकभरी, अर्बुदाचल, शेखावाटी, जोधपुर, जैसलमेर के क्षेत्र मे लोक मानस की रचना म प्राचीन शैवमत जैनमत, नाथपथ, सतमत के साथ मिलकर वैष्णव भक्ति ने कृष्ण के सनातन भागवत रूप और चारभुजा स्वरूप को आराधना मे विकसित किया था। दूदाजी के वश देवता चारभुजा नाथ थे, जो कि राव दूदा के समय से लेकर जयमल के समय तक निर्बाध भक्ति के आलम्बन रहे थे 11(53 57)। 'यथा राजा तथा प्रजा' के सूत्र से मेडता अचल की प्रजा मे भी वैष्णव भक्ति की प्रबलता थी और कृष्णपथ के साधु सन्तो और धर्माधिकारियो का वहा आवागमन बना ही रहता था। वर्ष भर कई अवसरो पर—सावन से लेकर फागुन तक—राजपरिवार, राजन्य वर्ग और सामान्यजन सम्मिलित होते थे 9(97-137) और साधु सगत तो आम प्रथा थी। राव दूदा परम वैष्णव थे इस कारण भी साधु-सतो का आवागमन, भजन-कीतन सदा चलता रहता था। उसमे राज परिवारो और सामान्यजनो का निकट सम्पर्क बना रहता था। उसी तरह का सम्पर्क यात्रा, पर्व, उत्सव, नेम, धरम, खेती, खलिहानो, छोटे मोटे अभियान, बेसरे आदि के समय भी बना रहता था 9(110)। अत मेडता के राजपरिवारो और लोकजीवन के बीच अलगाव, दुराव और असम्पृक्तता की स्थिति वैसी नहीं थी जैसी कि मेवाड या पुराने राजघराना मे हुआ करती थी।

इस परिस्थितियो का प्रभाव मीरा के बचपन और मानसिक विकास पर लक्षित होना चाहिए। भक्ति के लौकिक स्वरूप के बीच जन्मी, पनपी और मुक्त-भाव से राजपरिवारो और साधारण जनो के साथ रहते हुए मीरा ने लोकभक्ति

का जो संस्कार कमाया था, वही आगे हठीला बनकर उसके व्यक्तित्व का आधार बना था। बचपन की मीरा को हमे राजरानी और मेवाड की जेठी बहू से भिन्न करके देखना चाहिए क्योंकि तत्कालीन मेडतिया परिवारो मे और मेडता से लेकर चूरू-बीकानेर तक के राठौरो मे रहन-सहन, पालन पोषण और जीवनप्रणाली मे सुस्थापित मेवाड राजवश से कई मायनो मे भिन्नता थी। मेडतियो मे जीवन-यापन मुख्यत कृषि आधारित था और अवसर पडने पर रैयत को साथ लेकर छोटे मोटे धाडे डालना आम जीवन प्रणाली थी 21 (32)। ऐसे मे राजपरिवार शेष जना से अलग थलग और असम्पृक्त बनकर नही रह सकते थे। ऐसे वातावरण मे मीरा ने लोकरीतियो का, लोकमानस को, लोकरुचियो, विश्वासो और जीवन को, वास्तविकता मे जीकर, सीखा था जिसके सकेत उसके पदो मे मिलते हैं।

मेडता की बसावट और उसे आबाद करने की नीति मे लोक-रुचियो के साथ राज परिवार की भागीदारी मेडतिया परिवेश का एक उपयोगी कारक था। दूदा की वैष्णव भक्ति, साधु-सतो का सत्कार, उन्हे आमत्रित करने का आग्रह उस नीति का अग था ताकि मेडता के नवोदित राज्य का प्रचार हो। इसी नीति के कारण दूर दूर से डागा, जाट, ब्राह्मण, चारण, महाजन मेडता मे आकर बसे थे और सबने इच्छानुसार भूमि भोग प्राप्त किया था 4 (23)। दूदा की इस सार्वजनिकता की नीति को, बचपन मे, मीरा ने सहज भाव से ग्रहण किया हो तो आश्चर्य नही।

वैसे भी राठौर वश मे और मेवाड के गुहिलोत वश मे जीवन की मर्यादाएँ भिन्न शैलियो की थीं। मेवाड मीरा के समय तक भी उस मर्यादा कोटि मे था जिसमे राजवशियो का घर, घोडे की पीठ पर ही होता था। स्वय राणा सागा का अधिकाश जीवन और उनके बडे भाई पथ्वीराज का पूरा जीवन नई धरती की खोज, नई स्थापना, शत्रु दलन और मर्यादा-रक्षा मे बीता था 1 (25-41)। इसके विपरीत राव दूदा की प्रकृति इतनी भिन्न थी कि बरसिंघ से मतभेद होने पर वे पहले तो बीकानेर की ओर चले गए थे और बाद मे सरवाड जाकर रहे 19 (42 46)। अपनी सुदीर्घ राज्य परम्परा मे मेवाड ने राजघराने, राजरानियो, राजकन्याओ और अन्त पुर की मर्यादाएँ स्थापित कर ली थी, जबकि मेडता के सघपरत राजघराने को हर ऊँच-नीच के साथ जीवन-यापन निद्वन्द्व रहकर करना पडता था।

मीरा के विषय मे एक तथ्य का हमे ध्यान रखना चाहिए कि वह किसी राव, राजा या महाराणा की कन्या नही थी। वह एक ऐसे ठिकानेदार की कन्या थी जिसकी स्थिति सिर्फ एक राजनीतिक मोहरे की थी। मीरा के पिता रतनसिंह को गुजारे के लिए 12 गाँव मिले हुए थे और [उनका जीवन छोटे-मोटे युद्धों और

व्यवस्थाओ मे बीता था। मीरा का पालन-पोषण उनके दादा वीरमदेव की 'कोटडी' मे हुआ था और वहाँ वह केवल राजकुल की कन्या थी, कोई राजकन्या नही थी।

तत्कालीन राजपूती रीति मे यदि मेवाड के राजघरानो मे एकांतिकता और प्रतिबंधित नारी जीवन था तो मेडता मे कन्याओ के निकटवर्ती कुटुम्बियो मे आने जाने-खेलने पर कोई प्रतिबध नही था। पर्दा प्रथा अवश्य थी मगर वह वयस्क कन्याओ और परिणीताओ तक सीमित थी। मीरा पर बचपन से जिस तरह से लौकिक मान्यताओ का और भक्ति तथा साधु सगति का प्रभाव पडा था, वह उसके वयस्क होने पर परिपक्व हो चुका था। इसका सकेत उसके पद मे भी मिलता है—

"मैं बैठी ही पडदा माही, ईश्वर पट खोलिया।"

इससे पता लगता है कि वयस्क होने पर और आम लोगो से पर्दा करने की स्थिति मे भी मीरा साधु सगत और भक्ति मे पगी हुई थी। एक वृत्तान्त बताता है कि—

"श्री गुसाइ जी के सेवक हरिदास बनिया—सो वे हरिदास बनिया मेरता ग्राम मे रहते हते। वा ग्राम मे एक ही वैष्णव हते और वा ग्राम को राजा जैमल हतो सो स्मार्त धर्म मे हुतो और एकादशी पहली करतो हुतो। और जैमल राजा की बहिन को घर हरिदास बनिया के सामे हतो। सो जब गुसाइ जी हरिदास के घर पधारे हते तब जैमल की बहिन कू बारी मे सू श्री गुसाइ जी मे साक्षात् पूर्ण परमेश्वर के दर्शन भये तब जैमल की बहिन ने पत्र द्वारा श्री गुसाईं जी कू विनती लिख कै पत्र द्वारा सेवक भई काहे त वे पर्दा म से बाहर नहीं निकसते जा सू पत्र द्वारा सेवक भये। (1870)

चाहे मीरा का किसी सम्प्रदाय मे शामिल होना तय नहीं है, मगर इतना तथ्य है कि बचपन से जिस भक्ति के वातावरण मे वह पली थी और आस्था के जिस लौकिक स्वरूप को उसने कमाया था वह उसके व्यक्तित्व की एक विशिष्टता बनकर विकसित हुई थी।

मेडता की ओर जिस लौकिक भक्ति का विकास हुआ था, उस निर्दिष्ट करके ही हम मीरा के परिवेशगत लाक तात्त्विक घटको की पहचान कर सकते हैं।

बहुत प्राचीन काल से ही पुष्कर, मडोवर नागोर, फलोदी क्षेत्र, द्वारिका मथुरा का गज पथ रहता आया था। नाना प्रकार के भक्ति पथ, शाक्त-मत, सत, मत, नाथ-पथ और मुनि-पथ वहाँ सम्मिलित होते रहे थे। शाकम्भरी चौहाना के समय मे वे सब रत्न मिलकर एक ऐसा लौकिक स्वरूप धारण कर चुके थे जिसम सभी की कुछ बातें मौजूद थीं और समयानुसार किसी प्रचलित सम्प्रदाय की उसम प्रधानाभिषेकिता हो जाती थी। पूनाधिक रूप से ऐसी ही प्रवृत्ति पश्चिमी देश

के हर क्षेत्र मे देखने को मिलती है कि सामान्य जन की भक्ति और आस्था साकार भी होती है, निराकार भी होती है, भावना प्रवण भी होती है, वैराग्य-तत्वी भी होती है, कर्मवादी भी होती है, कीर्तनपरक भी होती है, योग तत्वी भी होती है और लीला दर्शी भी होती है। मीरा के समय मे मारवाड की लोक-चेतना पर प्राचीन नाथपथी साधुओ का प्रभाव भी था, भैरव, शक्ति, तत्र आदि की छाया भी थी, सूफी प्रेमवाद भी था और गोगाजी-पाबूजी जसे सिद्धो का परछाई प्रभाव भी था। उस आधार भूमि पर वैष्णव भक्ति पनपी थी और कृष्ण भक्ति सूफी छाया लेकर यत्र तत्र प्रेममयी होकर विकसित हुई थी।

जब राजनीतिक और सास्कृतिक विकास केन्द्र बिंदु राजभवन और राज-वश हुआ करते थे तब राजवशो की रुचियाँ और क्रियाएँ ही जनमत बना करती थी। वह स्थिति मेडता मे भी थी। जब राज परिवार वैष्णव भक्त हो तब वहाँ साधुओ का, भक्तो का जमघट होना स्वाभाविक था, विशेषकर ऐसे सार्वदेशिक वातावरण म जब हर सम्प्रदाय और मत राजनीतिक शक्ति का सहारा लेकर लोक म प्रतिष्ठित होने की होड मे लगी हुआ हो 9 (101)। 15वीं-16वी सदी मे सारे देश म ऐसी ही स्थिति थी। साधु सतो की मडलियाँ, भक्तो के काफिले और व्यापारी-जन आवागमन मे साथ होते थे और उन सभी स्थानो पर डेरे करते थे जहाँ उनकी आव भगत होती हो या आश्रय मिलता हो। तीर्थ स्थानो, मेलो, उत्सवो, पर्वो और स्थानीय आयोजनो का ऐसा लौकिक विधान जमा हुआ था कि हर समय, हर माह, हर पक्ष, हर कही कोई न कोई साधु मडली जमी रहती थी। और ऐसा जब विधान था तो निश्चित रूप से कूट नीतिक उपयोगो के लिए और राजनीतिक गुप्तचरी के लिए भी इन विधानो का उपयोग किया जाता था। मीरा अपनी भक्ति प्रवणता के साथ जब चित्तोड पहुँची तो वहाँ की राज मर्यादाओ और राजनीतिक सवेदनशीलता के साथ उसकी साधु समति का समायोजन हो ही नही सकता था। और अपनी वश परम्परागत सस्कारशीलता से वह मुक्त भी नही हो सकी थी। मूलत यह उसके राज मर्यादा विरोध का परिवेशजन्य कारण था।

मेडतियो की परम्परा मे 4(176) राव दूदा से तीन पीढियो तक तो वैष्णव भक्ति की सुदृढ परम्परा थी ही, अपने पूर्वज पाबूजी से भी दूदा प्रभावित थे और समकालीन जम्भोजी का गहरा प्रभाव उनके समय के मेडता पर था 4 (182)। चारभुजा, ठाकुर जी, रघुनाथ जी, गोपालजी जैसे नामो से चतुर्भुज विष्णु की भक्ति होती थी, वैष्णव सम्प्रदाय के कई ग्रथ मेडतियो ने लिपिबद्ध करवाये थे मेवाड के गढबोर म चारभुजा की स्थापना मेडतियो ने की थी, कई ठाकुर अकेले या सपत्नीक साधु सत भी हो गए थे 4 (176), साधु सतो को वे साक्षात् विष्णु मानते थ और सत समागम को एक पर्व का रूप दिया जाता था। मदिरो मे

आराधना के लिए सगीत और कीतनो का आयोजन किया जाता था 3 (148)। लोग और राज परिवार के सदस्य उनमे सज धज कर एकत्रित होते थे। कई ठाकुर और सामान्य-जन भक्ति में कुछ 'नम' भी पालते थे 3 (172) जसे प्रात उठकर सबसे पहला काम दशन करना, चरणामृत लिए बिना कोई भी आहार ग्रहण न करना, कठीमाला धारण करना और दिन के चारो पहर ईश्वर दशन करना, माला धारण करना, गुरु करना, और, ये सब लोक प्रथाएँ आज भी मारवाड़-मेवाड़ की जनता मे देखी जा सकती हैं। मीरा ने भी कठीमाला का और चरणामृत का नेम धारण कर रखा था—

"चरणामृत को नेम हमारो, नित उठ दरसणजास्या।
"तुलसी की माला ओ बीरा म्हारा न छूटै
कोइ छाडया नोसर हार, हरि के भजना मैं ॥ 23 (69)
और—"काठ की कठी नहिं छोडूं राणाजी
नहिं पहरू मोतीडा री हार।" 23 (38)

मेडता मे भक्ति के गहरे वातावरण का एक कारण उस अचल की तत्कालीन भौगोलिक और यातायात परक स्थिति भी थी। मेडता निम्नलिखित मार्गों के केन्द्र मे पडता था—4 (193)

(1) अजमेर-अहमदाबाद—अजमेर मेडता सिरोही देसा-अहमदाबाद।
(2) दिल्ली पाटन—दिल्ली-आगरा मेडता पाली भगवानपुरा-जालोर पाटन।
(3) आगरा अहमदाबाद—आगरा अजमेर मेडता सिरोही अहमदाबाद।
(4) आगरा चित्तौड—जयपुर-अजमेर मेडता होकर।
(5) चित्तौड अहमदाबाद—चाकसू लाडनू मेडता जालोर होते हुए।
(6) जयपुर जोधपुर—परबतसर-अजमेर-पुष्कर मेडता जोधपुर।
(7) नागौर-पाली—मेडता होकर।

इतने माग जो कि पश्चिमी भारत को उत्तर दक्षिण म जोडते थे, यातायात, व्यापार, सना और धार्मिक विस्तार के साधन थ। इनके बीच मे पडन से मेडता कई तरह की धार्मिक मान्यताओ का समन्वय केन्द्र बन गया था। सामरिक दृष्टि से भी वह चित्तौड, जोधपुर और अजमेर वालो के लिए महत्त्वपूण था।

वहा का सामाजिक जीवन मेवाड, बीकानेर, जैसलमेर जैसे क्षेत्रो के राजपूती जीवन से, कई मायना मे भिन्न प्रकार का था यद्यपि वेशभूषा और जातीय मान्यताओ के धरातल पर अन्य राजपूती घराना स समानता थी। 5(36 67)। यथा—

(1) गो रक्षा जीवन का प्रमुख व्रत था और कई बार राठौर वीरो न गो-रक्षा मे अपने को बलिदान कर दिया था।

(2) विधवा विवाह को मान्यता नहीं थी। विधवाओ के लिए विशेष नियमित जीवन विधान होता था। उनके आवागमन, मेलजोल, शृगार, भोजन, दिनचर्या आदि का पथक विधान होता था। राजपूती परिवारो मे आज भी वैसा ही निभाव चला आता है।

(3) वैसे अन्य राजपूत वशो मे मास, मदिरा, अफीम आदि का सेवन वर्जित नही था मगर दूदावत मेडतियो मे उनकी वर्जना थी 4 (164)

(4) मेडतियो मे भी दासी दावडी प्रथा थी।

(5) कन्याओ की शिक्षा के लिए पुरोहित रखे जाते थे और वृत्ति के अलावा उन्हे गाँव या जागीर भी दी जाती थी। मीरा के लिए राव दूदा ने गूजर गौड पडित गजाधर को नियुक्त किया था। वे मीरा की शिक्षा दीक्षा के साथ उसके लिए चारभुजा की पूजा, सेवा कीतन आदि भी करते थे। विवाह के बाद मीरा उन्हें अपने साथ चित्तौड ले गई थी 4 (185)। चित्तौड मे मीरा के लिए निर्धारित माडल परगने का जिम्मा भी बाद मे इसी पडित को दिया गया था। मीरा को उस परगने की व्यवस्था, आय व्यय आदि से कुछ भी लेना-देना नही था— यद्यपि मेवाड घराने की जेठी बहू होने के नाते राणा सागा न उसकी मर्यादा के अनुरूप परगना निर्धारित किया था 1 (61)।

तत्कालीन परम्पराओ के अनुसार विधवा होने पर स्त्री को 12 माह तक घर के एकात कोने मे रहना पडता था, तब पीहर वाले उसे अपने यहा ले जाते थे और उसके बाद योग भग सभव होता था। मीरा के वैधव्य (1579) के 5 वष बाद तक भी राणा सागा जीवित रहे थे। उस अवधि वि० स० (1574) मे अपने अपग होन से पहले उन्होंने चित्तौड मे चारभुजा का मदिर बनवाया था 15 (144)। अत मीरा को मेवाड मे कम से कम वि० स० 1584 तक कोई भारी विरोध नही सहना पडा था। राज मर्यादा के अतगत उसकी भक्ति, गजाधर पडित की सहायता स, चलती रही। अधिक से-अधिक स० 1588 तक भी— जबकि राजा रत्नसिंह की हत्या की गई—उसे वर्जनाओ से अधिक कष्ट नही सहने पडे। वधव्य के बाद 10 वर्षों तक चित्तौड म वह अपनी भक्ति साधना करती रही। स० 1588 के बाद कुछ महीनों तक उसको सास—कमवती और देवर विक्रमाजीत के हाथो उसे वजनाए और तकलीफें सहनी पडी होंगी। तभी स० 1589 मे उसने मेडता गमन किया था। 11 (57) उसी समय की स्मृतियां उनके इन पदों मे हो सकती हैं—

> 'राणाजी कोप्या'
> 'राजा रूठे नगरी राखे हरि रूठया कद जाणा।"
> ऊनो भोजन जीम ल्यो, परो दखणी का चीर।
> सीसोद्या घर आवीया, सगला मैला मैं थारा सीर।
> ठंडा टूकडा थे पावो कोई, पीवो खाटी छाछ।

भू सूवो, भूखो मरो, कठं मिलै गोपाल ॥"—ठडा खाना देना, छाछ रोटी देना—मेवाड के अन्त पुर की अपनी व्यवस्थाए थी। यदि मीरा के साथ ऐसा हुआ था, ता निश्चित ही उसकी भक्ति प्रथा और साधु सम्मेलन चित्तौड की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति के लिए हानिकारक रहे होंगे।

मेवाड मे राज रानिया की मर्यादा राजनीति से नियन्त्रित होती रहती थी और वह कभी स्थिर नही रहती थी। राणा मोकल के जमाने से ही मेवाड, अन्त पुर के षडयत्रों और कुचक्रो का शिकार था 4 (6 7)। बडा राज्य, विविध स्तरो के सम्पक बहु विवाह और निरतर युद्धो के कारण चित्तौड के राजपुरुष कभी घरेलू और गृहस्थ नही रह सके थे। उनके अन्त पुर मे भी इतनी विवधता रहती थी कि रानिया आपसी रीतियो भाषा और प्रथाओ से पूरी तरह परिचित नही हो पाती थी। एक तरह से छत्तीसा राजकुलो और पूरी राजपूती प्रथाओ की खिचडी मेवाड के अत पुर मे होती थी। प्राचीन राज्य परम्परा जातीय गौरव और मर्यादा को बनाए रखन के लिए वहा कुछ मर्यादाए विकसित हो गई थी जिनमे उच्च-भावना, कुल गौरव, जातीय श्रेष्ठता, उच्च चरित्र, नारियों का नियत्रण म रहना, पर्दा पालन आदि पर दुराग्रह की सीमा तक आग्रह रहता था। (11)। राजरानियो बल्कि दावडिया के लिए भी सती होना गौरव की बात मानी जाती थी 1 (40)। मेवाड की परम्पराओं मे स्वय राणा के निणय इतने निर्णायक नही होते थे जितने कि सरदारो और भाई-बधुओ के होते थे। वे लोग राणा के प्रति, राज्य के प्रति इतने निष्ठावान होते थे कि नजराने म अपना सिर देने की प्रतिज्ञा रखत थ 1 (32 33) बताया जाता है कि मेवाड मे सरम्रो सामता के साथ राजा क अपनापे का यह रिवाज था कि महाराजा जब खाने बैठता था तो अपने थाल की चीजो मे से थोडी थोडी चीजें दोने मे रखकर बडे बडे सरदारों को दता था और वे उसे बहुत बडा सम्मान मान कर ग्रहण करते थे 1(31)। ऐसे सामत सरदार यदि मेवाड की मान रक्षा के लिए पहल करें और राणा के मान को अपना मानें तो आश्चय नही। अब यदि मीरा की भक्ति का मेवाड गौरव के विपरीत मानन और बजनाओ का अम्बार खडा करने मे उनकी भूमिका रही हो तो यह असम्भव बात नही कही जा सकती। राजा के कुपित होन पर रानियो के कास' म वटौती करना उनकी सुविधाए बन्द कर देना, दर्जा उतार देना—एसी अ त पुर का प्रथाए भी थीं। अन्त पुर का प्रशासन बडा कठोर होता था 1(20)।

अत मेडता के लोक सम्पक्त परिवश म पली-पनपी मीरा का मवाड मे बाधाओ का सामना करना पडा हो और उसका लोकव्यापी मानस विद्रोही बन गया हो तो ताज्जुब की बात नही। अन्त पुर की मर्यादा रक्षा मे राजरानी के शील और मर्यादा-पालन को कुल गौरव मानन की प्रथा मेवाड म भी 15 (41)। यदि किसी रानी क बारे म कोई विवाद रहा हो तो उसका नाम मेवाड़ की वहियों

मे न लाने की प्रथा थी । तभी मेवाड के इतिहास मे रावल रतनसिंह के समय की पदमिनी का विवरण नही मिलता, सागा के समय की मीरा का भी नही मिलता ।

इस तथ्य के काफी ठोस प्रमाण हैं कि मेवाड मे मीरा केवल अपनी भक्ति के कारण विवादग्रस्त नही बनी होगी । मेवाड के राजवश मे भक्ति पुरातन गुण रहा है। दूसरी सदी विक्रमी से मेदपाट मे वासुदेव पूजा का प्रचार मिलता है 15 (140)। आज भी गाँव गाँव मे वैसे ही देवरे (चबूतरे) होते हैं जैसे कि प्राचीन काल मे थे—जबकि मदिरो का शिल्प-विधान प्रचलित नही था । जैन धर्म भी व्यापक था और चित्तौड के राजा जैन विद्वानो का सम्मान करते थे 15 (116-120)। विष्णु पूजा अक्षुण्ण रूप से लोक मे और राजवश मे प्रचलित थी। उसके प्रमाण दूर-दूर तक—आज के विजन प्रदेशो म भी मिलते हैं। विष्णु पूजा के साथ शैव, शाक्त, मातृका, भैरव, जैन पथ भी लोकव्यापी थे 15(141-142) महाराणा मोकल ने चित्तौड मे द्वारिकाधीश का मदिर बनवाया था 15 (142), कुभा ने कुभश्याम का मदिर 15 (143) बनवाया था। स्वय महाराणा सागा ने स० 1574 से चारभुजा का मदिर बनवाया था 15 (144) जो कि मीरा के इष्ट-देव थे। मेवाड की कई रानिया राज-मर्यादा मे रहते हुए विष्णु की सेवा करती थी, कइयो ने राज्य मे कई स्थानो पर मदिर बनवाए थे। राणा सागा की बुआ रमाबाई ने जावर परगने मे राम स्वामी का मदिर बनवाया था । (29-30)।

तो, मीरा की भक्ति निश्चय ही वजनाओ और कोप ताडनाओ का कारण नही थी। मूल कारण था, राज मर्यादाओ का उल्लघन, मेवाड की जेठी बहू होने पर भी साधु सगत और कीतन सम्मेलन के आयोजन करने का—जिनसे चित्तौड की सवेदनशील राजनीति पर कुप्रभाव पडना स्वाभाविक था ।

मीरा विवश थी अपनी लोकार्जित भक्ति की उद्दाम भावना से और मेवाड का राजवश विवश था अपनी मर्यादाओ की निष्ठा से। यही कारण था मीरा के असमायोजन का जो उनके पदो मे भी प्रखरता से व्यक्त हुआ है—

लोक-लाज कुल की मरजादा, यामे एक न रखूगी ।
पिय के पलगा जा पौढूगी, मीरा हरि रग राचूगी ।।
पीहर बसू न बसू सास घर सतगुरु सबद सगाती ।
ना घर तेरा, ना घर मेरा मीरा हरि रग राती ।।

बडे घर ताली लागी रे, म्हारा मन री उणारथ भागी रे ।
छीलरिय म्हारो चित्त नहीं रे, डाबरिय कुण जाव ।
गगा-जमना सू काम नहीं रे म्हू तो जाय मिलू दरयाव ।
हाल्यां मोल्यां सू काम नहीं र, सीर नहीं सिरदार ।
कामदारां स काम नहीं रे, म्हू तो जाप बडे दरबार ।।

कोई निन्दो, कोई बिन्दो, म्हे तो हरि गुन गास्या।
जिण मारग म्हारा साद पधारे, उण मारग म्हे जास्याँ॥
मोती माणक परत न पहरू, मैं तो कब की नटगी।
गणो तो म्हारे माला दावडी अर चन्नण की कुटकी।

तो, मीरा चित्तौड मे यदि विद्रोहिणी थी तो अपनी लोकार्चित भक्ति की अदम्य भावना के बल पर और मेडता मे वह यदि मान्य थी तो अपनी सहज लोकाभिव्यक्ति के कारण। उसका व्यक्तित्व तत्कालीन लोक मान्यताओ के तत्त्वों से गठित था और उसमे किसी तरह के प्रस्थान भेद, रूपान्तर का उदात्तीकरण या मार्गान्तर की गुजाइश नही थी। यदि उसके व्यक्तित्व मे कुछ लचीलापन होता तो सभवत वह मेवाड घराने मे भक्त राजरानी बन सकती थी मगर जिस रीति से उसने भक्ति वैराग्य और राज मर्यादा के प्रतिकूल साधु सगतो,मे रुचि दिखाई, वह मेवाड की सुदीर्घ मर्यादा परम्परा मे खप नही सकी। मेवाड की राजपूती परम्परा मे तो स्त्री, स्त्री से भी पदा करती है और अपनी सास अथवा जेठा के सामने जबान तक नही खोलती। उसका परम धर्म यही होता था और होता है कि वह कुल की मरजाद निभाए। वह यदि भक्ति और वैराग्य दिखाए, आभूषण, परिवार, लोक सम्पर्क, माला, कठी आदि धारण करे तो उसे 'भगतण' कहा जाता है जोकि किसी कुलीन महिला के लिए बहुत बडी गाली होती है।

मेवाड और मेडता की कुल परम्पराओं मे नारी के स्थान, उसके कर्त्तव्यो और व्यवहार सरणियो मे इतना अन्तर था कि मेवाड मे राजपूत महिला 'कुल की आन' मानी जाकर चहारदीवारी म बन्द रहती थी जबकि मेडता की ओर वह कृषि, हाली, मोली, मनिहार, हमजोली नाते रिश्तेदारो के बीच मुक्त रह सकती थी। राजपूत बघूए भी कुछ समय तक पर्दे और प्रतिबधो मे रहती हैं बाद मे गृहस्थी की आवश्यकतानुसार मेल जोल करती हैं। बेटिया पर तो पाबदी रहती ही नही। एक की बेटी पूरे गाव की बेटी होती है। मीरा का विकास ऐसे ही वातावरण मे मुक्त रूप से हुआ था कि वह तो—

जगती म्हारो पीर साधा सग सासरो" के स्तर तक पहुच चुकी थी। ऐसे धरातल पर पहुचने वाली भक्त के लिए मेवाड की अन्त पुर की वर्जनाए कोई मायने नहीं रख सकती थी। यहा के अन्त पुर का वातावरण तो राजनीतिक हृथ-कडो और कुटिलताओ म गम रहता था। (31)। हमजोलियो बहुओ, बेटियों, प्रौढ़ाओ, वृद्धाओ के अपन जमघट होत थ और वे निंदा, स्तुति, गपशप आदि मे अपना समय बिताती थी। महल और कोठरियां दासियो और दवारियो स भरे रहते थे और उनसे जासूसी, छल कपट और घातक काम भी करवाए जाते थे। राज परिवार और अन्तपुर आम जीवन मे एक भिन्न लोक होता था। (71)। इस वातावरण मे मीरा एक अजूबा हो बनी थी कि उसकी हर क्रिया पर हर व्यवहार

पर, टिप्पणियो से उसका पहला दिन आरभ हुआ होगा और निंदा स्तुति के उस माहौल ने अतत 'बात को बतगड बना दिया होगा।

मेडता और मेवाड के लोकधम मे एक भारी अतर यह रहा है कि मेडता जितनी गहराई से वैष्णव भक्ति, साधु सेवा नाथ पथी विचारधाराओ और सत-पूजा के प्रति सवेदनशील था, मेवाड उन मामलो मे उतना ही उथला था। मेवाड के लोगो म तत्र मत्र के प्रति बडी आस्था थी, शक्ति के विविध रूपो की—त्रिखडा, तोतला, त्रिपुरा, लक्ष्मी, तुलजा भवानी नदा क्षेमकरी, सवती, ब्रामणी, सब मगला, स्वेती, हरिसिद्धि, सुलीला, सर्वांगी ललिता, कालिका लीलावती उमा, पार्वती, गोरी, हिंगलाज, ज्ञातला लालबाई फूलवाई आवरी आदि 15 (150) उपासना प्रचलित थी। कई तरह के धम समातर चलते थे मगर वैष्णव धम की कुछ मायताए ही लौकिक हो सकी थी — जस, चार वर्णों की उत्पत्ति और ऊच नीच के अभिप्राय, गगा का शकर की जटा म रहना त्रिलोतमा द्वारा ऋषियो की तपस्या भग करना, हनुमान का समुद्र लाघना, रेणुका का उद्धार, जरासध का जुडा हुआ शरीर, सुड निसुड की कथा, वराह अवतार, सेतुबध की कथा, आहिल्या तारण, लका दहन आदि 15 (145)। कृष्णलीला या कृष्ण सबधी मत लौकिक नही थे, साधु सगत जैसी बात अप्रचलित थी यद्यपि नाथपथी सतो के प्रति आतक जनित भक्ति प्रचलित थी। मेडता की ओर नाथपथ की इतनी व्यापक भूमिका रही थी कि वहा के लोक जीवन मे इडा, पिंगला, समाधि, ध्यान, योग, पाणीपियोछाण, वैराग्य, असारता आदि के अभिप्राय सहज हो चुके थ।

ऐसी अवस्था मे मीरा की कृष्ण भक्ति मवाड मे हलचल मचाने वाली सिद्ध हुई हो तो आश्चय की बात नही कही जा सकती। मेडता की ओर वैष्णव कृष्ण भक्ति और नाथपथी जोगियो की दीर्घकालीन परम्परा ने 24 (85) सूफी प्रेम-भक्ति के साथ रल मिलकर एक ऐसी लोक धारणा की रचना की थी जिसकी छाया मीरा के पदो मे मिलती है, जबकि मेवाड मे भिन्न भिन्न धम भिन्न भिन्न वर्गों मे स्थापित थे और वे कोई विशिष्ट रूप नही बना सके थे।

अत मीरा का चित्तौड मे अपनी मारवाडी लोक चेतना के साथ प्रवेश, उसका निर्वाह और उसका आग्रह वहाँ के राजघराने मे अप्रासगिक विक्षेप बना तो, यह स्वाभाविक था।

तथापि मेवाड के विशाल अत पुर मे मीरा की भक्ति, उसकी सत-सगतियो और भजन कीर्तन वाली पूजा कम स-कम 15 वर्षों तक तो निभती रही जिसम से केवल अतिम वष मे वजनाओ, निषेधो और निवारण के प्रयत्न सघन हुए होंगे। एतिहासिक तथ्यो के अनुसार विक्रमी 1884 तक मीरा के सामने समस्याएँ गभीर नही बनी थी। राणा सांगा की मृत्यु के बाद वहाँ के राजघरान म और बाहरी सम्बधो मे अस्थिरता, कुचक्र और कुटिलताओ की उग्रता बढ़ी और स-

1889 मे रानी ककरमैती और उसके पुत्र विक्रमादित्य के गद्दी पर आते ही परिस्थितियाँ बहुत विषम हो गई। साधु सतों, जोगियो और भक्तो के रूप मे बाहरी जासूसा और आतरिक विरोधियो की घुसपैठ चित्तौड के महलो तक होन लगी थी। चित्तौड के मुख्य मार्गों पर से सदिग्ध जनो और अपरिचित विदेशियो का आवागमन रोक दिया गया था 11 (50) मीरा के काय व्यापारो पर भी कठोर नियत्रण किया गया होगा जिसके कारण मेडतिया वीरम दे ने उन्हें मेडता बुला लिया होगा। विष देने की योजना या सपदश की कुटिलता—यदि ऐतिहासिक घटना हो तो वह स० 1888 89 म कभी घटी होगी, यद्यपि उसकी सभावना कम है क्योकि ऐसी कुटिलता मेवाड के राजघराने की प्रतिष्ठा के अनुकूल नही ठहरती। वहाँ की अन्तपुर व्यवस्था मे 'नीचे उतार देने की' प्रथा पहले से मौजूद थी और निश्चय ही मीरा के साथ वह किया गया था जिसके सकेत उसके पदो मे भी मिलते हैं—

1 सास नणद दे लीवो लीवो म्हारा मात पिता पछताय।
2 ठडा टूकडा थे पावो कोई पीवो खाटी छाछ।
भू सूखो भूखा मरो कठे मिलै गोपाल॥
3 सासरिया म दुक्ख घारो सास नणद सतावै।
देवर जेठ म्हारो कुटुम कबीलो नित उठ राड चलावै।
4 सासू बुरी है म्हारी नणद हठीली।
5 गढ चीत्तौडे ना रही नही रहण की जोग।
बसस्याँ रूडी दवारिका, जहँ हरि भगतरा भाग॥
6 मीठा लागै टूकडा, काई अमरत लागै छाछ।
भू सूवा, भूखा मरा, मा ने काल मिलै करतार॥
7 सासरिया न दुक्ख घणो रे, सासू-नणद सतावै।
कैजो म्हार वावो सा ने, वेगा लेबा आवै॥—और मीरा के बाबो सा—वीरमदे विक्रमी स० 1889 के आरम्भ म मीरा,को मेडता ले गए 18 (1888)

मीरा को कष्ट देने की बात इससे भी प्रमाणित कही जा सकती है कि इतिहासकार एकमत से विक्रमाजीत को दुष्ट, अयोग्य और नीति विहीन बताते हैं—

विमात बधु उन रान वारो नरेश श्रीविक्रम नीति न्यारो।
बन न जासा महिपाल बन, धनो नसा देह प्रमाद छत्ते।
भानज जो अर्जुन को अभागो, रहे सदा मत्त अफीम रागी।
सु रानहू वै ऊघन का सरा है चित्तौड को राज न जाहि चहे। 25 (2190)

यह भी समव है कि मीरा के साथ दुर्व्यवहार म रानी करमेती और विक्रम के साथ कुछ कुटिल सरदारो-सामन्तो या पुरोहितो का हाथ रहा हो। मेवाड मे प्रचालित एक कहावत—

बीजावर्गी वाणियो, दूजो गूजर गोड

तीजो मिलै जो दायमो, करै टापरो चोड ॥—बताती है कि कोई ऐसी घटना रही जरूर होगी जिसने मेवाड के राजकुल को बिखेरने और निंदा का पात्र बनाने का काम किया होगा और उस घटना मे इन तीन जातियो के लोगो की पहल रही होगी।

चाहे जो भी हो, इतना निश्चित है कि एक तो अपनी अनोखी कृष्ण भक्ति के साथ मीरा चित्तौड मे समायोजित नही हो पाई, दूसरे चित्तौड की कुटिल आन्तरिक दुष्टताओ ने उसका सम्बंध ही चित्तौड से तोड दिया। वरना उसका तो कहना था—कि

1 सात बरस की मैं राम आराध्यो, जब पायो करतार।
मीरा नै परमातम मिलिया भव भव का भरतार॥

2 साध हमारा मैं साध की, हम हैं साधा आग।
साध हमारै मे रम्या, ज्यू पथरी मे आग।

3 साहीडा साडयां फेर देरे, परत न देसु पाव।
ले जाती बैकुठ को, समज्या नहि सीसोद॥

हर परिस्थिति, हर घटना और मीरा के व्यक्तित्व का गठन परिवेशजनित परिणति के रूप मे माना जा सकता है। मीरा का मेवाड त्याग और उसके बाद मेडता का दुर्भाग्य भरा भविष्य भी एक ऐसा सयोग था जिसने मीरा को—

—तात, मात, भ्रात बधु अपना नहि कोई।
—छाड दई कुल की कानि कहा करि है कोई॥
—इक ससार सगा नहि कोई, सोचा सगा रघुवर जी।
मात पिता सैकुटुम कबीला, सब मतलब कैगरजी॥—कहने पर मजबूर किया।

वस्तुत घटना चक्र इस तरह से चला कि मेवाड छोड कर और मेडता जाने पर स० 1589 से 1590 के लगभग एक वर्ष के बाद ही मालदेव के आक्रमण के कारण मेडता छिन्न भिन्न हो गया। 8(41 42) तथा 11(51) वह भी इस कदर कि वीरमदे को अपने परिवार और कुटुम्ब सहित शेखावाटी, अजमेर आदि की ओर भटकना पडा। 26 (27) मेडता से अजमेर, अजमेर से अमरसर से दिल्ली यो 9 वष तक जब वीरमदे का परिवार बेघर बेठिकाने, आश्रय के लिए भटकता रहा हो 27(299) व 10 (36) तो मीरा अपनी भक्ति और लावजमे के साथ कहाँ कहाँ भटकती फिरती! उसके कुल की आन और मर्यादा क्या हो सकती थी जिसका ससुराल भी बिखर गया हो और पीहर भी छिन्न भिन्न हो गया हो। उसकी यह अन्तर्व्यथा छिपी भी नही रही—

मैं तो छोडि कुल की आनि, रानो मेरो कहा करसी ।
साधा रे सग जाय दवारका मैं तो भज्या श्री रणछोड ।।
रायश्री रणछोड दीज्यो दवारका कावास ।
सख चक्र गदा पदम मिटै जग की त्रास ।
सकल तीरथ गोमती म रहत नित वास ।
झाजर झक्षा बजे, सदा सुख की रास ।
तज्यो देस ■ वेस ■ तजि तज्यो राना राज ।
दासी मीरा सरन आवल तुम्हैं अब सब लाज ।।

माना जाता है कि जब बीरमद दर बदर होकर (स० 1591 92) भटक रहे थे और चित्तौड मे विक्रमाजीत की हत्या करके बनवीर ने गद्दी हडप ली थी, रानी करमैती जौहर कर चुकी थी और मेवाड के भावी बालक राजा उदयसिह को कुभलगढ मे छिपकर (स० 1593) रहना पडा था 15 (72) तब सब ओर से निस्सहाय, अकेली और उपेक्षित होने पर मीरा ने अपने रण छोडलाल की शरण ग्रहण की। उसका द्वारिका गमन विक्रमी स० 1593 93 मे हुआ था। कहा जाता है कि द्वारिका के रणछोड मदिर की बहियो म मीरा के आने और लम्बे समय तक वहाँ रहने का उल्लेख है 11 (53)।

मीरा का द्वारिका मे जाकर रहना दुष्कर कार्य नही था। ऐतिहासिक मान्यताओ के अनुसार सीसोदा का मूल गुजरात मे था और गुहिलवशी राजघराने आज भी उधर विद्यमान हैं। इतिहास म चित्तौड की राजकन्याओ के विवाह गिरनार तक होते रहे हैं, हर प्रसिद्ध राणा ने द्वारिका यात्रा की थी और वहाँ मन्दिर तथा निवास बनवाए थे। वहाँ गोमती के तट पर भी मेवाडी राजाओ का एक प्रसिद्ध मदिर था और वही मीरा का प्रवास स्थल था 11 (53)। निश्चय ही द्वारिकावास के अपने 10 वर्षों म मीरा की भक्ति का आवेग प्रखर होकर व्यक्त हुआ होगा। उसमे लोकतात्त्विक चेतना, अवचेतन आकाक्षाएँ, हताशा, असारता आदि के जो परस्पर पोषक और विरोधी आवेग मिलते हैं, वे उसी अवधि के हो सकते हैं जबकि वह कोई राजकन्या, किसी घराने की जेठी बहू, किन्हीं दो राज कुलों की आन, या रानी न होकर सिर्फ मीरा बन गई थी—सब बधनो और प्रतिबद्धताओ से मुक्त।

3 मीरा लोक-सग्रह के अवसर

मीरा के जीवनवृत्त मे किन प्रभावो ने उनका व्यक्तित्व सगठन किया था, कहा-कहाँ से क्या क्या प्रभाव उनके बचपन से उन पर पडे थे और क्यो उनकी भक्ति वैराग्य प्रधानता और हठीलेपन से सम्पृक्त हो गई थी, इन्हें समझने के लिए उनके समय की लोकतात्त्विक भूमिका को समझना आवश्यक होगा।

मीरा के जन्म और विकास के समय सामान्य और राजन्य वर्गों मे शासक-शासित का वैसा वर्ग-भेद और प्रशासनिक विधान नही था, जैसा कि मालवा मे था, गुजरात मे था या मेवाड मे था। रेगिस्तान, पठार, अवर्षा, अन्नाभाव आदि ऐसे भौगोलिक कारण थे जिन्होंने छोटे छोटे क्षेत्रो को सुरक्षात्मक गढो, परकोटो का स्वरूप दे दिया था। उनसे बाहर या तो वीरान इलाके थे या झाड-झखाडो से भरे बीहड थे। जनता म जब भी जो भी धार्मिक, सामाजिक रूढि बन जाती वह अपेक्षाकृत दीर्घजीवी और स्थायी हो जाती थी।

जीवन इतना सघर्षमय था कि परस्पर सहयोग और सहकार के बिना राजन्य वर्ग को या साधारण जन को जीवन-यापन की सुविधा हो ही नही सकती थी। 11वी से 15वी शती विक्रमी तक लगभग पूरे देश मे लोकमानस ने एक समन्वित लोकधर्म और लोकमान्यताओ का विकास कर लिया था—खास करके उत्तरी और मध्यभारत मे 27(17-31) यथा

(1) भक्ति मे लोग वर्ण या जाति भेद आवश्यक नही मानते थे। पूर्व काल मे नाथपथी सिद्धो सतो ने, वैष्णव भक्तो ने और साधु महात्माओ ने इसके लिए आधार भूमि तैयार की थी।

(2) काव्यो और शास्त्रो मे वर्णित सगुण, निर्गुण, प्रेम, ज्ञान, वैष्णव, स्मार्त, शाक्त, सिद्ध आदि मतमतान्तर उस समय तक समन्वित होकर ऐसे सर्वसामान्य लोकमत म विकसित हो चुके थे जिसमे—

ज्ञान मार्ग की मान्यताए भी थी, ईश्वर अलौकिक अरूप भी था और साकार भी था, उसके अवतारी रूप भी थे और वह प्रेम मय भी था वह बालक भी था, योगी भी था, वह नियामक भी था, भय का आलबन भी था और अधम उद्धारक

भी था। जीवन मे अहिंसा दूसरो को पीडा न पहुँचाना, क्षमा, धीरज, इच्छाओ का दमन, चोरी न करना, बटमारी न करना, ठगी न करना, दया करना, सत्सग करना, साधुओ की सवा करना—ऐसे मूल्य व्यापक मान्यता पा चुके थे।

(3) साधु सत्सग और हरि-कीतन सर्वोत्कृष्ट और सर्वाधिक मान्यता पा चुके थे। तुलसी, सूर, मीरा और उनसे पूव के सतो ने इन उपायों को जनता के लिए मोक्ष का सरलतम साधन प्रसिद्ध किया था। साधु सत्सग और कीतन उपदेश के एक मात्र लौकिक सचार का साधन बनने का मुख्य कारण यह भी था कि यातायान, सचार, शिक्षा और देशाटन अभाव के उस युग मे ज्ञान, चेतना और लोकोपयोगी जानकारी का इसके सिवा दूसरा उपाय हो नही था। साधु-सन्त देशाटन करते, तीर्थयात्रा करते और अपने ज्ञान का प्रसार भी करते थे। इसी कारण भक्त और सत कवियो ने सत्सग की, साधु सगत की और साधुसेवा की निर्विवाद प्रशसा की है—

बडे भाग पाइय सतसगा। बिन हि प्रयास होइ भव भगा (7-33 4) तुलसी ने कई प्रसगो मे कई तरह से सत्सग की महिमा बखानी है जैसे—मोहजनित सशय के नाश के लिए सत्सग जरूरी है उसके बिना भक्ति और विवेक का उदय नहीं होता, स न मोदमय, मगलमय, सार्वदेशिक, सार्वकालिक सद्य फल दायक जगम और अलौकिक तीर्थराज हैं इसी जीवन मे चारो फल देते हैं, सन्तो की कभी निंदा नही करनी चाहिए, सतो का अपमान समस्त कल्याणो की हानि करता है। सूर के शब्दो मे भी—

जा दिन सत पाहुने आवत।
तीरथ कोटि स्नान करे फल असो दरसन पावत (सूर सागर ॥ 17)

मारवाड की ओर तो वैसे भी पथिको का आवागमन कम होता था और जिधर साधु सतो का माग होना था उधर लोग खुले मन से उनके सत्सग की भावना रखते थे।

साधु महात्माओ का आना पव माना जाता था और भक्तजन उनके आवास, भोजन, भजन कीतन का अधिकाधिक लाभ उठाने की भावना से अभिभूत रहते थे। वह लोक परिवेश लगभग उसी तरह का होता था जैसाकि हम लोग आज भी जैन मुनियो और सतो के बारे मे देखते हैं।

तथापि साधु सतो के रूप मे कुटिल और दुष्ट खल जन भी अपना स्वाथ साधन करते थे। राजनीतिक जासूसी, कूटनीतिक प्रचार और गुप्तवास के लिए भी इस वेशभूषा का उपयोग किया जाता था। अत जो राज्य जटिल षडयन्त्रो और पेचीदा सम्बन्धो वाले थे उनमे साधु जोगी जती आदि को शका की नजर स देखा जाता था। मेवाड में साधु मडलियों और उनके भजन कीर्तन की लौकिक रीति के प्रमाण नही मिलते। जबकि मेडता, जालोर, जोधपुर, नागोर आदि क्षेत्रो की ओर उनकी

बहुलता थी। स्वयं ठाकुर, जमींदार, सरदार, राव, राजा संत मंडलियों को आमंत्रित करते थे और वर्ष भर किसी न-किसी तरह का आयोजन होता रहता था।

(4) मारवाड़ की तरफ लोकमानस में समानता और ऊंच नीच की भावना का विलोप अपेक्षाकृत बड़े पैमाने पर मिलता है। पशु पालन, कृषि की तुलना में अधिक उपयोगी साधन था और गो रक्षा सार्वजनिक धर्म माना जाता था। लौकिक सहयोग, नैतिकता और समानता का वातावरण कितनी तेजी से बनता था, इसका प्रमाण हमें मल्लीनाथ, पाबूजी, गोगाजी, हरभूजी मागलिया, मेहा, रामदेव जैसे वीरों संतों और उनकी महिमा के क्षिप्र प्रचार से मिलता है 28 (30 62)। ये सब वीर और संत जालौर, जोधपुर, नागौर, चुरू क्षेत्र के थे और उनमें से अधिकांश राजपूत थे। पाबूजी राठौर थे और मीरा के पूर्वजों में से थे 28 (41)। हरभूजी राव जोधा के पूज्य थे और राव दूदा पर भी उनका अटूट प्रभाव था 28 (60)।

इन सब लोक देवताओं ने—जो कि मीरा से कुछ समय पहले हुए और लगभग समांतर भी थे—पशु धन की रक्षा, त्याग, परोपकार, अन्याय का प्रतिकार, जाति भेद का विरोध, सामाजिक समानता, साधु सत्संग, तीर्थ यात्रा कर्मकांड आदि का विरोध, भजन कीर्तन का प्रचार, सत्संग करने का प्रचार, नीच और अस्पृश्य मानी जाने वाली जातियों का उत्थान, स्त्रियों को समकक्षता देने का प्रचार और समन्वित लोक धर्म का वातावरण बनाया था। 28 (61) मल्लीनाथ (1415 विक्रमी में जन्म) ने राव राजाओं के लिए संत सम्मेलन करने और सर्वसाधारण जनता के साथ राज्य वर्ग की निकटता स्थापित करने की प्रथा चलाई थी। वे नाम स्मरण, साधु सत्संग, साधु सेवा और तन्मय होकर भजन-कीर्तन करने को परम साधना मानते थे 28 (57)। तोमर रामदेवजी मीरा के निकटतम समकालीन थे। उन्होंने जिस तरह से कष्ट सहन करके सामंती ठसक और राज मर्यादा आदि का दृढ़तापूर्वक विरोध करके, प्रतिष्ठा पाई थी, वह यदि मीरा के लिए संस्कारप्रद रही हो तो हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। 'घट भीतर सकल तीरथ', 'तीर्थ-व्रत व्यर्थ', सत्संग सब तीर्थों का सार', 'जाति पाँति कुल मरजाद सब जीव का बंधन'—ये सब रामदेवजी की मान्यताएँ थीं। और भी—

—'सत री नाव गुरु खेवटिया रे, बैठो पार हो जावे"

(रामदेवजी की वाणी 101-17)

—'सत्संग सिवा कठेइ नहिं सुधरै तीनूं हि लोक फिरि आवैं
अमर पटो सत्संग में मिलसी, यो फिर कोइ न छुड़ावै"

(राम० वाणी-106-27)

हरभूजी नागोर के थे और राव जोधा तथा उनके पुत्र दूदाजी उनके भक्त थे।

उनके यहाँ साधु संगत की यह स्थिति रहती थी कि हमेशा सदाव्रत चलता रहता था 28 (9)। राव दूदा भी साधु सेवा और सत्संग के लिए विख्यात थे। ऐसे म मीरा के बचपन के संस्कारों को सरलता से समझा जा सकता है।

(5) इन लोक देवताओ द्वारा निर्मित लोक मानस के साथ कबीर, रैदास और रामानन्द की भक्ति और ज्ञान की धारा भी मारवाड़ी लोक जीवन मे समा गई थी। मारवाड़ मे धन्ना भगत (स० 1481) और गागरोन के पीपादास (स० 1491) ने सतगुरु, वैराग्य, सत संगत और 'सत्र हरि जन' वाले लोकमत की भूमिका तैयार की थी। मीरा ने अपने पदो मे पीपा के परचे की बात कही भी है—

पीपा को प्रभु परचो दीन्हो, दिया रे खजीना पूर।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, धणो मिल्या छै हजूर।।

धन्ना टोक क्षेत्र के थे और पीपा गागरोन (कोटा) के। ये दोनो भी मीरा से कुछ समय पहले ही हुए थे और उनके उपदेश साधु संतो की परम्परा मे, मीरा के चेतना काल मे, प्रचलित थे। 28 (73 84)।

(6) और जिस लोकभूमि पर यह संत मत पनपा था, नाथ और सिद्ध सम्प्रदाय की वह मानस धारा भी मारवाड़ मे विक्रम की 6ठी से 9वीं सदी तक गंगानगर से जैसलमेर तक, चूरू नागौर पाली पुष्कर, जोधपुर (मण्डावर), जालोर तक प्रबलता के साथ प्रवाहित थी 28 (19)। मीरा के समय तक उस प्रवाह की कई उपधाराएँ—माननाथी, बालनाथी, रतननाथी जसनाथी पूरे मारवाड़-अंचल मे व्याप्त हो चुकी थी। उनका इतना गहरा प्रभाव लोक मानस पर था कि इड़ा, पिंगला, सुखमना, जागे, बैराग, जोग, घूघरा घमकास्यां, निरंजन, ध्यान, समाधि जैसी अभिव्यक्तियाँ आम आदमी की आम भाषा में भी समा गई थीं 11 (238 40)।

वस्तुस्थिति यह थी कि 13वीं से 16वी विक्रमी का मारवाड़ प्रदेश समन्वय का क्षेत्र था जिसमे ऐसे लोकमानस की रचना हो चुकी थी जो धर्म, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सामाजिक भेदभाव, वर्णाश्रम आदि के मामले में उदार हो चुका था और हर मत की सार्वलौकिक बातें रलमिल कर उसमे समा चुकी थी। 28 (22) उस लोक मानस में ऐसी व्यापकता आ गई थी कि—

"जाति, गोत, कुल, नाम गनत नहि रक होइ के रानो।" (सूरदास) और "जाति, पाँति, कुल-कानि न मानत, वेद-पुरानन साखी।" (सूरदास) जसी अभिव्यक्तियाँ आधारभूत हो चुकी थीं।

(7) इनके अलावा पुरातन काल से चली आ रही भाग्यवाद, विधाता, परिस्थितियो के सामने समर्पण, ज्योतिष, ग्रह, नक्षत्र, कर्म भोग, भाग्य, शकुन-अपशकुन आदि मे विश्वास, पूर्वजन्म, ईश्वर या देवी-देवता के साथ जन्म जन्मान्तर

का कौल, पिछले जन्म के कर्मों का भोग अगले जन्म मे मानना, अगले जन्म के सुधार के लिए इस जन्म मे कष्ट-योजना करना, शुद्ध जीवन के लिए सुख-सुविधाओ का स्वेच्छा से त्याग करना, भूमि पर सोना, रूखा सूखा खाना, छाछ पीकर ही जीने का अभ्यास करना, टाट पहनना, किसी-न किसी तरह का व्रत लेना, मानता करना, कठीमाला धारण करके उस व्रत को हर हालत मे निभाना— ऐसी मान्यताएँ और प्रथाएँ भी प्रचलित थीं। 27 (244) इनके स्रोत या मूल का पता नही लगता किंतु उनके अस्तित्व का पता पच्चीसो लोक कथाओ और लोक-गीतो से लगता है। हुआ यह होगा कि ईस्वी पूर्व के सामाजिक रिवाजो, और जैन, बौद्ध, वैदिक, अवैदिक, यावनी आदि मान्यताओ का उसी तरह से लोक जीवन मे समन्वय और तादात्म्य हो गया होगा जैसाकि परवर्ती युगो मे होता रहा है और आज भी हो रहा है। ऐसी पारपरिक मान्यताओ मे कुछ ऐसी सामाजिक-सास्कृतिक प्रथाएँ भी लोक मे प्रचलित थीं जो स्त्री की पवित्रता, नैतिक-निष्ठा और पतिव्रत की कसौटी मानी जाती थी। कई ऐसे प्रसग आते हैं—पुराणो मे, कथाओ मे, महाकाव्यो में—जिनमे स्त्री को अपनी सत्यनिष्ठा के लिए परीक्षाएँ देनी होती हैं। राम युग मे सीता के बारे मे भी अग्नि परीक्षा का विधान काव्य चर्चित है, महाभारत युगीन द्रौपदी के बारे मे, परशुराम युग मे रेणुका के लिए ऐसी कुछ प्रथाएँ थी—अग्नि में हाथ डालना और उसका न जलना, हाथ मे जलते अगारे लेना, गगाजल हाथ मे लेना और उसका सूख जाना, तुलसीदल हाथ मे लेना और उसका सूख जाना, सर्प को पकडना और उसके दश से बच जाना, विष पीना और उससे बच जाना, खौलते तैल में हाथ डालना। 27 (185) वास्तविकता तो यह है कि मध्यकाल तक (12वी-14वीं सदी तक) प्राचीन-नवीन सब धर्म, विश्वास और मान्यताएँ लोक से इतनी समीप हो गई थी कि इनमे विभेद करना कठिन हो गया है 29 (30 31)। मेवाड मारवाड मे यह स्थिति थी कि एक ही वश के एक राव, राजा या ठाकुर एक मत के थे तो दूसरे किसी दूसरे मत के थे और कही कोई वैमनस्य नही होता था। सम्पन्न हो या साधारण व्यक्ति, उसके जीवन मे दान देना परम धर्म माना जाता था। विश्वास था कि दान देने से रोग शमन होता है, सम्पत्ति की अभिवृद्धि होती है, यश फैलता है 29 (301)। तप को भी मन-शुद्धि और पश्चात्ताप का साधन माना जाता था 29 (304)। विधवाओ के बारे मे मान्यता थी कि उनका वैधव्य पूर्व-जन्म के पापो का नतीजा होता है इसलिए अगला जन्म सुधारने के लिए वे कठिन तप करती थीं। उसमे भूमि पर सोना, रूखा सूखा खाना, श्रृगार न करना, लोगो को मुह न दिखाना, सिर मुडवाना, एकात सेवन करना भजन भाव मे रहना—ऐसे विधान थे।

सृष्टि के कर्त्ता को सब शक्तिमान मानना, उसे आत्मा का अधिष्ठाता मानना, कर्मभोग से चौरासी लाख योनियो मे जीव का आवागमन मानना, काल

की—कमगति या समय को अटल मानना, ईश्वर के भिन्न भिन्न प्रयोजनो से अवतार मानना—मत्स्य, कच्छप, वाराह, नसिंह, हरि, मनु, वामन, राम, कृष्ण, बलराम, सनकादिक रिषभ, हस, मोहिनी, ध्रुव, व्यास, यम, दत्तात्रेय, बुद्ध, नारद, नारायण, निकलक 29 (309 10) और उनमे से राम, कृष्ण, वासुदेव, चतुर्भुज, विष्णु आदि को पर्यायवाची मानना, सतो सिद्धो को सदगुरु मानना, साधु-सतो और सतिया के शाप को आस्था की नजर से देखना, उनके वरदान मे विश्वास रखना, हर अच्छे बुरे काम के लिए मुहूत और लग्न मे विश्वास रखना, 29 (313) स्वप्न के शुभ अशुभ फल मानना मन्त्र तन्त्र और टोने-टोटको मे विश्वास रखना, तावीज, गडे, लच्छे बाधकर शरीर को दैवी आपत्ति से बचाने की मान्यता रखना 29 (321), परावेतन मान्यताओ मे विश्वास रखना, जैसे—पूव जन्म की अधूरी इच्छा की पूर्ति के लिए ही विशेष घर मे जन्म लेना, ईश्वर के किसी शाप या वरदान की पूर्ति के लिए नया जन्म लेना अपने का पूव जन्म का योगी या राज्य या देवदूत या हाथी या मृग या कुछ भी मानने मे विश्वास रखना, प्रेतात्माओ के अस्तित्व मे विश्वास रखना, उसके साथ ही उन्हे वश म करने, उनसे इच्छित काम कराने मे विश्वास रखना, 29 (326) ऐसी अनेकानेक मान्यताएँ सर्वलौकिक हो चुकी थी।

(8) मारवाड मेवाड की ओर राजपूती घराना म स्त्रियो को लेकर विशिष्ट मान्यताएँ और जीवन चर्या और प्रथाएँ निर्धारित थी। बचपन म लडकियो के लिए गुडिया खेलना, गोटे खेलना, अपना रग रूप निखारना, सिंगार करना, हार, माला आदि धारण करना, गौरी पूजना और अच्छे पति की कामना करना, खेल तमाशे करना और देखना, मेलो मे जाना, पर्व-उत्सवो मे रमना हँसी ठिठोली करना, घरेलू व्यवहार सीखना झूठी-सच्ची प्रशसा या निंदा करना, बाहरी लोगो से और साधुओ आदि से लज्जा रखना—30 (24 26) इस तरह के विधान थे। कुलवधू बनने पर उसे पति कुल की 'आन' माना जाता था। पति को ही सवस्व मानना, उसके जीवन मरण के साथ अपना जीवन मरण मानना सती होना, कायर पति स सम्बन्ध न रखना—

> पिय भागै तिस अद्दरै, सौंपे सकल सरीर।
> यह रजपुत्तनि कुक्करी, सुमृतन कही महीर॥
>
> (परमार रासो—22 31)

कुल की मान मर्यादा निभाना—ऐसी मान्यताएँ दढता के साथ स्थापित थी 13 (189 90) राजपूती किशोरियो और युवतियों पर पीहर म भी और ससुराल म भी, सुहागिन पर भी और विधवा पर भी वजनाओ और निषेधा की अधिकता इस कारण भी थी कि अभिजात वग रक्त की शुद्धता और आत्मिक नैतिकता मे विश्वास रखता था—स्त्री की चचलता, कुटिलता और मिथ्याचरण सावलौकिक

भर्त्सना के विषय थे। फिर राजनैतिक और चारित्रिक दुर्घटनाओं की आशंका सदा बनी रहती थी। इसी कारण कन्या के जन्म को दुर्भाग्यपूर्ण मानने की मान्यता भी थी। पिता की ओर से कन्या का सिवाय राजनैतिक हित साधन के दूसरा आकर्षण या स्नेह नहीं होता था, मगर माँ के लिए कन्या और कन्या के लिए माँ अन्तरंग होती थी 13 (195)। अपने मन की बात कन्या माँ से या धाय माँ से कह सकती थी या अपनी अंतरंग सहेलियों से तथापि माँ अपनी पुत्री को व्यवहार की, पतिकुल में समायोजित होने की शिक्षा देती थी—

मात मुत्ति परठिय सुमति। विधि विवेक विनयान।
पतिव्रत सेवा मुष धरम। इहै तत्त मति ठान।
पति लुप्पें लुप्पे जनम। पति बेचैं बेचाइ।
इहै सीप हम धरो। जो सुहाग समवाइ।

(पृथ्वी० रासो 1026/68 69)

सती का पूजना सती चौरे बनाना और सती को देवी मानकर पूजना, मनौती मनाना—यह भी परम्परागत मान्यता सार्वलौकिक थी 13 (243)। मगर, सती होने की प्रथा राजपूत सरदारों सामंतों, राव, राजाओं के घरानों में ही थी और वह भी मीरा के युग तक वैकल्पिक हो चुकी थी—

अरी महरिया क्यू तन जारै, जीवत इस मुर्दे के साथ।
मरे पिया तरे ना मिलि हैं, नाहक दी है पाय गमाय।

(परमार रासो-440)

ऐतिहासिक तथ्य है कि राणा सांगा के साथ करमैती सती नहीं हुई थी। राव दूदा व वीरमदे तथा मीरा के पिता रत्नसिंह के साथ भी किसी के सती होने का उल्लेख नहीं मिलता। सती होने न होने की महिमा जितनी काव्यात्मक और साहित्यिक है उतनी व्यवहार जगत को नहीं है। तभी मीरा ने कहा है—

'गिरधर गास्या सती न होस्या, मन मोह्या घन नामी।।"

(9) मीरा के युग में कुछ दैनिक-जीवन सम्बन्धी आचरण-व्यवहार सम्बन्धी, लौकिक मान्यताएँ भी थी जो स्वस्थ, शांत और सदाचारी सामाजिकता के लिए आवश्यक थी। यथा— चोरी न करना, मारगी या बटमारी न करना, पर निंदा न करना, छानकर पानी पीना (अभिधा में भी, लक्षण में भी) संयुक्त परिवार में राड (झगडे) की अनिवार्यता मानना। 11 (150-51) सहेलियों में नाच-रंग, हास विलास सिंगार पटार, घर व्यवहार की बतबही आम दिनचर्या थी जिसे गंभीर स्वभाव वाली स्त्रियाँ पसन्द नहीं करती थी। बडो में दासियों, दावडियों के जरिये निन्दा स्तुति के प्रसंग दिनचर्या के अंग थे। मीरा जैसी लडकियों को इनमें रुचि नहीं भी होती थी—

आवो सहेल्यया रली करां हे ! पर-घर गवण निवारि ॥

बाकी तो, स्त्री के पुरुष की दासी बनकर रहने की प्रथा परम्परा से लोकार्जित थी 9 (97) बडे घरानों मे जहाँ बहुविवाह होते थे, वहाँ तो रानियों का नाता केवल मोदी खाने से होता था, राजा या राणा से भेंट तो कभी हो जाती तो हो जाती। हास विलास एकात शृगार और पति से भेंट के लिए भी रानियों को दूतियो, विदूषकों खवासा आदि का सहारा लेना पड़ता था। राज मर्यादा यही होती थी कि जिस रानी को जो राजनीतिक दर्जा मिला हो, उसके अनुरूप वह अन्त पुर वासिनी बनी रहे। 'वह कुल की आन' मानी जाती थी और उसके लिए उसे बहुत मर्यादित रहना होता था, यहाँ तक कि 'साका करने' का मौका आने पर उसे जोहर भी करना पड़ता था। मगर, अपनी कोठरी में या महल मे उनकी दिनचर्या सिंगार पटार और विलासिता मे बीतती थी। 5 (132)।

उस जमाने मे बस्तियों की बसावट इस तरह से होती थी कि राजमहल के आसपास सामत, सरदार, पुरोहित, बडे साहूकार आदि बसते थे—जातिवार, समूहबद्ध होकर, और बाहरी घेरो मे कमीन, श्रमिक, शूद्र आदि बसते थे। 5 (146-47) इसलिए समृद्ध वर्गों की जीवन चर्या, निंदा स्तुति आदि साधारण जनो तक अनुश्रुतियो के रूप मे ही पहुँच पाती थी। मदिरो मे पर्व, उत्सव, सकीर्तन आदि का आयोजन किया जाता था। तब लोग उनमे सज धज कर जाते थे। उनके अलावा लोगो के पास अपने को सजा हुआ दिखाने का मौका और नहीं होता था। 3 (148)

(10) आम जनता की रीति राज रीति के अन्धानुकरण की होती थी। जहाँ कहीं राज परिवार मे धर्म या भक्ति का रुझान दिखता था, विविध मत मतातरो के साधु, सन्त, महात्मा, प्रचारक, मठाधीश वहाँ पैठ करने और अपना सम्बन्ध राजपरिवार से जमाने की चेष्टा मे लग जाते थे। हर सम्प्रदाय राज परिवार को अपने से जोड़कर प्रचारित करने लगता था और आम जनता मे किंवदतियाँ फैलने लग जाती थी। राणा कुभा के बारे मे शैव, वैष्णव, शाक्त सब मतो के उल्लेख मिल जाते हैं। राव जोधा को लेकर सिद्ध, सत और वष्णव होने की किंवदतिया प्रचलित हैं। मीरा के बारे मे भी वैसा ही हो तो आश्चर्य नहीं मानना चाहिए क्योकि उस युग मे हर धर्म मत और सम्प्रदाय राज आश्रय चाहकर या उससे अपने को जोडकर लोक व्यापी बनने की आपा धापी मे लगा हुआ था। इसका एक परिणाम तो यह हुआ कि हर मत या सम्प्रदाय की कोई न कोई रीति लोक-मानस मे आकर समन्वित हो गई। तभी हम देखते हैं कि एक ही कवि या भक्त या उपदेशक एक बार ज्ञान और वैराग्य गाता है तो दूसरी बार रास रग के माधुरी भक्ति के गीत गाता है। एक बार वह सुरति निरति माया-ब्रह्म, सुन्न मदिर की बात करता है तो वही दूसरी बार प्रेम पियारे आधीरात के मिलन' और दास-दासी

बनकर चरण सेवा की बात करता है। ऐसी समन्वित रीति लोक-धम मे भी थी कि बिना भेदभाव के लोग नवरात्र मे शक्ति पूजा करते थे, शिवरात्रि पर तन्मय होकर शिव पूजा करते थे, दशहरे पर राम की पूजा करते थे, मानता करन के लिए दरगाह शरीफ भी जाते थे, भैरव उपासना भी करते थे और सतो पीरो के देवरे भी धोका करते थे। ऐसे समन्वित लोकधर्म के उदाहरणा का आज भी अस्तित्व मिल जाता है। अत उस युग के जो भक्त, सन्त, महात्मा या कवि जो कि किसी सम्प्रदाय विशेष से बधे हुए नही होते थे, आम जनता की लोक चेतना की अभिव्यक्ति करते थे। मीरा पर उसके समय के मेडता के परिवेश का ऐसा प्रभाव था कि वहाँ वैष्णव, सिद्ध, सत, नाथ, सूफी मातपूजक, वासुदेवीय, चतुर्भुजीय, लोकदेवता आदि के मतमतातर रलमिल कर एकरस हो गए थे।

(11) मेडता क्षेत्र मे यद्यपि वह नव स्थापित राज्य था और सदा सघपरत था—खान-पान की रीति राजपूती मर्यादा के अनुसार थी। 4 (164) पोषण के लिए अक्सर गोठो का आयोजन होता रहता था जिनमे मिठाइयाँ पानी मे गगा जल मिलाना, उसे सुवासित करना, इलायची, कपूर, पान, कस्तूरी, लौंग का सेवन मुख को सुवासित करने के लिए करना, छाछ का अमृत मानना, दूध, दही, घी, शक्कर के बिना भोजन को रूखा मानना—इस तरह की मान्यताए प्रचलित थी। सामतो, सरदारो, पुरोहितो मे दाभ, बादाम, नारियल, खीर-खाड मेवे सामान्य चीजें मानी जाती थी। सरदारो, प्रसिद्ध वीरो और जुझारो की खुराक पर पूरा ध्यान दिया जाता था। आमतौर पर एक-एक सरदार को डेढ सेर का रोट, डेढ पाव घी, डेढ कूचडा माँस और डेढ सेर दूध मिश्री की खुराक दी जाती थी। लोक मे भी लापसी, चूरमा, खीर-खाड, बाटी दलिया, बाफले, राब का चलन था। उनके लिए मेवामिसरी दुलभ वस्तु थी, खाड और भात भी विशेष सम्मान की चीजें थी 11(153)।

वेशभूषा में लहगा, चोली, बूटेदार ओढना लहरिया, दखणी चीर, कसूमल साड़ी और भाँति-भाँति के आभूषण 11 (138) जैसे राजवर्ग मे होते थे, वैसे ही लोक मे भी, अन्तर उनके सस्ते या महँगे होने का होता था। अगर देव वृन्द के, कन्याओ के, सधवाओ के, विधवाओ के, परित्यक्ताओ के सजने-पहनने के साधन इतने भिन्न होते थे कि देखते ही उनकी पहचान हो जाती थी। राज परिवारो मे सोना, हीरे, मोती वैभव के प्रतीक होते थे, विलास की भाँति भाँति की चीजें होती थीं और साधारण जनो मे चाँदी, पीतल या रागे के आभूषणो का चलन था। उनकी घडत मे भी जाति और स्तर के अनुसार विशिष्टताएँ होती थी। यानी लोक जीवन मे परम्परा से जाति भेद इतनी गहराई तक चला गया था मगर धम भक्ति, उत्सव, पर्व आदि मे सब समान हो जाते थे।

लोक-जीवन की दिनचर्या या तो कृषि जीवन आधारित या पशु पालन आधा

रित थी। प्रात उठकर कलेवा करना, दूध-दही बेचने जाना, खेत जाना, भैंस-गाय दुहना, घास पूले लाना, रसोई करना, दोपहरी ले जाना, पानी भरने जाना, हाट-बाजार करना, बाजार मे बिछायत करना—चादर बिछाकर अपना माल बेचना, बजारो से सौदे करना, इस तरह के प्रतिदिन के व्यवहार होते रहते थे। भिन्न भिन्न जातिया और सेवा कर्मियों की अपनी दिनचर्या अपने ढग की होती थी और फुरसत या पव उत्सवा पर लोग अलग-अलग ढग से खेल-तमाशा मे भी रमते थे—यथा—पत्रग (?), फाग, चौपड, चट-भट रस्साकशी, घूसा मुक्की, शिकार, नट-नटी के खेल, नाच गाना, रेल-पेल जिसमे किशोर किशोरियाँ सब शामिल होते थे। होली सर्वाधिक लोक प्रचलित त्यौहार था। 11 (144 45) मोर, सारस, बगले, दादुर, कागा, कोयल जैसे पक्षी, गाय, भेड, बकरी, हिरण, भैंस, कुजर जैसे पशु मधुमक्खी, बीर बहूटी जैसे कीट पतग, आम, महुआ, नीबू, कनेर जैसे फलदार वक्ष पौधे और झाडियो से भी लोगो की दिनचया जुडी हुई थी। प्रकृति के अदभुत व्यापारो, ऊजड खेडो, खडहरो आदि से जुडकर भूत प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी डायन, राक्षस, चुडैल, जिन, परी देवता, परचा आदि भयदायक या आकाक्षा जनिक विश्वास भी प्रचलिक थे और उनके निराकरण मे मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण वाले तत्र मत्र टोने-टोटको का अभाव भी लोकमत मे नहीं था। 11(140-155)

भिन्न भिन्न जाति स्तरो के जीवन मूल्य यद्यपि भिन्न होते थे तथापि भूमि प्रेम सवव्यापक और सर्वोच्च होता था। कई जातियो मे जो युद्ध प्रिय थी—भूमि और स्त्री दो ही मानदड होते थे। उनके उदाहरण आज भी दिखाई देते हैं।[1] स्वामिभक्ति राजगुण माना जाता था। वचन पालकता को आन माना जाता था और उसकी व्यापकता सरदारो चारण, भाटो, पुरोहितो, महाजनो, व्यापारियो तक थी। स्वाधीनता का मूल्य भी ऊचा था और सेवा मे भी व्यक्तिगत स्वाधीनता का सम्मान किया जाता था। राजपूती आन मे पारिवारिक या कुल जनित नियम नियमों को आचार विचार को भी स्वाधीनता के समान मूल्य दिया जाता था। नेम को अटल माना जाता था, चाहे उसके लिए कुछ भी सहन करना पडे।

4 मीरा व्यक्तित्व मीमासा

रचनाकार अपने परिवेश का उत्पाद होता है। उसके व्यक्तित्व के घटक जितने आनुवशिकी होते हैं उतने ही वातावरण मे पोषित और परिपक्व होते हैं। मीरा उस आनुवशिक परम्परा म थी जिसमे पाबूजी जैसे लोक देवता हुए थे। 28 (41) पाबूजी का समय विक्रमी 1296 का था। वे राठौर राव धांधल के पुत्र और राव आसथान के पौत्र थे। उनके जीवन के कई पराक्रम एसे कहे जाते हैं जिनकी कल्पना उस युग की राजपूती या जातीय परम्परा मे कोई भी कर नहीं सकता था। उस समय सिरोही कोलू के बीच 'आना बघेला' का ठिकाना था। वहा के भगोड़े साठ थोरी (अन्त्यज और अछूत) भाइयो को जब बघेला के भय से किसी ने आश्रय नही दिया तब पाबूजी ने उन्हे शरण दी, उनकी रक्षा की बल्कि राज्य ने उन्हें सम्मानित पदो पर स्थापित किया। वीरता, वैराग्य, गो रक्षा, वचन पालकता और इच्छा शक्ति की दृढता के कारण उन्हे लक्ष्मण का अवतार माना गया था। गो-रक्षा मे शहीद हो जाने के कारण जनता ने उन्हे लोक देवता के रूप में पूजा। 28 (41-44)

तय बात है कि पाबूजी की परम्परा जोधाणो के लिए गौरव की बात थी। और दूदा जी उस परम्परा के वैष्णव भक्त थे। मेडता का वातावरण भक्ति, कीर्तन, साधु सत्सग और सामाजिक सौमनस्य से भरा-पूरा था और उसम पली-पनपी मीरा के लिए साधुओ के लिए भक्ति भाव, भक्ति से पवित्रता की कल्पना, जीवन मे भक्ति से ही सुख, असारता मे सार, क्षणिकता मे स्थायित्व जसे सम्बोधो का विकास असगत नही था। उसके व्यक्तित्व मे साधु-सगत इतनी गहन भावना से सम्पक्त हो गई थी कि —

साध हमारा हम साधकी, हम हैं साधो आग।
साध हमारे मैं रम्या, ज्यू पथरी मे आग॥

11(159)

माई म्हारे साधां, री इकत्यार है।
साधु ही पीहर, साधु ही सासरो, साँवरिया भरतार हो।

जात पाँत कुल कुटुम कबीलो, साधु ही परिवार है।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, रमस्यो साधो लार है।
32 (111-159)

वरजी री म्हाँ स्याम बिना न रह्यां।
साधो सगत हरि सुख पास्यू, जग सू दूर रह्यां ॥
31 (127 60)

साधु मात पिता कुल मेरे, सुजन सनेही ग्यानी।
सत चरण की सरण रैन दिन, सत कहत हूँ वानी ॥ 33 (107 30)

चाहे कुल मरजादा रहे या जाए, निंदा हो या स्तुति, चाहे प्राण जाए मगर, साधु सगति छोड़ना मीरा के लिए प्राण विसजन जैसा हो गया था।

साधुओं के बारे मे, जोगी-जती सन्यासी आदि के बारे मे मीरा की मृत्यु के 40 45 वर्ष बाद ही तुलसीदास ने भ्रष्टता का जो चित्र अपनी कवितावली, विनय पत्रिका आदि मे दिया है वह चाहे प्रादेशिक हो, मगर यह सोचने को विवश करता है कि मारवाड मेडता की ओर वैसी भ्रष्टता—मीरा के समय मे थी या नही। तुलसी का कहना है—

सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना ॥
34 (7-99)

दभिन निज मत कलपि करि प्रकट किए बहु पथ। 31 (76 97)

सूद्र करहिं जप-तप व्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना।
34 (7-99)

नहिं तोष विचार न सीतलता।
सब जाति-कुजाति भये मगता ॥ 34 (7 101)

जबकि मीरा का कहना था—

सेवा साधू जनन की, म्हारे राम मिलण की आस।
33 (106 29)

आज म्हारो साधु जनन रो सग रे राणा म्हारा भाग भल्या।
साधू जन रो सग जो करिये चढे ते चौगुनो रग रे ॥
33 (108 33)

इस तरह की गहनतम साधु सगत की भूख मीरा के व्यक्तित्व का वह अतरग घटक या जो उसकी हठधर्मिता विद्रोह जगत बोध की तटस्थता, पीहर या ससुराल की मर्यादा चेतना से शून्य और विकट अन्तर्मुखी प्रवत्ति का प्रेरक था। इस घटक का प्रभाव शायद बचपन का वातावरण था। मीरा का कथन है—

सात बरस की मैं राम आराध्यो, जब पायो भरतार।
मीरा नैं परमातम मिलिया, भव भव का भरतार ॥

तथ्य बताते हैं कि अपने पिता रतनसिंह के निरन्तर युद्धो और व्यवस्थाओ मे व्यस्त होने के कारण मीरा मेडता मे बाबा राव दूदा और दादा वीरमदे की स्नेह छाया मे पली थी। वहाँ का वातावरण भक्ति, सत्सग और चारभुजा की पूजा-अचना का था। बचपन से ही गजाधर पडित को मीरा की शिक्षा दीक्षा के लिए नियुक्त किया गया था। वे पडित चारभुजा की सेवा पूजा भी करते थे और बालिका मीरा को कथा-पुराण भी सुनाते थे, भजन-कीतन भी करते थे। यह भी तथ्य है कि राव दूदा और वीरमदे निश्चिन्त गृहस्थ नही थे युद्धो और सघर्षों से उन्हे घर पर रहने और राज मर्यादोचित शिक्षा का ध्यान रखन का समय कम ही मिलता था। फिर मीरा स्वत राजपुत्री नही थी, वह दूदा के ऐसे पुत्र की पुत्री थी जो राज्य का उत्तराधिकारी नही था, भायला था, जिसकी हैसियत सिफ 12 गाँवो के ठिकानेदार की थी। वह हैसियत भी इस तथ्य पर निभर थी कि वह अपने कठिन कर्त्तव्यो का पालन करता रहा, वह भी ऐसी स्थिति मे जबकि मेडता का राज्य नया नया ही स्थापित हुआ था और उस पर जोधपुर के बरसिंह तथा उसके पुत्रो की गिद्ध दष्टि लगी हुई थी।

ऐसी स्थिति मे मीरा को राजपुत्री की मर्यादाओ, प्रतिबधो, सीमाओ, निषेधो के दायरे मे न तो बाँधने की जरूरत थी, न कोई बाँधने वाला था। उसका स्वभाव निश्चित रूप से अन्तर्मुखी और एकातिक तथा चिन्तन प्रिय रहा था जिसे आज के मनोवैज्ञानिक असामान्य बच्चे के लक्षण कहेंगे। 'मीरा की परची' 30 से पता लगता है कि—

गुडीया गोटा सयाँ रमावें,
मीरा सत-सेवा पधरावै।
रग रूप सईयाँ मिल राचै,
मीरा हरि के मिंदर नाचै।
सईयाँ मिल-मिल मगल गावै,
मीरां कू हरि का जस भावै।
हार डोर सईयाँ गल पैहरे,
मीरा कठी माला हेरे।
सईयाँ फिरि फिरि वान मनावै,
मीरां हरि बिन सिर नाँहि न्यावै।
सब सईयाँ सिफ भवरां पूजै,
मीरां भगति सतां नैं बूझे।
सईयां हस-हस करें तमासा,
मीरां बोसें बचन उदासा।

सईया सीखै विष व्योहारा,
मीरां सिवरै सिरजण हारा।
सईयां झूटी झिकर चलावै,
मीरां उनमन हरि गुण गावै।
सईयां साध संतो सू लाजै,
मीरां हिलमिल भगत साजै। 30 (24 25)

—मीरा बचपन से ही विशिष्ट थी। अंतर्मुखी, चिन्तन प्रधान और एको न्मुखी भावना प्रवणता के बिना वह ऐसे दिवा स्वप्न नहीं देख सकती थी कि—

माई म्होनै सुपने मे परण गया जगदीस।
सोती को सुपना आवीया जी सुपना बिस्वा बीस।
अग-अग हल्दी मैं करी जी, सुधे भीज्यो गात।
छप्पन कोट जहाँ जांन पधारे, दुलहा श्री भगवान।
सुपने मे तोरन बांधियो जी, सुपने मे आई जान।
मीरां को गिरधर मिल्याजो, पूरब जनम के भाग।
सुपने मे म्हानै परण गया जी, हो गया अचल सुहाग॥ 33(105 36)

और, असामान्य आत्मनिष्ठा न होती तो उस स्वप्न को जीवन का परम सत्य मानकर असामान्य हठ धर्मिता का अद्वितीय उदाहरण भी नहीं बनती। मनोविश्लेषणकर्ता मीरा के व्यक्तित्व मे मातृवात्सल्य का अभाव, निश्छल पित छाया की कमी, सहज स्वाभाविक स्नेह का अभाव, अकेलेपन वाला बचपन जैसे कारण 23(5 10) खोज लेते हैं, मगर सचाई यह माननी चाहिए कि अतीन्द्रिय आत्म तत्व कभी इतना प्रखर भी हो सकता है कि वह व्यक्ति के चरित्र और व्यवहार को आजीवन आच्छादित कर ले। मीरा के साथ ऐसा ही हुआ था कि वात्सल्य और सहज स्नेह की उसकी उत्कट आत्मपोषित भावना कृष्णोन्मुखी हो गई 23(15)।

उसके व्यक्तित्व की यह विशेषता और बचपन मे साधु-सतो से मिला उन्मुक्त स्नेह उसके मन मे घर कर गया कि सच्चा सुख हरि स्मरण मे है। ससार की असारता का, काया की नश्वरता का, पूर्व जन्म के कौल का यदि मीरा को बचपन से ही विश्वास हो चला हो तो अचभे की बात नहीं होगी। वह अ… उसे अनोखा बना गया। हरि स्मरण से आगे बढते-बढते उसकी उत्व… —आयु और परिस्थितियों के सन्दर्भ से—किस तरह दाम्पत्य भा… ग्रहण किया होगा? यह किसी स्वतत्र अध्य… का विषय हो सकता कथ्य जरूरी है कि—

देवर जेठ म्हारे कुबुधी, नित की छाडै राड। 11 (167)

सासू बुरी है म्हारी ननद हठीली। 11 (167)

सासरिया मे दुख घणो रे, सासू ननद सतावै।

देवर जेठ म्हारो कुटुम कबीलो नित उठ राड चलावै॥
11 (167)

इस टकराव मे उसके व्यक्तित्व का वह हठीलापन उभरता है जो हमे पाबूजी की याद दिलाता है, या वीरमदे की याद दिलाता है, जिन्होने नौ बरस तक दर-बदर रहते हुए भी अन्तत मेडता वापस लिया। ऐसा हठीलापन मीरा को विरासत मे मिला था। वही उसे कहला सका था—

—म्हाने गुरु गोबिन्द री आण, गोरक न पूजा। 33 (106 29)

—राणा जी म्हे तो गोवद का गुण गास्यां।

चरणामृत को नेम हमारो, नित उठ दरसण जास्यां॥
33 (108 34)

—नहिं भावे थारो देशडलो रग रूडो।

थारा देस मैं राणा भगति नहिं छै लोग बसै सब कूडो॥
33 (109-35)

थे तो राणा जी म्हाने इसडा लागो ज्यू बछन्न मे कैर।

महल अटारी हम सब त्यागा, त्याग्यो थारो सैर।

काजल टीकी राणा हम सब त्याग्या, भगवा चादर पैर॥
33(110 37)

—सीसोद्यो रूठो तो म्हारो काइ करसी।

म्हे तो गोवद का गुण गास्यां। 33 (110 38)

—म्हें तो गोविंद का गुण गाना।

राणा रूठे नगरी राखै, हरि रूठे कहँ जाणा। 33(112 43)

गढ चित्तोडे ना रहाँ नहिं रहण को जोग।

वसस्यां रूडी दुवारिका, जहँ हरि भक्तां रा भाग॥ 11 (53)

अपनी टेक के कारण मीरा को चाहे चित्तोड छोडना पडा, परिस्थितियों की कुटिलता के कारण मेडता भी छोडना पडा, सब ओर से निराश्रित होना पडा, मगर उसका व्यक्तित्व अटल और अडिग रहा। उसके व्यक्तित्व ने बचपन मे जो लोकव्यापी तत्त्व सगठित किये थे वे खुलकर तब प्रगट हुए जब वह उन्मुक्त होकर द्वारिका वास करने लगी—

रामश्री रणछोड दीज्यो द्वारिका वास।

सख चक्र गदा पद्म मिटै जग को त्रास।

मकल तीरथ गोमती के रहत नित बास ।
झालर झझा बाजें, सदा सुख की रास ।
तज्यो देस रू बेस हू तजि तज्यो राना राज ।
दासी मीरा सरन आवत तुम्हें अब सब लाज ॥ (22)

एक व्यक्तित्व जो बचपन से हरि भक्ति, लोक स्नेह, साधु-सगत और निश्छल भावभूमि पर पनपा, राजकुलो की नारी मर्यादा, निषेधो, वर्जनाओ और ताडनाओ की टकराहट से बदला नही झुका नही, टूटा भी नही बल्कि लोकानुगत हो गया, लोकव्यापी हो गया और लोकाश्रित हो गया—यह मीरा के विकास का सार कहा जा सकता है ।

तभी मीरा का जस, मीरा की कीर्ति, उसकी स्तुति और वदना के गीत उसके पीहर और ससुराल वालो ने नही गाए, जनता ने गाए, भक्तो ने अपने-अपने ढग से उन घटनाओ और भक्ति के उद्गारो को सजोया—चाहे उनमे उन्होने अपनी छाप भी लगा दी हो । हर लौकिक भक्त और महान व्यक्ति के साथ ऐसा होता आया है । लोक मानस की श्रद्धा, उनकी भक्ति, उनकी भावना जब खुलकर अभिव्यक्ति होती है तब उसमे अपने-पराये का भेद नही रह जाता । महानता व्यापक हो जाती है और उसमे सबका समावेश हो जाता है ।

मीरा के पदो के जो देशव्यापी सकलन मिलते हैं, उनमे मीरा के व्यक्ति को खोजना सरल काम नही है । उनमे देश हो गई है, युग हो गई है बल्कि जगत हो गई है । तभी तो कहा है—

जगती म्हारो पी'र, साधा सग सासरो ।
मोहन चतुर सुजान, हरिजी रो आस रो ॥ (35)

मीरा के बारे मे ऐतिहासिक दस्तावेज चाहे कम हो, अधूरे हो, लोक भावना ने जो कुछ सकेला है, सहेजा है, वह उसके व्यक्तित्व की प्रखरता, टेक और उसकी महानता और प्रसिद्धि को समझ पाने मे सहायक है ।

ऐसे बहिर्साक्ष्यो की काफी बडी सूची है जिनमे मीरा के राठौर वश के चारण, भाट, पुरोहित भी हैं, परवर्ती ठाकुर और भक्त भी हैं, वल्लभ मत के, सम्प्रदाय के, वैष्णव-पथ के, नाथपथ के, परवर्ती भक्त और सत भी हैं और जैन साधु-साध्वियाँ भी हैं। ऐसे बहिर्साक्ष्यो का समय मीरा के जीवन काल से लेकर उन्नीसवीं सदी विक्रमी तक जाता है । जहाँ तक मीरा के पदो का प्रश्न है, वे मीरा के स्वयं के कितने हैं, लोक के कितने हैं यह उत्तर अब तक अनुमानित है और अनुमानित रहेगा । किन्तु भावना मीरा की है जो लोक ने स्वीकार की और उसे अपनी-अपनी भाषा में उसने आज तक जीवित रखा है ।9 (13-39)

ऐसे साक्ष्यों से मूलत जो तथ्य उभरते हैं वे ये हैं—

(1) मीरा मेडतिणी का हठीला व्यक्तित्व था जिसने अपने ससुराल की कुल मर्यादा, सासारिक लाज की परवाह न करके भक्ति की ।

(2) उसके व्यक्तित्व की जो अनूठी विशेषता राज विरोध का कारण बनी, वह भक्ति भावना नही थी बल्कि साधु सगति की अटल टेक थी जिसे उसने नही छोडा और क्या मेवाड तथा क्या मेडता वाले—उन्होंने उसे छुडवाना चाहा तो छुडवाना ही धार लिया । इस खीचतान मे ही—परिस्थिति वश ही सही—नाते रिश्ते टूट गए और मीरा लोकमयी हो गई ।

(3) मीरा यद्यपि राज घराने के एक ठाकुर की कन्या थी और एक महत्व-पूर्ण राजवश की बहू थी फिर भी ससार के वैभव, राजसुख, सिंगार, भोज आदि उसे भक्ति-पथ से विचलित नही कर पाए । जबकि राज-वशो की ओर से वर्जनाओ, निषेधो और प्रतिबन्धो के जितने प्रयत्न हुए उनसे उनका साधु सगत का आग्रह बढता चला गया । इस सीमा तक कि अन्तत वह सब मर्यादाएँ तोडकर लोकव्यापी हो गई ।

काल क्रम से देखें तो विविध स्रोतो मे मीरा सम्बन्धी मत उल्लेख इस तरह से मिलते हैं ।

(1) नरसी मेहता मान्य समय विक्रमी 1528 से 1595 । इनके एक पद मे मीरा की एक परची का हवाला आता है—

मीराबाई ना विष अमृत कीधाँ, बिदुरनी आरोगी भाजी रे ।।
11 (271)

यदि नरसी मेहता का समय सदिग्ध नही है तो मानना होगा कि मीरा के राजकुल की घटनाएँ गुजरात काठियावाड तक फैल चुकी थीं । उस जमाने मे जब साधु सतो का निरन्तर आवागमन द्वारिका मेडता मेवाड-वृन्दावन होता रहता था सब लोक प्रवादो के फैलाव मे कोई देर नही लगती थी ।

(2) हरिराम व्यास रचना काल का मान्य समय विक्रमी 1612 और निर्वाण विक्रमी 1630 । यह स्वामी हितहरिवश के शिष्य थे, ओरछा के निवासी थे और वृन्दावन मे निवास करते थे । उनके पद मे उल्लेख आता है—

(i) इतनो है सब कुटुम हमारो ।
सैन, धना अरु नामा पीपा, कबीर रैदास चमारो ।
रूप सनातन को सेवग, मगल भट्ट सुढारो ।
सूरदास परमानद मेहा, मीरा भगति विचारो ।। 11 (259)

(ii) मीरा बाई बिनु को भगतनि पिता जानि उर लावै ।
स्वारथ परमारथ जैमल बिनु को सब बधु कहावै ।। (वही)

अर्थात विक्रमी 1612 अथवा उसके चार छह वर्ष बाद तक मीरा की साधु सेवक के रूप म इतनी ख्याति हो चुकी थी कि परवर्ती साधु-सत उन्हें स्मरण करने

लगे थे। निश्चित रूप से वह ख्याति उन्होंने बचपन से अर्जित की थी और साधु-सतो को पितृवत मानकर उनसे ज्ञान ग्रहण करने की उनकी अटल वृत्ति थी।

(3) नाभादास इनका समय विक्रमी 1632 से 1680 तक मान्य है। ये कृष्ण भक्त थे और अनक भक्तो पर इन्होंने भक्तमाल की रचना की थी। उसमे मीरा के बारे मे भी एक छप्पय है—9 (13-14)

सदश गोपिका प्रेम प्रकट कविजुगहि दिखायो।
निरकुस अति निडर रसिक जस रसना गायो॥
दुष्टनि दोष विचारि मृत्यु को उद्यम कीनो।
बार न बाको भयो, गरल अमरित ज्यू पीयो॥
भगति निसान बजाय कै, काहू तै नाहिन डरी (लजी)।
लोक लाज कुल शृखला, तजि मीरा गिरधर भजी। 33 (244 1)

इसमे व्यास जी की अपेक्षा एक लक्षण और व्यक्त होता है कि मीरा का व्यक्तित्व निडर और निरकुश था, भक्ति के पथ पर वह किसी से नहीं लजाई या डरी—यहां तक कि उसके लिए लोकलाज और कुल मरजादा भी छोडनी पडी तो उसने उसे छोडा। ऐसी जब सतो और भक्तो मे मीरा की ख्याति थी तो व्यवहारत घटनाए अनुश्रुत रही ही होगी। आज भी देखा जाता है कि जिन बडे लोगो की ख्याति, धम, साधु सत्सग, सदाव्रत, दान धम की ओर होती है उनके बारे मे वे लोग ही ज्यादा सवेदनशील और सावचेत होते हैं जिनका उन कामो से प्राप्ति सम्बन्ध होता है। कहां भडारा हो रहा है, कौन दाता उदार है, कौन सकट मे है—इसका पता पडौसियो और समवर्गीय को नही होता मगर दूर दराज से आने वाले साधुओ, मगतो, याचको आदि को को विद्युत गति से उनकी खबर हो जाती है। सामाजिक सचार प्रणाली की इसी विशिष्टता ने मीरा की साधु सगति को, उसकी भक्ति भावना को उसके जीवन-काल मे ही व्यापक बना दिया हो तो आश्चय नही।

और ऐसे प्रचारक जनो को मीरा के जनम, विवाह, परिवार आदि से क्या लेना-देना हो सकता था? सिवा इसके कि वह साधु सतो का सम्मान करती थी। पोषण करती थी आदर देती थी और उनसे ज्ञान प्राप्त करती थी।

मगर, एक बात और ध्यान मे रखनी होगी। मीरा अवश्य ही साधु सगत करती होगी, साधारण राजपूत कुल वधुओ की तरह उनसे पर्दा और लज्जा भी नही करती होगी, उन्हे पिता समान मानती होगी मगर उनसे व्यवहार मे अवश्य ही उसका प्रखर व्यक्तित्व अपनी विशिष्टता कुलीन पार्थक्य और अनमनीय गौरव को अक्षुण्ण बनाए रखता रहा होगा। यदि वैसा न होता तो उस जमाने की मत मतातर की आपाधापी मे अवश्य ही कोई न-कोई सम्प्रदाय उसके नाम को पचा लेता, उस पर अपने सम्प्रदाय की छाप लगा देता। उन्मुक्त साधु सतो के सम्मेलन

के उपरान्त भी मीरा किसी सम्प्रदाय से नही बँधी, केवल कृष्ण प्रेम मे रमी। यह उसके व्यक्तित्व के अटल निश्चय और अनढ प्रेम का प्रमाण बनता है।

(4) दादूपंथी राघवदास—इनका समय विक्रमी 1653 1746 कहा जाता है और उनका मीरा-वरनन वि० 1717 था। इनका मीरा-वरनन 'भक्त-माल के समान है—11(265) यथा—लोक, वेद, कुल, जगत के सुख छोडकर श्री हरि भजना, कलियुग मे गोपी प्रेम की रीति प्रकट करना, सत समाओ मे निडर रह कर कृष्ण भक्ति करना, राणा का कोप करना, जहर का प्याला पीना, गिरधर को पति मानना, भक्ति की नौवत बजाकर भक्ति को प्रसिद्ध करना। इनके अलावा किसी कुटिल सत द्वारा मीरा के सामने कुत्सित प्रस्ताव करना और उसकी निडरता से भयभीत होना अकबर का मीरा के दर्शनार्थ आना, जीवगोस्वामी की गाथा, चित्तौड से द्वारिका जाना और वही लीलाधाम पाना—इतनी गाथाएँ नही हैं।

(5) दयाबाई—इनका रचना समय विक्रमी 1765 कहा जाता है। मीरा सम्बन्धी एक दोहे मे इन्होने केवल विष पान की गाथा का उल्लेख किया है। 36 (308)।

(6) प्रियादास—इनका समय विक्रमी 1760 1794 माना जाता है, यानी मीरा के लगभग 100 वष बाद। ये भी वृन्दावन के वासी थे और गौडीय भक्त कहे जाते हैं। इनके चार दोहे मीरा की टीका के हैं 9(14) जिनके अनुसार मीरा को घुघरु बाँधकर नाचते, करतार लेकर बजाते और ससार को तिनके की तरह मानते बताया गया है। साथ ही ललिता नामक सखी के साथ वृन्दावन यात्रा की बात भी कही गई है। भक्ति के आवेश मे नाचने गाने की यह कल्पना तन्मयता दर्शाने के लिए की गई हो तो विस्मय की बात नही होगी। हो सकता है, मीरा छाप के भजनो मे ही तब तक नृत्य कीतन की बात जमा दी गई हो।

प्रियादास ने मीरा की कथा को पूरा सिलसिला देकर उसे "भक्ति का प्रकट रूप" सिद्ध कर दिया है। लगता है कि मीरा सम्बन्धी जितने मत, तथ्य, मिथक उस समय तक बन गए थे, उनका सम्पादन करके प्रियादास ने उन्हे एक ऐतिहासिक कथा का रूप दे दिया। तदनुसार—

(1) मीरा का मेडता में जन्म (2) बचपन से ही कृष्ण भक्ति का उन्माद (3) राणा के घर विवाह (4) कृष्ण का पति रूप म वरण—यह भी कि मावर के समय भी कृष्ण की मूर्ति और शालिग्राम बटिका उसके बटुए मे थी (5) ससुराल जाते समय माता पिता से गिरधर की मूर्ति को दहेज मे माँगना (6) ससुराल मे गृह प्रवेश के समय गोरल पूजा से इनकार करना, फलत सास से विवाद (7) सास की शिकायत पर राणा/युवराज का मीरा को सेल मारने आना मगर नारी हत्या के भय से रुक जाना। नतीजन मीरा को एकान्तवास का दड देना (8)

तथापि मीरा का देवदशन को जाते रहना और साधु सतो को आमत्रित करते रहना (9) ऊ़दा नामक नणद द्वारा राजवश की लज्जा रक्षा के प्रयास, मीरा को समझाना और वापस 'महलो पर' चढाने का प्रयत्न करना (10) असफल होने पर राणा द्वारा मीरा को विष का प्याला भेजना, साधु-सगत मे किसी कपटी साधु द्वारा मीरा के साथ कुत्सित आचरण, राणा, द्वारा मीरा पर गुप्तचर लगाना (11) मीरा का वृ दावन जाना, जीव गास्वामी का भ्रम मिटाना, चित्तौड वापस आना (12) राणा क दुर्व्यवहार से चित्तौड त्यागना और द्वारिका मे जाकर वास करना (13) चित्तौड पर आपत्तियाँ आना, उनको मीरा के प्रति अत्याचारो का परिणाम मानकर मीरा को वापस बुलाने के लिए ब्राह्मणो को द्वारिका भेजना (14) रणछोड जी के विरह से दुखी होकर मीरा की प्रायना (15) रणछोड जी की मूर्ति मे मीरा का समा जाना 7(15) इस प्रकार से प्रियादास ने मीरा की गाथाओ की एक सिलसिला दिया है जिनमे से कुछ तो ऐतिहासिक तथ्य हैं और कुछ युग-धारा, जिसने मीरा की भावनाओ को, भजनो का रूप देकर, उन्हे चरि-ताथ करन की कोशिश की होगी।

चाहे जो हो, इन गाथाओं से मीरा के व्यक्तित्व की अटल अनहता व्यक्त होती है। वह इतना बताने मे सक्षम है कि उसने सब कुछ छोडा मगर लोक-सम्पक और लोक जीवन से अछूता रहना स्वीकार नही किया।

(7) नागरीदास—इनका मूल नाम सामतसिंह था। यह जोधपुर के महाराजा उदयसिंह के छोटे पुत्र कृष्णसिंह की सतानो मे से थे और किशनगढ (अजमेर) के नरेश थे। वे उसी राठौर वश के थे जिसमे मीरा हुई थी। सामतसिंह सरल स्वभाव के हरिभक्त थे। उनके छोटे भाई बहादुरसिंह ने जब विक्रमी 1805 मे किशनगढ का राज्य जबदस्ती ले लिया तब सामतसिंह सपरिवार दिल्ली गए—सहायता पाने को। सहायता न मिलने पर मथुरा चले गए और विरक्त होकर रहन लगे। राठौर वश का होने से और भक्त होने से उनके मीरा बयान मे प्रामाणिकता मानी जाती है। इनका समय विक्रमी 1756 स 1823 तक का था—यानी मीरा के 200 वष बाद। इनके मीरा वणन मे सती न होकर गिरधर गाना, सिंगर पटारन भाता, निंदा स्तुति की परवाह न करना, कुल परिवार सब गिरधर को ही मानना—ऐसी बातें आई हैं 11 (265 66)। मीरा पर गुप्तचरी कराना, बिप भेजना, विधवा होने के बाद चित्तौड का त्याग, वृन्दावन जाना और वहाँ से द्वारिका वास करना और वहीं निर्वाण पाने की बात कही गई है। नागरीदास जी के विवरण से पता लगता है कि वृ दावन और द्वारिका मे भी मीरा अकेली नही थी। राज मर्यादा के अनुकूल उसके साथ पुरोहित आदि राणा के लोग भी थे। वहाँ रणछोड जी के मदिर मे—जो कि मेवाडी राणाओ ने ही बनवाया था—मीरा का वास था।

पारिस्थितिक समीकरण—मीरा के व्यक्तित्व को समझने बूझने के इतने ही आधार सभव हैं। ये सब मिलकर बताते हैं कि—

(1) राठौड वश की और जाधाणो की जो आनुवंशिक टक थी, आन थी, दुर्दम अनमनीयता थी जो दूदा, वीरम दे, जयमल, दुर्गादास, जसवतसिंह तक इतिहास म प्रमाणित है, वह मीरा का विरासत मे मिली थी।

(2) उसके साथ-साथ दूदाजी के नये राज्य की नई रीतियो के सस्कारो मे वह पली थी जिनमे राज्य के निवासी प्रजावत नही थे, सहयोगी थे। राज-कुल और लोक-जीवन के बीच अतर के अवसर बने-बढे नही थे बल्कि अकाल, सुकाल पर्व उत्सवो मे दोनो सहभागी होते थे। मीरा को—कुछ तो इस कारण से कि वह कोई राजकुमारी नही थी, किसी सुस्थापित राज्य की मर्यादा उसे बचपन से बाधने वाली नही थी और कुछ इस कारण कि सदा युद्ध-रत और सघर्षरत दादा पिता के घर मे उसे लोक सम्पर्क की सुविधाए अधिक थी—लोक धरातल पर विकसित होने के अवसर मिले थे। अत उसका सस्कारी मन राज-कुलोचित मर्यादाओ, निषेधो से पृथक धरातल पर विकसित हुआ था।

(3) बचपन का वात्सल्य-अभाव और अपने को निराश्रित मानने का अव-चेतन भी उसके चितनशील, एकात प्रिय और गभीर होने का कारण था। यही उसे साधु-सगत मे सुख देने वाला और ज्ञान प्राप्त करने और उसीमे रमाए रखने वाला अधिकारक बना था।' परची (30) के लेखक ने उसके बचपन को बहुत सही आका है। साधु सगति और उनके पितृवत स्नेह में पगी पल्ली मीरा ने ससार की नश्वरता, असारता, सादगी की महत्ता और मन की उदारता जितनी सीखी, उतने लोक व्यवहार, कुल मर्यादा, राजपूती कन्याओ की लज्जा, परदा, बाहरी सम्पर्कों की शून्यता जसे तत्व नही सीखे।

(4) उसका मन सभार केवल अन्तर्मुखी चेतनाओ और स्वयकृत धारणाओ विश्वासो से ही निर्मित हुआ था। यदि मीरा का विवाह मेवाडी राजघराने म न होकर मारवाड मे ही किसी ठाकुर घराने मे होता तो सभवत वह अपने पति को भी अपने रग मे रग लेती, इतना उत्कट उसका भक्ति आवेग माना जा सकता है।

(5) मेवाड के राजघराने मे उसका विवाह चाहे राणा सागा के हित म रहा हो, दूदावशियो के लिए भी वह सबल के सहारे का साधन रहा हो, मगर मीरा के लिए वह दुखातक राजभोग ही रहा। अपनी विशिष्टता के साथ वह वहाँ समायोजित नही हो सकी। बडा विचित्र सयोग था कि मीरा अगर मीरा न होती तो वह राजनीतिक सम्बन्धो के यज्ञ की एक आहुति बनकर रह जाती। विचित्रता यह भी थी कि मेवाड के राजकुल मे उसने कष्ट पाए, अपमान पाया तथापि मेवाड और मेडता के बीच राजनीतिक सम्बन्धो म दरार नहीं पडी। सागा के बाद

उदयसिंह के जमाने मे जयमल राठौर ने चित्तौड की रक्षा मे अपना अनोखा बलिदान दिया, उसके बाद भी मडतिए राठौर मेवाड मे जागीरें पाते रहे और आज भी उनके वशज मेवाड मे बसे हुए हैं। (1) इसके पीछे मीरा के व्यक्तित्व का अनोखापन था या तत्कालीन राजनीति मे नारी के स्थान की नगण्यता की प्रथा थी, कुछ कह सकना कठिन है मगर, यह ऐतिहासिक तथ्य है कि विवाह के बाद मेवाड मे मीरा ने अपने को निषेधो, प्रतिबधो, वजनाओ और प्रताडनाओ से ही घिरा पाया।

(6) विवाह (वि० 1573) से लेकर विधवा होने तक (वि० 1579) मीरा को मेवाड के राजघराने के अनुरूप ढालने के प्रयास होते रहे। भोजराज के बारे मे कोई विगत नही मिलती किन्तु एक तो राणा सांगा की नीति कुशलता, दूसरे उनके अदर बाहर के प्रभाव के कारण मीरा को साधु सगत चलती रही होगी, पडित गजाधर स्थिति पर नियत्रण करते रहे होगे और भोजराज भी शायद, मेडता के महत्व को समझते हुए, मीरा के साथ उदारता बरतते रहे होगे। मीरा का व्यक्तित्व तब भी राजसी प्रभाव से अछूता रहा और 'नित उठ दरसण जाना' और 'चरणामत का नेम' निभाने की उसकी टेक चलती रही। साधु सत भी आते रहे और राज मर्यादा के भीतर मीरा उनके उपदेश सुनती रही। शायद सिंगार-पटार मणि आभूषण उसने धारण किए ही नही।

(7) विधवा होने के बाद वि० 1579 से राणा सागा की हत्या वि० 1584 के समय तक मीरा का व्यक्तित्व दुधारी हो गया होगा। एक तो कवरपने मे भोजराज की मृत्यु का दोषारोपण उसी पर हुआ होगा, अन्त पुर मे वह नाना प्रकार से निदा का पात्र बनी होगी और उसकी भक्ति साधना पर भी व्यवधानी असर हुआ होगा। पाट पटम्बर, सुहाग, हार, माला, वस्त्र आदि त्याग कर कठीमाला, दोवडी धारण करने, भूमि पर शयन करने, रूखा सूखा खाने और महलो मे भी वैरागन होने का समय यही था। उसका भक्त हृदय साधु सगति और भजन मे रमना चाहता था और राजमर्यादा उसे दूसरी तरह से रहने को बाध्य करती थी। इस कश्मकश मे उसने 'अपने' को जीवित रखा और मर्यादा को तिलाजलि दे दी। अतत 'काहू की बरजी अब ना रहौं' वाली स्थिति मे वह आ ही गई। यही उसके व्यक्तित्व की परिवेश पर विजय थी और यही से उसके लोक व्यापी होने की घडी आरभ हुई थी।

(8) निश्चित रूप से विक्रमी 1584 से लेकर 1588 तक का चार साल का समय मीरा के एकात का, उपेक्षा का वजनाओ का और निषेधो का समय रहा होगा। बचपन की एकानिकता के, निराश्रयता की भावना के पनपने और सकल्प को नई दिशा देने का समय यही था। मेडता पुष्कर-डाकोर तीर्थयात्रा के निमित्त जाने आने का कम भ्रम इस अवधि मे बना होगा जसी कि वैधव्य के बाद रीति

हुआ करती थी। मेवाड की राजनीति मे भी कुचक्र, बाहरी भेदियो का आवागमन, बाहरी आक्रमण की तैयारियो और रानी करमैती के कुटिल चक्रो का दौरदौरा चल पडा था। यही समय रहा होगा जब अन्त पुर मे जोधाणी जोधकवर का प्रभाव कम पडा होगा और बूँदी की करमैती का जोर बढा होगा (1) सागा के बाद राणा रत्नसिंह के राज क ये 4 वप (वि० स० 1584 1588) मीरा के लिए राणा के कोप के कम और अन्त पुर के बधनों के वर्ष अधिक रहे, जबकि उसे सास नणद की कुटिलता, राड और भक्तिहीनता की बातें कहनी पडी होगी। इसी समय मे उसकी अन्तर्मुखता बढी होगी और बाहरी दुनियाँ उसके लिए अर्थहीन हो गई होगी। हमे मान लेना चाहिए कि राणा सागा की मृत्यु के बाद मीरा ने अपने को पूणत निराश्रित और अकेला अनुभव किया होगा। 'भव सागर मे बही जात हौं' जैसी अभिव्यक्ति मे निराश्रितता फूट पडी है।

(9) और वह निराश्रितता वह घुटन चरम सीमा पर विक्रमी स० 1988 मे पहुँची जब रानी करमैती के आंतरिक कुचक्रो ने अपना रग दिखाया—राणा रत्नसिंह की हत्या हुई और रणथभौर से करमैती के बेटे विक्रमाजीत को लाकर चित्तौड की गद्दी पर बिठाया गया। उसके बारे मे किसी का मत अच्छा नही था। स्वय बूदी के कवि सूयमल्ल ने—लगभग 250 वप बाद भी—उसके बारे मे लिखा—

> विमात बधू उत रानबारो, नरेस श्री विक्रम नीति न्यारो।
> बनें न जासो महिपाल बत्त, घनो नसादेह प्रमाद घत्तं।
> भाणेज श्री अजुन को अभागी, रहै सदा मत्त अफीम रागी।
> सुरान हवं ऊँघन को सराहे, चित्तोड को राज न जाहि चाहै॥
> 25(2190)

विक्रमाजीत का सिफ 9 10 महीने का शासन ही मीरा ने भोगा होगा जिसमे अन्त पुर की उसकी सब गतिविधियाँ वर्जित और निषिद्ध हुई होगी, राजनीतिक कुचक्रो और बाहरी उपद्रवों के भय से साधु सतो, जोगी जतियो और बाहरी लोगो के आवागमन पर कठोर नियत्रण लगे होगे और अन्त पुर मे राज वधुओ की गतिविधियाँ भी निषिद्ध की गई होंगी। कुचक्रो के दौर मे मीरा से मुक्ति पान मे यत्न भी हुए हो तो आश्चय नहीं। इस समय मे ही मीरा के अह, उसकी अन्तर्मुखी भक्ति उसकी चेतन-अवचेतन सत्ता को इतना धक्का पहुँचा कि मे जो म्हारा वागा सा न वेगा नेया आवं।' सासरिये म दुख घणारी, सासू-नणद मनावं। वाली बातें कहनी पडी होंगी। ऐतिहासिक तथ्य है कि विक्रमी 1590 के आरम्भ मे वीरम द मीरा को चित्तौड से मेडता ल गए थ। और यही समय था जब मीरा के व्याकुल मन न निणय कर लिया था—

गढ चित्तौडे ना रहा, नहिं रहण को जोग ।
बसस्याँ रूडी द्वारिका, जहँ हरि भगता रा भोग ॥

(10) तो, मीरा का मेवाड की जेठी बहू बनना, उसके व्यक्तित्व के विपरीत असगत और असमायोज्य पटाक्षेप रहा । इन सघषमयी घटनाओ के बीच वह अनन्य रूप से सहनशील, साहसी, धैयवान और आत्मनिष्ठ बनकर उभरी । 17 (32) उसकी अपार सहनशीलता, अगाध विश्वास और अटूट निष्ठा तो उभर कर आई होगी जब विक्रमी 1591 मे मेडता बिखरा, राव वीरम दे को अजमेर, शेखावाटी, दिल्ली तक दर बदर होकर भटकना पडा और इस बीच मीरा को रणछोण की शरण मे जाना पडा । उस भयकर निराश्रयता मे—जिसका ससुराल भी मिट गया और जिसका पीहर भी अनाश्रित हो गया—मीरा की व्यथा शायद इस तरह फूटी होगी—

विध विधणा रा न्यारा ।
दीरघ नैंक मिरध कू दीवा, बण बण फिरता मारा ॥
उजलो बरण बागला पावा, कोयल बडणा काला ।
नद्याँ नदयाँ निरमलधारा, समद करया जल खारा ।
मूरख जण सघासण राजा, पण्डत फिरता द्वाराँ ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, राणाँ भगत सँघारा ॥

(11) और, यह व्यथा अन्तत द्वारिका मे रणछाड की शरण मे जाकर ही मिली होगी—

म्हारे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोया ।
दूसरा जी कोयो साधो, सकल लोक जोया ।
भाया छोड्या बधा छोड्या, छोड्या सगा सूया ।
भगति देख राजी हुवया, जगति देख रोया ॥

तथा उसके युग-युग के भक्ति पिपासु व्यक्तित्व मे निखार तभी से आना शुरू हुआ होगा जब सब बन्धन काटकर उसने अनुभव किया होगा कि—

द्वारिका को वास हो मोहिं द्वारिका को वास ।
सख चक्र पदम हू ते, मिटै जग को त्रास ।
सकल तीरथ गोमती मे करत हैं नितवास ।
सख झालरि झाझ बाजे, सदा सुख की रास ।
तजियो देस, वेस, पति गह तज्यो सम्पत्ति राजि ।
दासी मीरा सरन आई, तुम्हें अब सब लाजि ॥

और, वह लोक व्यापी हो गई, युग-जीवी हो गई, जीवन काल मे ही उसने ख्याति कमा ली थी और शायद अपने ससुराल वालो ने दुर्भाग्य पर खेद भी प्रकट किया था कि—

राठौड़ाँ री धीयड़ी जी, सीसोद्या रे साथ।
लै जाती बैकुंठ कू, राणा कु न मानी बात॥

उसकी भक्ति के बहुमुखी आयाम द्वारिका वास के समय में—विक्रमी स० 1592 से 1603 तक—मुखरित हुए होंगे।

5 मीरा-काव्य लोकतात्त्विक अध्ययन

समाजशास्त्री 'लोक' का अर्थ उस 'जन' से लगाते हैं जो अपनी परम्पराओं, प्रथाओं और विश्वासों की सत्ता में जीवित रहता है। 37(3) मनुष्य के व्यक्तित्व और व्यक्ति तत्त्व की भाँति हर समाज का अपना मुखरित और आधारिक लोक तत्त्व भी होता है। हर वस्तुनिष्ठ सत्ता की भूमिका में आत्मनिष्ठता के ऐसे तत्त्व मौजूद होते हैं जिन्हें प्रयत्न करके समझना पड़ता है। लोक और लोकमानस दीर्घकालीन परम्पराओं जातीय विशेषताओं, आदिम संस्कारों और अर्जित सदाचारों का संगृहीत संभार होता है। वह लोकतत्त्वों से बनता है।

लोकतत्त्व दरअसल समाज की चेतन अवस्था के मूल में स्थित वे गुण-सूत्र हैं जो चेतन धरातल को, आचरण, व्यवहार को संजीवक रस प्रदान करते रहते हैं। सामाजिक जीवन का हर ज्ञान उसकी हर चेतना, उसकी हर पल की आचार-संहिता, उसकी प्रयोजनवती भाषा, उसकी उक्ति सम्पदा जो चलते को रोक दे, बैठे को उछाल दे, पानी में आग लगा दे—वह हर बात पोथियों में नहीं होती, वह समाज के लोकतत्त्वों में होती है और परम्परा, रीति, आचरण, व्यवहार, मान्यता आदि के जरिये से समाज को अनुप्राणित, संचालित और क्रियमाण रखती है। लोकतत्व समाज के हजारों वर्षों के अवचेतन लोकमानस का संकलित संभार होता है जिसमें कौन सा तत्व किस युग का, किस प्रसंग का, किस संस्कृति का है, इसे पहचानना कठिन होता है।

किसी समाज में हजारों हजार रीतियाँ होती हैं, जीवन के हर कदम पर प्रथाएँ होती हैं, मान्यताएँ होती हैं, विश्वास होते हैं, धारणाएँ होती हैं, परम्पराएँ होती हैं, जो कभी पर्वों में, उत्सवों में, संस्कारों में साहित्य में शिल्प में, चित्रकला में, संगीत नृत्य गीत, कथा कहानी सब में अनुस्यूत होती हैं। 38(23) लोकाभिव्यक्ति उनसे बनती है। हर समय, समाज की हर भौतिक सत्ता, उसकी उपलब्धियाँ और उसका चेतन जगत इस लोकतात्त्विक संभार से आदान प्रदान करता रहता है और इस प्रक्रिया से लोकतत्वों का संभार भी उसी तरह से बनता—विकसता रहता है, जैसे व्यक्ति का व्यक्तित्व बढ़ता विकसता रहता है। अन्तर

इतना ही होता है कि व्यक्ति की सत्ता सीमित होती है और समाज के लोक-तत्वो की कोई इयत्ता नही होती।

लोकतत्वो के अध्येताओ ने मानव के सगहीत मन के तीन स्तर निर्धारित किए हैं—37(36) लोक मानस, जनमानस और मुनि मानस। जनमानस तो दैनिक व्यवसाय बुद्धि के नियन्त्रण और सचालन से सम्बन्ध रखता है। वह चेतन स्तर होता है। इस स्तर के अनुकूल जो लोग आचरण और व्यवहार करते हैं, उनसे जनमानस को कोई शिकायत नहीं रहती। लोकमानस लोकतत्वो को जन्म देता है, साधारणीकरण का धरातल बनाता है और काव्य, भक्ति, वार्ता, कथा आदि का जन्म इस धरातल से होता है। मुनि मानस विशिष्ट क्षेत्र मे ज्ञान विज्ञान के सम्बन्धो का निर्माण करता है। ज्ञान विज्ञान, साहित्य, शास्त्र आदि इस मानस के उत्पादन और परिणाम होते हैं। मुनिमानस और लोकमानस मे घात-प्रतिघात और आदान प्रदान होता रहता है जबकि जन मानस आवश्यकतानुसार दोनो का व्यावसायिक उपयोग कर लेता है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार भारतीय साहित्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग लोकसाहित्य पर आधारित था। न जाने कितनी बार वह उपरले स्तर के ग्रन्थो से प्रभावित हुआ है और कितनी बार उसने उन्हे प्रभावित किया है। वस्तुत लोकतत्वो की व्याप्ति इतनी अधिक है कि साहित्य उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता क्योकि साहित्य-कार स्वय उस भूमि की उपज है जिसके विभिन्न भाव एव विचार पक्षो को लोक-तत्वो के नाम से पुकारा जाता है। 23(189)

मीरा अपने युग और मेडतिया समाज की उपज थी (अध्याय 1-7)। वह भी ऐसी उपज जो आगे जाकर समवर्गी समाज म खप नही सकी बल्कि लोकान्तर व्यापी हो गई। मेडतिया समाज के लोक तत्वो (अध्याय—2) ने उसके व्यक्तित्व को सवारा था और उसकी अपनी व्यक्ति सत्ता ने इतनी अन्तर्मुखता कमाई थी कि वह जीवन भर जनमानस के के धरातल पर नही आ पाई। वह एक पुनीत भक्त आत्मा तो थी ही, एक अनन्य लोकनिधि भी थी। उसके पदो मे—जिन्हें अब तक अनुसधानकर्ताओं ने तरचित माना है और जिनमे प्रक्षेपो की कमी बताई है—(39) उसके युग और समाज के लोकतत्वो की अभिव्यक्ति जिस तरह से हुई है उसे हम निम्नलिखित शीषको म वर्गीकृत करके अनुशीलन के योग्य बना सकते हैं—

1 धार्मिक तत्व (1) स्वरूप (i) निगुण तथा नाथ तत्व
(ii) सगुण तत्व
(iii) सगुण निगुण मे अभेद
(2) साधना (i) निगुण मत आधारित
(ii) सगुण मत आधारित

(iii) सगुण निगु ण मे अभेद
(3) ईश्वरीय अनुभूति के तत्व (i) दरसन—परसन
(ii) प्रतीक्षा और विरह
(iii) विनय और दासता
(iv) टेक और हठीलापन
(v) पूरब जनम को कौल

2 सामाजिक तत्व (i) पव उत्सव आदि के हवालो मे
(ii) कीतन, भजन, साधना के आयोजनो मे
(iii) साधु सगति की टेक मे
(iv) खान-पान, वेशभूषा, आभूषण आदि के प्रासगिक उल्लेखो मे
(v) सुहाग दुहाग की सांस्कृतिक चेतना के रूप में
(vi) राज-रीतियो के प्रासगिक हवालो मे
(vii) लोक रीतियो और प्रथाओ के वक्तव्य विधानो मे
(viii) रूढोक्तियो के प्रयोग मे

3 लोक सस्कृति के तत्व (i) शकुन
(ii) स्वप्न
(iii) सदाचार धारणा
(iv) कमवाद
(v) भाग्यवाद
(vi) नेम धरम
(vii) जतर मतर आदि
(viii) प्रकृति
(ix) सयुक्त परिवार चेतना

4 शैली-तत्व (i) शब्द सम्पदा
(ii) उक्ति सम्पदा

1 धार्मिक तत्व

(1) स्वरूप (i) निगु ण भक्ति तत्व—उपनिषद काल का ब्रह्मवाद निगु ण ज्ञान भक्ति मे विकसित होते-होते बौद्ध वज्रयान, हीनयान और सिद्धियो से छनता-छनता विक्रमी 10वीं-11वीं सदी मे एक ओर ज्ञानमार्गी कबीर आदि की भक्ति मे विकसित हुआ और दूसरी ओर सूफी प्रेमभक्ति स मिलकर वैष्णव सगुण भक्ति

से सम्मिश्रित हुआ। 11(187) सिद्धो की परम्परा मे ही गोरखनाथ का नाथ मत योग और साधना का आधार बनकर प्रचलित हुआ 9 (105)। मीरा के समय तक निर्गुण भक्ति का स्वरूप इतना लोकायत हो गया था कि कही वह नाथ सम्प्रदायो मे सिद्धि, चमत्कार, हठयोग, शैव पूजा, शक्ति साधना, शक्ति पीठ, पीर भावना आदि मे फैल गया था और कही ब्रह्म के अलक्ष्य अरूप, सर्वव्यापी दार्शनिक धारणाओ के रूप मे जम गया था। कही वह प्रेमवाद से मिलकर जन्म जन्मान्तर की विरह वेदना, कष्ट साधना और कातर पुकार के रूप मे स्थापित हो गया था। इस बिखराव मे लोकमानस ने सबसे कोई-न कोई तत्व ग्रहण किए।

लोकमानस कभी प्रेम शून्य नही होता। उसका अवचेतन ज्ञान और योग-वैराग्य को भी लौकिक भावनाओ से जोड लेता है। कबीर जसे निर्गुण सत के काव्य मे भी मीरा वाला लोकतात्त्विक धरातल मिलता है 'हरि मेरा पिउ मैं राम की बहुरिया पुरुष एक अविनासी द्वारा अपने को ब्याहने की बात', 'साई कै सग सासुर आई। सग, न सूती स्वाद न माना, गा जीवन अपने की नाइ' हौं बलि यव देखोगी तोहि हे होते होते, विरह अगनि तन अधिक जरावे 'बहुत दिनन के बिछुरे माधो मनहि बधे धीर 40(88)' मे यानी आत्मा को ब्रह्म का अश मानकर उस चिर विराहिणी मानना और पूर्ण होने की ललक मे तडपना—यह लोकतत्व वसी तरह का हुआ जैसे विराहिणी पत्नी पति के लिए ललकती है। इसी तरह की लोकतात्त्विक परम्परा धर्मदास (विक्रमी 15 15) म भी मिलती है—मितऊ मडया सूनी कर गइ ला।

> अपना बलम परदेस निकर गैलो हमरा क बिछवौ न गुन द गैलो।
> जोगिन होइ कै मैं बन बन ढूढौं हमरा के विरह विराग दै गैलो॥
> 40(83)

निर्गुण उपासना चाहे दार्शनिक धरातल से शुरू हुई थी, सैकडो वर्षों के लोक सम्पर्क न उसका साधारणीकरण इस स्तर तक कर दिया था कि उसम ब्रह्म का स्वरूप तो निरजन अलख अनाम विराट, अजन्मा अगेय अमूर्त घट घट व्यापी, अनन्त, अविनाशी अनादि बना रहा किन्तु वह साधक आत्मा का अप्राप्य लभ्य भी बन गया, उसका ऐसा स्वामी बन गया जिसके लिए साधिकाएँ (आत्मा) तो लाखों है मगर साधिका क लिए वह एक है— हमरें तुमरें साथ है तुमस हमरा एक।" या तुमस हमरें एक है हमरा साथ करारि। दादू और मीरा म यही भाव धरातल सहज रूप म है। लोकमानस तक आत के लिए यह ब्रह्म साधक आत्मा का चिर विरहिन पति बन गया उसके साथ विरह और मिलन की भावनाए जुड गई सहज बन गए, थीं। मीरी मनें बन पद। इसी स समाधिगत

बन गई और उत्कट आवेग लौकिक बनकर जुड गए। कबीर के यहां वह लोकतत्त्व—

हरि मोर पिउ मैं राम की बहुरिया।
राम बडो मैं तन की लहुरिया॥ 41(18)

बना, सत दरिभाव क पास—

सोइ सोहागिनी प्रेम रस, करे पियासे नेह।
सोहागिनी पिया हुकुम जो गावै।
जिस दिन सेवा खसुम को लावैं॥—

बनकर व्यक्त हुआ। कबीर मीरा की तरह मगलाचार भी गाते हैं—

दुलहिनी गावहु मगलचार।
हम घरि आए राजा राम भरतार।
तन रत करि मैं मनरत करिहौं, पाँचउ तत बराती,
रामदेव मेरे पाहुने आए, मैं जोबन मैं माती। 41 (5)

कबीर की चुनरी भी नेह-रस भीगती है—

भीजै चुनरिया प्रेम रस बूदन, आरती सज के चली है सुहागन।
प्रिय अपन को ढूढन॥

धरनीदास, दादूदयाल, बुल्ला साहब धरमदास—ऐसे निगुनिया सतो मे हम आत्मा परमात्मा के दाम्पत्य भावी लोकतत्वो के सबूत मिलते हैं—42(48)

भई कत दरस की बिनु बावरी।
मोत न भावे पीर प्रीतम की मूरख जाने आवरी॥ (धरनीदास)

आव पिया तू सेज हमारी।
निस दिन देखौं बाट तिहारी॥ (दादू)

पिया बिनु मोहि नीद न आवै।
खन गरजे खन बिजुरी चमके, ऊपर से मोहि आकि दिखावैं॥
(धरमदास)

मोर मनुवा मनावै, धावै पिया नहिं आवे हो।
सास मोरी दारुनी, ससुर मोरा भोला हो॥ (सत रज्जब)
प्रीतम अपनो परम सनेही, नैंन निरखिन अघानी॥ (दादू)

नानक भी मीरा के युग के थे। वे कहते हैं—

पीर घटि सो है नारि जे, पिर भावए जिउ।
झूठे वैण चवै कामि न आवए जिउ॥ 42(31)

सा सोहागिनी अकि समावै ।
गख गहेली गहलु न पाव ॥
फिरु पछतावै जब रूणि विहावै ।
करमहीणि मनमुखि दुखु पावै ॥ 42(92)

सत रैदास भी—जिन्हें कि मीरा ने गुरु माना है—इस लोकतत्व का उपयोग कर चुके हैं—

पिया बिन सजेइ क्यो सुख सोऊँ ।
विरह विथा तन खाई ॥ 42(93)

और गुरु अर्जुनदेव, गुरु अमरदास मे भी यही परम्परा अवतरित होती चली गई है। बल्कि पत्नी भाव के इस तत्व का निभाव बरात, पीठी, सास, ननद, ससुर, जेठ, देवर, आदि के नाते रिश्तो का सामाजिक धारणाओं के साथ भी हुआ है— 42(96)

खेलत रहलू अँगनवा, सखी संग साथी हो ।
आइ गवन निगिचाव, बदन भयो धुमिल हो ॥
पहिलें गवनवां ऐलू, पनियाँ के भेजलन हो ।
देखि कुवाँ के रूप, मनें पछितैलू हो ॥
कुँवाँ नीर भई भारी, तो गागर फूटल हो ।
कौन उतर घर देव, हाथ दोउ छूछे हो ॥
घर मोरी सास दारुनी, तो ननद हठीली हो ।
केहि से कहन दुख आपन, संगी न साथी हो ॥
ठाढ़ि मोहारे धरि सुलुके, मनें पछिताइल हो ।
पिया मोसो मुखहूँ न बोले, कवन गुन लागल हो ॥ (धरमदास)

और निर्गुनिया भक्ति की यह लोक परम्परा अवश्य ही साधु-सगति से मीरा तक अवतरित हुई होगी। वह भी "गिरधर के रंग राती" 33 (20) "परदेशी प्रीतम को पाती लिख भेजने", 'पचरग चोला पहनकर झिरमिट खेलने जाना", "तन खोलकर पिय से मिलना", "सुरत निरत का दीप निरतर जलाए रखना" जैसी बातें कहती है। वह 'अपने पिया' को ही अपनी परम गति मानती है, "बिराना छल लाख का हो तो भी अपने काम का नहीं" ऐसी निष्ठा जगाती है और "वर हीणो अपणो भलो हे, कोढ़ी कुष्टी कोइ"—तक के धरातल तक एकनिष्ठता व्यक्त करती है 33(25)। वह 'स्वप्न मे अपन गोविंद से अपन ब्याह" का अनुभव करती है। उसमे हल्दी-पीठी, सुधा से तन भीगने, छप्पन कोटि जीवों की बरात, तोरण और अचल सुहाग की अनुभूति करती है 33 (27)। वह सुध में इतनी मगन" है कि सब "लाज-सरम, कुल के f

चुकी" है, "ऊची अटरियाँ पै सेज बिछी" है और वह उस ' पचरगी झालर वाले, कलियो और फूलो से सजी सेज" पर 'बाजूबद, कडूले पहने" "माग मे सिंदूर भरे" "सुषुम्ना सेज" पर प्रतीक्षा कर रही है 33 (32)। वह ' अपने सांवलिया के रग मे" इतनी 'रच' गई है कि अपने भीतर ताल, पखावज, मदग की सुर लहरी सुनती रहती है और "नत्य मग्न" रहती है कि लोग उसे "मदमाती और बावली" समझने लगत हैं 33 (40)। उसे अपने ' पिय के बिना घडी भर भी सुहाता नही", "भोजनिया नही भाता" और ' नीदलडो नही आती' 33 (41)। रैदास की चेतना की तरह मीरा ' विरहिणी भी पिवकी बाट जोहती" है और प्रार्थना करती है कि "नेरी राखिल्यो" यानी अपने पास रख लो 33(65)। कबीर की तरह मीरा को भी "रमैया बिन रह्योइ न जाइ", "मोहि खान पान फीको सो लागै", "नैणा मुरझाइ रहे" और "हरि मिलिया बिनु तन तरस-तरस जाइ" का अनुभव सताता है। 33(71) उस "दरद दीवानी का दरद न जाणै कोइ", "उसकी सज सूली पर है जहा सावण किणविध होइ" और "पिया की सेज गगन मडल मे है" सो "किण विध मिलना होइ" का सकट है। अत ' दरद की मारी" वह ' बन-बन डोलती है" उसे कोई "बैद" नही मिला। वह पीर तो तभी मिटेगी जब "बैद सांवलिया होय" 33(72) उसे अपने "रमैया बिन नीद न आवै", "विरह सतावै", "पिय बिन सेज अलूनी" रह जावै और "रैण जागत बिहावे '। 33(76) मीरा 'विरहिणी जागती बैठी रहती है" जबकि 'सारा ससार सुख की नीद सोता है', सदा ही ' उसकी नीद नमानी हो" और "पिय का पथ निहारत सिगरी रैण बिहाणी हो" 33(87)। 'अपने पिय की रट" उसे 'रात दिन लगी रहती है' और "दूसरी सब सुध बुध" वह खो चुकी है 33(91)।

निर्गुनिया मत को लोक-मानस तक पहुँचने के लिए लौकिक प्रतीको का विधान करना पडा और पति पत्नी भाव हजारो-लाखो वर्षों का ऐसा प्रतीक विधान रहा जो सार्वदेशिक और सार्वकालिक बन सकता था। उसके साथ सजोग, वियोग, अलकरण, प्रतीक्षा, आनन्द, उत्साह, सृजन, परिवार, देश, काल की मर्यादा सबकुछ जुड सकने लायक स्थिति थी। यही कारण है कि ऐसा प्रतीक विधान दर्शन और मतमतातरो की मर्यादा तोडकर क्या निर्गुनिया और क्या सगुनिया, क्या देशी और क्या ईरानी—सभी भक्ति मार्गों मे दिखाई देता है। उसके भीतर की तात्विक सत्ता ही प्रमुख रूप से उसके सर्वव्यापी होने का कारण हो सकती है तभी हम निर्गुनिया सतो और मीरा के बीच लौकिक प्रतीको के माध्यम से—निर्गुनिया कहिए या सगुनिया—आत्मा की खोज सम्बन्धी समान अभिव्यक्ति भी पाते हैं, यथा—

कबीर ऊँची गैल राह रपटीली पाँव नहिं ठहराय।
लोक लाज कुल की मरजादा, देखत मन सकुचाय॥

नैहर वास बसो पीहर म, लाज तजि नहिं जाय।
अधर भूमि पुरुष भय भोला, सुरत झकोरा खाय ॥
(—कबीर)

मीरा ऊंची नीची राह रपटीली, पांव नहिं ठहराइ।
सोच सोच पग धरूं जतन से वार वार डिग जाइ ॥
ऊंचा नीचा महल पिया का, हमस चढ्या न जाइ।
पिया दूर पथ झीणोम्हारो, सुरत झकोल खाइ ॥ 2(230)

कबीर जोगिया बिन रह्यो न जाय।
हौं हिरनी पिव पारधी हो, मारे सबद के बान ॥
जाहि लगि सोई जानहि हो, और दरद न जान।
मैं प्यासी हौं पीव की हो, रटत रटत पिव पीव ॥
पिया मिले तो जीव है ना तो सहजैं त्यागैं जीव ॥
पिय कारण पियरी भई हो लोग कहैं तन रोग।
छह छह लांघणा मैं किया, पिया मिलण के जोग ॥

मीरा घायल ज्यू घूमू सदारी, म्हारी बिथा न बूझै कोइ।
काढि कलेजो मैं धरूं रे कागा तू लै जाई।
ज्यादेसा म्हांरो पिव बसै, वै देखैं तू खाइ ॥

यह कागा कलेजे वाला प्रतीक विधान राजस्थानी लोककाव्य का प्रसिद्ध विधान है जिसका उपयोग ढोला मरवण और कई लोकगीतो मे मिल जाता है।

पानी ज्यू पीली पडी रे लोग कहैं पिड रोग।
छाने लागण मैं कियारी राम मिलण के जोग ॥

—कबीर की व्यजना से यहां शैलीगत और देशकाल गत अतर ही नजर आता है।

निर्गु णिया अद्वैत सम्बन्धो की लोकतात्त्विक अभिव्यक्ति मे रैदास और मीरा मे तुल्यभाव मिल जाता है, यथा—

मीरा जो तुम तोडो पिया, मैं नहिं तोडू रे।
तोरी प्रीत तोडी कृष्ण, कौन सग जोडू रे ॥
तुम भये तरवर, मैं भई पखिया।
तुम भये सरवर, मैं भई मछिया ॥
तुम भये गिरधर, मैं भई चोरा।
तुम भये चंदा सामीं, मैं भई चकोरा ॥
तुम भये मोती प्रभुजी मैं भई धागा।
तुम भये सोना तो हम भई सुहागा ॥ 9(232)

रैदास अब कैसे छूटे, राम रट लागी।
प्रभुजी तुम चन्दन, हम पानी।
जाकी अंग-अंग बास समानी।
प्रभुजी तुम घन हम बन मोरा।
जैसे चितवत चन्द-चकोरा।
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती।
जाकी जोत बरै दिन राती।
प्रभुजी तुम मोती, हम धागा।
जैसे सोन हिं मिलता सुहागा॥ 9(232)

—इस तरह के नाते रिश्तो के अभिप्राय भक्तों तक ही सीमित नहीं थे। आधुनिक हिन्दी छायावादी कविताओ मे भी उनके उपयोग हुए हैं।

हमे यह मानना चाहिए कि मीरा के समय तक मारवाड़ क्षेत्र में निर्गुनिया संतो, लोक-देवताओ और नाथपंथियो का जो व्यापक प्रभाव था (अध्याय-3/37-38) उससे मीरा अछूती नही थी, रह भी नहीं सकती थी क्योंकि राव दूदा [illegible] भक्त थे और साधु-संतो के जमघट उनके यहां बने ही रहते थे और [illegible] उनके बीच मुक्त भाव से खेलती गुनती रहती थी। उन [illegible] संतो की बानी, उनकी शैली और उनकी बातो के अर्थ मीरा [illegible] हों तो, यह स्वाभाविक था।

हो सकता है निर्गुनिया बानी और भजन-कीर्तन [illegible] की भाव सामग्री मीरा को प्राप्त हुई हो। और वह [illegible] लोक-तत्वो से रचपचकर अपने ढंग से व्यक्त हुई हो। [illegible] जिनमे प्रामाणिकता और मीरापन की कमी [illegible] कृत प्रमाणित पदों' मे भी निर्गुनिया [illegible] है—यथा—

माई मेरा पिया बिन [illegible]।
राग रंग सिणगार न [illegible]॥
सावण आया [illegible]।
सेज अलूणी [illegible]॥
आव सलूने [illegible]।
मीरा के प्रभु [illegible]॥ 9([illegible]

—यहाँ हम [illegible] पत्नी के लिए [illegible] जाना हजारों वर्षों [illegible] जलाना, [illegible]

रूखा सूखा खा लेना—ये सब सामाजिक-सांस्कृतिक परिपाटियां आज भी जीवित हैं। "अलूणी सेज," "धुलि रह सिर केस" —मे उन्ही की छाप है।

उसी प्रकार—

रमैया बिन मोसू रह्योइ न जाइ।
खान-पान मोहि फीको लागे, नैणा रहे मुरझाई ॥ 9 (407 9)

और,

डोलू थारी आवै हो महाराज अविनासी।
बिरह वियोगिन बन-बन डोलू करवत लूगी कासी 9(409 13)

—यहां 'बन बन डोलू' म नाथपंथी गोपीचद भरथरी की लोक कथाओ के तत्वो की छाप है। उनमे बार बार जन्म लेने और किसी अथ को—समाधान को—खोजने के अभिप्राय मिलत हैं। 'कासी करवत लना' और "दुष्ट से जा मिलने' की लोक भावना एक विश्वास के रूप मे 19वी सदी तक भी विद्यमान थी और यह लोकतत्व जैसा निर्गुनियो और नाथपंथियो मे था वैसा ही वष्णव सगुनिया भक्तो मे भी था।

वैस ही लोकतत्व इस पद मे मिलता है—
जोगिया जा छाड रह्या परदेस।
या तन ऊपर भसम रमाऊँ खोर करूँ सिर केस ॥
भगवा वेस धरूँ तुम कारण, ढूढत च्यारूँ देस ॥
मीरा के प्रभु राम मिलण कू, जीवनि जनम अनेस ॥ 9(421-62)
और
तेरे कारण बन-बन डोलू, कर जागण को भेस ॥ 9(421 64)

निर्गुनिया पथ के अविनाशी, अनादि, अनन्त, अलक्ष्य, ज्योतिष्मान स्वरूप का दिग्दर्शन भी लोकतात्विक धरातल पर मीरा मे मिल जाता है—

तेरो मरम नही पायो रे जोगी।
आसन माडि गुफा मैं बैठ्यो, ध्यान हरि को लगायो ॥
गल बिच सेली, हाथ हजारियो, अग भभूत रमायो।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, भाग लिख्यो सोइ पायो ॥ 9(423 67)

यहाँ 'गुफा' साकेतिक प्रतीक है "सहस्रार चक्र" का 42(171) और इसका प्रयोग कई सतो ने किया है—

गगन गुफा मे बठि के देखे जगमग जोति (मलूकदास)
गगन गुफा मे पैठि अधर आसन बठि (यारी साहब)

नैनन बनज बसाऊँ री, जो मैं साहिब पाऊँ।
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न लाऊँ री॥
त्रिकुटी महल मे बना है झरोखा, वहा से झाँकी लगाऊ री।
सुन्न महल मे सुरत जमाऊ सुख की सेज बिछाऊँ री॥
मीरा क प्रभु प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ री॥
9(425 81)

ये त्रिकुटी महल, झरोखा, झाँकी लगाना, सुन्न महल, सुख की सेज जैसे प्रतीक बहु प्रचलित रहे हैं और साधु सतो के माध्यम से लोक धरातल पर उतरे हैं। ब्रह्म के निर्गुनिया स्वरूप की धारणा भी लोकव्यापी थी। मीरा ने भी जैसे

पूरण ब्रह्म अखड अविनासी, तुम बिन बिरह सतावै जी। 9(325 7)

सम्बोधन निर्गुण ब्रह्म के लिए किए हैं जैसे सत कवियो ने जोगिया, रमैया, दयाल, राम, हरि, कान्हा, गोविन्द, साहब, गोपाल, अविनासी, अविगत, सतगुरु, निरजन पुरुष, कत, खसम, सैया, पिया, भरतार, सबद, औंकार आदि किये हैं 42 (112 14) मीरा ने स्थानिक प्रभाव से महाराज, पावणा, ब्रजराज हरि के प्रयोग भी किए हैं—

आज रँगीली रण प्रीतम पावणा हो राज। 11(78-13)
तन सणगारु सेज सवारु, अजन सास, धनवारु।
स्याम सुदर तन धारु, लेसू भावना माराज॥ 11(78 13)
आजि म्हारै पावणिमा बैरागी जी। 11(79-17)
कदि रे मिलेगो आई रमैयो महान कदि मिलैगो आई। 11(83-30)
ओ तो वर देही को सगाती, मो वर सिरजण हार। 11(93 63)
तुम भज्या हो महाराज सबै सुख। 11(94 67)

कबीर आदि सतो ने तो ब्रह्म को पति रूप मे माना ही है, मीरा ने अपनी आत्मा के विवाह का और प्रतीक्षा का पूरा चित्रण भी किया है—

माई म्हानै सुपने मे परण गया जगदीस।
सोती को सुपना आवीयाजी, सुपना बिस्वा बीस।
अग अग हल्दी करीजी, सुधे भीज्यो गात।
माई म्हानै सुपने मे परण गया दीनानाथ।
छप्पन कोटि जहाँ जान पधारे, दुलहा श्री भगवान।
सुपने मे तोरण बाधियोजी, सुपने मे आई जान।
मीरा को गिरधर मिल्याजी, पूरब जनम के भाग।
सुपने मे म्हान परण गया जी, हो गया अचल सुहाग। 33(105-27)

मारवाड़ के लौकिक जीवन की छाप तो इसमे है ही, वहाँ की नारी के सामान्य अनुभव भी मीरा के पदो मे अभिप्राय बनकर उतरे हैं। एक परिणीता को प्रीतम की निरतर याद—

> ओलू थोरी आवै हो महाराज अविनासी। 9(409 13)
> निस दिन ऊभी पथ निहारूँ, कब मोहे घोर बँधासी।
> किरपा करो म्हारै भवन पधारो, नाही ये जिवड़ो जासी ॥

और

कबीर की तरह मगलाचार भी—

> म्हारा ओलगिया घर आया जी।
> तन की तपन मिटी सुख पाया हिलमिल मगल गाया जी।
> घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यू मेरे आणद आया जी।
> मगन भई मिलि प्रभु अपणा सू मैं कर दरद मिटाया जी।
> चद को देखि कमोदण फूले, हरखे भया मेरी काया जी।

रग रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल सिधाया जी।—इसमे 'घर' 'भवन' 'महल' शरीरवाची प्रतीक हैं 42(172) और, निवेदन भी कि—

> सतगुरु म्हारी प्रीत निभाज्यो जी।
> थे छो म्हारा गुण रा सागर औगण म्हारा मति जाज्यो जी ॥
> 9 (424 75)

—ये सब निर्गुनिया स्वरूप के प्रभाव सिलसिलेवार नही हैं, यत्र तत्र हैं, यादृच्छिक हैं और बेतरतीब हैं। यह इस बात का सबूत है कि मीरा किसी मत विशेष के प्रति प्रतिबद्ध नही थी। साधु सगति से जो अभिप्राय या प्रतीक या अभिव्यक्तियाँ सार्वजनिक हो चुकी थी, उन्हे मीरा ने अपनी भावनानुसार अपनाया और भजनबद्ध किया।

निर्गुनिया ज्ञान पथ और नाथ पथ—मीरा के समय स काफी पहले लोक-धरातल पर आकर अभेद प्राप्त कर चुके थे। मीरा पर परिवेशगत नाथ पथियो का लोक प्रभाव हमे स्वीकार करना ही चाहिए। कहा जाता है कि भारत के पूर्वी भाग मे यदि सिद्धो का बोलबाला था तो परवर्ती काल मे वैसा ही व्यापक प्रभाव पश्चिमी भारत मे नाथ पथियो का था। जलधरनाथ, मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ भरथरी राजा गोपीचद की परम्परा मे राजस्थान का पूरा मारवाड़ क्षेत्र और दक्षिण म वागड तथा मेवाड भी प्रभाव क्षेत्र था। जसलमेर-जोधपुर मानाथी तथा नागोर बालनाथी पथो के गढ़ थे। स्वय दूदाजी बालनाथी हरभूजी के समकालीन और उनके पूजक थे। पूरा नागोर, जालोर, जोधपुर मेड़ता

नाथपथी जोगियो, सिद्धो, पीरों और लोक देवताओ की मान्यताओ से आपूरित था। 28(19) मेवाड़ी राणा चाहे एकलिंग के उपासक थे मगर एकलिंग जी की पूजा का अधिकार आज भी नाथपथी पुजारी को होना है। 9(105) नाथपथ का इतना लोकप्रभाव था कि आम लोकगीतो मे 'पिय' को वाल्हा,' 'जोगी जी' 'जोगराज' जैसे सम्बोधन मिलते रहे हैं। नाथपथी एक ओर अपनी यम नियम की पराकाष्ठा, दूसरे अपनी विशिष्ट वेशभूषा और—धुनी रमाकर, भभूत चढाए रतनारी आंखो के स्वरूप से भयदायक और आतककारी व्यक्तित्व वाले भी मान जात रहे हैं और दूसरी ओर नारी समुदाय के लिए अस्पश्य और अप्राप्य भी माने जाते रहे हैं। इसलिए महिला जगत मे नाथपथी सिद्ध सदा ही 'बैरागी,' 'निर्मोही,' मिलकर भी न मिलने वाला,' 'भरम मे न फँसने वाला' व्यक्ति लोक-सिद्ध बना है।

मीरा के पदो मे नाथपथ के प्रभाव के कारण ही प्रियतम के लिए 'जोगी' 'जोगीडा' जसे प्रतीको का प्रयोग हुआ है और उसके स्वरूप वणन मे नाथपथी वेषभूषा का भी यथा—माला, मुद्रा, कुण्डल, सेली, नाद। ऐसे 'जोगी' प्रियतम के लिए 'जोगण' बनने और उसे "बन बन ढूढने का अभिप्राय भी व्यक्त हुआ है।" 'सतगुरु' 'सैन,' 'जोत मे जोत,' 'सुरत, 'अमरितपान,' 'विष सो अमरित कीनो,' 'गगन मडल रस पीजै' 'अमृत झरे सदा सुख उपजै, 'सुरतनिरत को दिवलो,' त्रिकुटी महल मे झरोखा —एसे प्रतीक और पारिभाषिक प्रयोग मीरा को नाथ-पथी जोगियो या सतो से लोकाश्रित होकर प्राप्त हुए थे, ऐसा विश्वास करने का कारण बनता है।

नाथपथी परम्परा मे जिन पारिभाषिक अर्थो को प्रतीक दिए गए थे, वे लोकमत प्रधान थे, 42(36-38) यथा—गगन मडल (ब्रह्मरध्र), बकनाल (सुपुम्ना), सुवा (व्यक्ति), बिलाई (माया), कुटुम (काया) अगनि (माया), अरध (मूलाधार), नाग (काल), गगा इडा नाडी), चकवा (चित्त), चिता (आत्म तत्व), चितामणि (प्रबुद्ध मन), चारे (विषय, ससार), कथा कावर, झोली, येगली, नगर महल भुवन बाडी (काया शरीर), खीर (अमृत), गगन (ब्रह्मरध्र), भुजगम (सास क्रिया) बाघिन (माया) दीपक (जीवन, ज्योति), सेज (लौ, लगन)। मीरा के पदो मे ऐसे ही लोकमत मे स्वीकृत अभिप्रायो, प्रतीको को देखा जा सकता है—

जोगिया नै दीजो जी आदेस
जोगिया चतर सुजाण सजनी ध्यावै सकर सेस।
आवूगी मैं नाह रहूँगी रे म्हारा पिव बिना परदेश।
करि किरपा प्रतिपाल मो परि, राखो नि आपणे देस।

माला मुद्रा मेखला रे, वाला खप्पर लूगी हाथ।
जागण होय जग ढूढ सू रे, म्हारा रावलिया हो साथ।
सावण आवण कह गया रे, कर गया कौल अनेक।
गिणता गिणता घस गई रे, म्हारो आगलिया री देख।
पिव कारण पीली पडी रे, बाला जोवन बालो बेस।
दासी मीरा राम भजिके, तन मन कीन्हो पेस।

9 (288 29)

—यहाँ जोगिया के स्वरूप का वर्णन नाथपथ से प्रभावित है, तथापि पूरे पद मे नाथपथी मत की एकता नही है। साहित्यिक रूढि विरह, आकुलता, सब कुछ गडडमडड हो गया है और बीच मे नाथपथी जोगी वाला प्रतीक जड दिया गया है। इसी तरह के पदो मे नाथपथी दूसर प्रतीक अथवा अभिप्राय भी प्राप्त हैं—यथा—

आऊँगी मैं नही रहूँगी, कर जटाधारी बेस।
चीर को फाडू कथा पहिरू, लेऊगी उपदेस।
मुद्रा माला मेखलू रे, खप्पड लेऊँ हाथ।
प्राण हमारा वहाँ बसत है यहाँ तो खाली खोल।
पाच पचीसा बस किए, मेरा पलू न पकडे कोय।
मीरा व्याकुल विरहिणी रे, कोई आय मिलावै मोय॥ 9 (289)

—इसमे कई नाथपथी स्वरूप के लोकतत्व हैं। कही ये हैं, तो कही सयासी तपस्वी वाला स्वरूप भी है—

अग विभूति, गले मृगछाला, घर घर जपत अलेप।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, राम जी मिलन की टक।

9 (290 32)

इतना ही नही नाथपथी मत के साथ 'रसीली प्रीति' की अभिव्यक्ति विरोधमकता भी व्यक्त करती है—

जोगिया री सूरत मन मे बसी।
नित प्रति ध्यान करत हूँ मन मे, नितप्रन होत खुसी।
कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, मानो सरप डसी।
मीरा कहँ प्रभु कब रे मिलोगे प्रीति रसीली बसी।

—'जोगिया' के साथ 'प्रीति रसीली' की बात और पुन 'ध्यान' मे अभिप्राय की असगत अभिव्यक्ति माना जा सकता है। नाथ मत के साथ वैष्णवी स्वरूप का रलमिल जाना, मीरा के पदो म आश्चयजनक नहीं है—

जोगियो आण मिल्यौ अनुरागी ।
ससा सोक अग नहि तिसना, दुबिधा सब ही त्यागी ।
मोर मुगट पीताबर सोहै, स्याम बरन बड भागी ।
जनम जनम को साहिब म्हारौ, वा ही सो लौ लागी ।
अपणा पिव सू हिलमिल खेला, हरि दरसन अनुरागी ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, अब मैं भई सुहागी ।।

9 (291-36)

देखने जोग बात है कि वही 'जोगिया' है, "जनम जनम का साहिब" है और वैष्णवी मतानुसार 'मोर मुकुट पीताम्बर' वाला 'श्याम वर्णी' भी वही है। ऐसा रलना मिलना प्रासगिक साधु सगति से प्राप्त जानकारी और अभेद लोकमत के कारण ही सभव हो सकता है। विधिवत साम्प्रदायिक दीक्षा का अभाव इस प्रकार के पदो से लक्षित होता है। ऐसी स्थिति मे—जहा लोक तत्व ही अभिव्यक्ति के साधन हो और किसी तरह के दर्शन या मत की दीक्षा का अभाव हो—प्राप्त ज्ञान की प्रधानता नही होती, भावना-ही भावना उजागर रहती है। उसमे क्या नाथ मत, क्या सत मत और वैष्णवी मत सब समर्पित हो जाते हैं—

चाला वाही देस, चाला वाही देस।
कहो कसुम्भी सारी, रगावा, कहो तो भगवा वेस।
कहो तो मोतियन माँग भरावां, कहो तो छिटकावा कैस।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सुणज्यो बिडद नरेस।

—देखने लायक बात है कि मिलन की तैयारी के लिए नाथमती और वैष्णव मती लोकतत्वो का विकल्पात्मक प्रयोग हुआ है। प्रिय के स्वरूप मे भी वैसा ही विकल्प होगा जोकि ध्वनित हो रहा है। ऐसी स्वायत्त अभिव्यक्ति की स्थिति तभी हो सकती है जब मत विशेष से प्रतिबद्धता न हो और लोकमत मे सब रलमिल कर एक हो गए हो। उसी तरह—

अरे मैं तो ठाढी जपू रे राम माला रे।
मैं तो जपती नाम मेरे सायब का, आण मिलो नद लाला रे।
हाथ सुमरणी काख कूबडी, ओढ रही मृगछाला रे।
मोर मुकुट पीताम्बर सो है, ओढे लाल दुसाला रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर भगतन के प्रतिपाला रे।

9 (312 93)

इतना ही नही नाथपथी जोगियो के नाम स्मरण भी मीरा के पदो मे मिलते हैं—

ज्यारा चित चरणा से लागा, वे ही सवेरे जागा।
पहले भूप भरथरी जागा, शहर उजीणी लागा।
सुण सुण वचना साहब सतगुरु का गोपीचद उठ भागा।
साहब सेन बलख्रा रा राजा, बाण विरह रा लागा।
आठो पहर कबीरा जागा, मरण जीवण भय भागा।
राणा रूस्यां भव मोरे नांही, चित साहब से लागा।
मीरा बाई तो सरणें आया, लोक लाज भय त्यागा॥

9 (313 94)

मारवाड के लोकमत पर नाथपथी प्रभाव दीघकालीन और बहुत गहराई तक रहा है। उसकी झलक इस पद म मिल सकती है—

चलो अगम के देस, काल देखत डरै।
वहां भरा प्रेम का होज, हसा कल्यो करै।
ओढ़ण लज्जा चीर, धीरज को घाघरो।
छिमता काकण हाथ, सुमति की मून्दडो।
दिल दुलडो दरियाव, सोच को दीवडो।
उबटन गुरु को ज्ञान, ध्यान को धोवणो।
कान अखोटा ज्ञान, जुगत को जूठनो।
बेसर हरि को नाम, चूडोचित ऊजलो।
जोहर सील सतोक निरत को घूघरो।
बिदली गज अरु हार, तिलक गुरु ग्यान को।
साज सोलह सिणगार, पहिर सुवरन की राखडी।
सांवलिया सू प्रीति और सू आकडी।
पतिवरता की सेज, प्रभुजी पधारिया।
गावे मीरा बाई दासी कर राखीया॥

9 (317-18-109)

—इसम नाथपथी मान्यताओ को शृगार रूपक दिया गया है। ऐस रूपक लोकगीतो मे भी मिलते हैं—यथा—

लगनिरा लँगो पहरि सुहागण बीती जाये बिव्हार।
धन जोबण दन च्यार का रे जात न लागे बार॥

(श्रुत परपरा)

मीरा की अभिव्यक्ति प्रारभिक प्रभाव नाथपथी शैली का ही रहा होगा क्योकि वह परिवेशगत था और उसके प्रारभिक पदो मे अथवा वैधव्य के बाद के पदो म वह प्रभाव अधिक प्रखर रहा होगा। उसकी चौतरफा प्रसि द्धि मे अ ौर

साधु सतो के बीच प्रचार पसार मे ऐसे पद ही प्रधान तथा प्रभावकारी रहे होंगे—

अपणे प्रीतम के कारणे, मीरा बैरागण भई रे।
जब तें सीस पै जटा रखाई, नैणा नीद गई रे।
दड कमडल और गूदडी, सिर पर धार लई रे।
छापा तिलक बनाये छवि सा, माला हात लई रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, गोविन्द सरण लई रे।।

9 (321-117)

—वैसे ही,

राख कमडल गूदडी रे बाला, कियो नवेलो भेष।
प्रीतम ओज्यू ने आइया, यो है बडो अनेस।
गुरु को सबद कान मैं पीहरू अग विभूति लगाय।
जा कारण मैं जगत तज्यो है, भौंरे लागी आय।
पाँच पचीसा बस करूँ, पलो न पकडे कोय।
मीरा व्याकुल विरहणी, हरि मिलिया सुख होय। 9 (322 118)

—'पाँच पचीसा' नाथ पथियो का अभिप्राय है जिसमे पाँच इद्रियो और उनके साथ मन, छह दशन, छह चक्र, छह दलकमल और स्वाधिष्ठान चक्र—यो पचीस साधन घटक होते हैं।

'जोगी', 'जोगीडा' छाप वाले पद नाथपथी प्रभाव वाले हैं और उनकी भावनात्मक व्याप्ति स्वरूप वणन तक, साधना परक, विरह और मिलन परक अभिव्यक्ति तक है। यथा—

म्हारे घर तू रमतो ही आई रे जोगिया।
काना बिच कुडल, गले बिच सेली अग भभूत रमाई रे।
तुम देख्या बिन कल न परत है, ग्रिह आगणो न सुहाई रे।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, दरसण द्यो मोकू आई रे।।

9(422 66)

जोगिया आव मैं नेरी।
मनसा वाचा करमणा प्रभु पुरवो आसा मेरी।
मैं पतिवरता पीव की हो, मोल लई चेरी।
तुम बिन कोऊ दूजो देवा सुपने हूँ ना हरी।
मात पिता सुत बधू दारा ये फाँद मैं बरी।
तुम बिना कोउ नाही मेरो पुकार कहूँ टेरी।

एक बीरियां मेरे नगर दे जावो फेरी।
मीरा के प्रभु गिरधर, मैं चरनां सू नरी ॥ 11(92 59)
मुगत रो ऐ गहणो वैरीयो।
पैरियो पैरियो ऐ सतगुरु परताप।
म्हारे खिम्यारी चूदड बाण रही, रामइयो ऐ सालूडा री कोर।
म्हारे करणी रो काजल सारियो, रामइयो ऐ मारे तिलक लिलाड।
म्हारे सील सनोख चूप वणी, म्हारे नथ बेसर गुर ग्यान।
म्हारे सत नाम तिमणियो, रामइया ऐ हिवडा रो हार।
म्हारे चित चेतन चुडलो वण्यो, रामइयो ऐं चुडला री मजीठ।
म्हारे ग्यान बाजूबन्द बहुरग, रामइयो ऐं बाजूबन्द री लूम्ब।
मै तो इतनो ए पहिर निसरी, चालो चाली ऐं रामइया री सेज।
बाई मीरा नें गिरधर मिल्या, पूरी पूरी ऐ मनडा री हूस।
11(116 144)

—मुक्ति के इस आभूषण रूपक मे नाथपथ के स्वरूप और लक्षणो का प्रयोग लोक धरातल का वाचक है। इसी तरह नाथपथ के परिवार प्रतीको का प्रयोग इस पद मे खोजा जा सकता है—

म्हारा पियरिया री वाता सतगुरु केता आव्यो।
सतगुरु आया सब रस लाया प्रेम पियाला पाया।
सतगुरु साचा सूरमा, म्हाने सेजा राम मिलाया।
सासरिया मे दुक्ख घणो रे, सासू नणद सतावै।
कैजो म्हारा बाबो सा नें, बेगा लेवा आवै।
देवर जेठ म्हारो कुटम कबीलो नित उठ राड चलाव।
इण घरधणे री वाता मानै एकई दाय न आवै।
म्हारा पिहरिया रो लोक भलेरो बांधे कठी माला।
तिलक छाप। रूडा सोहे, नै अमरापुर वाला।
अमरापुर मइ सासरो पीहर सेता पास।
भले न इण जुग आवसा, गावै मीरा दासी ॥
11(119 153)

इस पद मे मीरा के जीवन की पारिवारिक स्थिति और नाथपथ के परिवार रूपक मे आश्चयजनक समानता आ गई है। परिवार, सास, नणद, जेठ, देवर, ससुराल—ये सब माया जगत, प्रपच के प्रतीक हैं, (42) और पीहर, बाबोसा, सतगुरु—ये परम तत्व के प्रतीक हैं। उधर मीरा के पीहर—मेडता मे भक्ति का वातावरण था और मेवाड—ससुराल मे जागतिक मर्यादा और प्रपचा था। दोनो

ही पक्षो मे यह प्रतीक विधान अथवान बनता है।

वैसा ही एक नाथपथी प्रभाव—

म्हारै मिंदरिये पधारो, जोऊ थारी वाट।
धरण गगन बिच झरी लागी, उगँत परभात।
रसना मेरी राम रटत है, सतगुरु जी कै परताप॥
दोई चोकी मैं सहजँ छेकी, नाम कमल कै घाट।
वक नाल पर मुरली बाजँ, सतगुर मारया थाट।
काया नगर मे रास रच्यो है सुरत सुहागण नार।
जनम जनम का टोटा भाग्या, मिलिया दातार।
इगला पिंगला सुखमण नारी सहेज रच्यो घर वास।
मीरा नैं गुरु गरवा मिलिया, जब पायो विसवास॥

11(120-156)

—इसमे नाथपथ के पारिभाषिक अर्थों के प्रतीको का प्रयोग हुआ है।

मीरा के पदो मे—भावपक्ष मे भी और अभिव्यक्ति पक्ष म भी यदि नाथपथी विचारणाओ, मान्यताओ और प्रतीको का सहज प्रयोग मिलता है और वह भी सगुण निगुण जैसी छाप से पूवग्रहीत न होकर तो वह स्वाभाविक ही कहा जाएगा। क्योकि मारवाड क्षेत्र के लोकमानस पर नाथपथ के शील, सदाचार, एकनिष्ठता, तप, त्याग आदि की इतनी गहरी छाप रही है कि वे सब वहा के भाषा मुहावरो, कहावतो, लोकगाथाओ और गीतो मे भी उसी तरह से मुखर हुए हैं। यथा—अमर नाव परमेसर को 43(15), अलख पुरुष की माया, कठै धूप कठै छाया वही (16) अलख भरोसै अक्कै, आँदण ईसरदास, वही (16), अलख राजी तो खलक राजी वही (17), आई मौज फकीर की देई झूपडी बाल, वही (26), आत्मा सो परमात्मा, वही (34) आसोजा का तावडया, जोगी होग्या जाट वही (51), ऊपर भरै नीचै झरै, जैको गुरु गोरखनाथ कै करै? वही (63), कठी लीनी खोल, अबै पूरे गाँम ईडोल, वही (75), कनफडा दोनू दीन बिगाडया, वही (81) करता गुरू न करता चेला वही (86) का गोरख, का भरथरी, का गोपीचद गोड। सिद्ध गयाई पूजिये सिद्धरह्या री ठोड वही (94), काची काया को कै गारबो? वही (99), काना मैं मुन्दा होया, आपै ई आ आदेशकरसी वही (104), कै जागे जोगी, कै जागे भोगी वही (124) कै सोवै राजा का पूत कै जोगी अवधूत (128) कोई कवै रामदेजी काई केवै पब्बा। दो दो राटी बाँट लेड आप आपके डब्बां (129) घायल की गत घायल जाणै (184) जाग मछदर गोरख आयो (214) देखा देखी साध जोग छीजै काया बाढै रोग (276), राजा से जोगी भयो, जोगी से भयो कुम्हार। दोनू खोई बुवन्ध, आदेसा जुहार (281), पाणी

पीवें छाण जीव मारे जाण (310), हसा जेहा ऊजला, पाथर जेहा चित्त। कांधे घाली मेखली, जोगी किसका मित्त (409), जोगी जोगी सहे तो घण्रां री हांण, ऐसा जहाँ नाथपथ का लोकमत पर गहरा प्रभाव रहा हो, वहाँ अगर मीरा के पदो मे उनके प्रतीक और अभिप्राय आ गए हो तो वह सहज स्वाभाविक है।

मीरा की भावानुभूतियो को पुष्ट करने वाले और अभिव्यक्ति देन वाले लोक-सत्व निगुं नियां सता और लोक व्यापी नाथ पथियो के अभिप्राय तथा प्रतीक रहे हैं। उसके परिवेश मे उन्ही का प्रचलन था और ऐसा लगता है कि उनका अजन मीरा ने कुछ तो लोक जीवन की परिपाटियो से किया था और कुछ साधु सतो की सगति स कमाया था।

(II) सगुण भक्ति तत्त्व तथापि मीरा न सत थी न नाथपथी साध्वी या जोगण थी। वह एक गुरुकुल की राजकन्या थी जिसकी एक पारिवारिक मर्यादा थी ही थी, एक शीलाचार और जीवन प्रणाली थी। चाहे मेडता के राजघराने की कन्या होने के नात उसे पर्दे मे रहने, असूयम्पश्या बने रहने और हर किसी से लाज करन की जरूरत नही थी तब भी साधु सगति मे भजन कीतन मे, हेलमेल मे कुछ न-कुछ मर्यादा रेखाएँ तो रही ही होगी। दूदाजी, वीरमद आदि को परम वैष्णव कहा गया है, उनके राजकुल मे विष्णु के चार भुजा स्वरूप की वैष्णवी पूजा होती थी। मीरा के लिए भी कहा जाता है कि उसी चार भुजा स्वरूप के सामने वह ध्यानावस्था मे बैठी रहती थी वही उसका एक आसन था और उसके दीक्षा गुरु गजाधर वहीं पूजा पाठ और पुराण कथा आदि उसे सुनाया करत थे।

वैष्णव भक्ति का इतिहास बहुत पुराना है और वह एक ऐसा प्रवाह रहा है जिसमे सूर्य, गणेश शक्ति, शैव बौद्ध, जैन सभी परवर्ती और परवर्ती विचार-धाराओ का सगम और समन्वय हो चुका है। मीरा के समय तक उसकी कई धाराएँ बाढ की तरह उमड रही थी। वल्लभ, निम्बाक, चैतन्य, हरिदासी, राधा स्वामी आदि के साथ साथ रामानदी, रामानुजी और अनक छोटे माटे सम्प्रदाय अस्तित्व म थे। 11 (180) लोक मे सब रलमिलकर कर ऐसे एकाकार हो गए थे कि मूर्ति पूजा, निराकार उपासना ब्रह्म ज्ञान, कृष्ण, राम, नसिंह, वराह, विष्णु, चतुर्भुज शिव, सबका अन्तर्भाव भक्ति' मे हो गया था। लोकतात्विक धरातल पर जो भक्त—सम्प्रदाय मुक्त होकर भक्ति करते थे उनम सबका सश्लिष्ट स्वरूप देखन को मिलता है। ऐसा समन्वय का क्रम कबीर क समय भी था और परवर्ती सत एव भक्त कवियो मे भी था। उसी समन्वय को शास्त्रीय रूप देन का प्रयत्न तुलसी न भी किया था। अध्येताओ ने मीरा की भक्ति मे सम्प्रदायो की छाप ढूढन का प्रयत्न तो किया है मगर तत्कालीन लोकमत का अध्ययन यदि वे करते तो मीरा के पदो मे उसके प्रमाण मिल सकत थे।

वस्तुत लाकमत अभेद की ओर जाता है अखडता और एकता की ओर जाता

है। आज भी वैष्णव सिर्फ वैष्णव होते हैं और भिन्न-भिन्न मतमतान्तरों का समन्वय अन्तर्ग्रथन तथा अन्तर्भाव उनकी मान्यताओं में मिलता है, वैसी ही स्थिति मीरा के समय में भी थी। स्वयं मेड़तिये ठाकुर शक्ति के उपासक थे, 44(127) दूदाजी परम वैष्णव भी माने जाते थे, हरभूजी का उन्हें वरद हस्त प्राप्त था, पाबूजी आदि लोक देवताओं के थानक भी पूजे जाते थे, मंदिर चार भुजा के थे और वैष्णव नवधा भक्ति तथा पूजा पाठ वहां चलते रहते थे। संत और साधुओं का आवागमन बना रहता था और ज्ञानार्जन का वही एकमात्र साधन होता था। राजपूती युग में इसी कारण अध्यात्म और भक्ति का सम्मेलन भी मिलता है कि जीवन दो ध्रुवों के बीच जिया जाता था—एक तो रणक्षेत्र में या फिर दो युद्धों के बीच विराम में, जो कुछ तो शृंगार में बीतता था और कुछ साधु संगति में। मीरा से पूर्वकाल के वीरगाथा साहित्य में उसके प्रमाण मिल जाते हैं।

इसलिए यदि मीरा के पदों में हमें कहीं पंचरात्र, कहीं रामानुजी, कहीं वल्लभ-मतीय, कहीं चैतन्य मतीय, कहीं रुद्र सम्प्रदायी, कहीं सूफी प्रभाव मिलते हैं तो वे इसलिए नहीं हैं कि मीरा का उनसे सम्बन्ध था या वह उनमें दीक्षित हुई थी, बल्कि इसलिए हैं कि वे सब लोकमत में जाकर एकाकार हो गए थे। 44(129) भक्ति का जो लौकिक स्वरूप मारवाड़ क्षेत्र में 15वीं-16वीं सदी में रहा, उसके कुछ लक्षण इस प्रकार से कहे जा सकते हैं—(1) भागवत के अनुसार ईश्वर के विराट स्वरूप को मान्यता—उसकी निर्गुनिया धारणा से निकटता होने के कारण संतों के प्रतीक विधान और ब्रह्म निरूपण के अभिप्रायों की स्वीकृति। (2) ईश्वर के विष्णु स्वरूप में—जो कि सृष्टि का पालक माना जाता है—शिव शक्ति सूर्य वराह नृसिंह राम, कृष्ण आदि अवतारों के अन्तर्वेश को मान्यता। (3) ईश्वर के लीलामयी स्वरूपों का आवश्यकतानुसार उपयोग, यथा—स्वामी रूप का, त्राता रूप का, सहायक रूप का, अधम उधारक रूप का, साथी रूप का, बाल रूप का, शत्रु संहारक रूप का, भक्त की मर्यादा के रक्षक रूप का, प्रेम रूप का। (4) ईश्वर सम्बन्धी जिन भिन्न भिन्न धारणाओं, सिद्धान्तों, मान्यताओं, विश्वासों का प्रचार भिन्न भिन्न दार्शनिक मत-मतान्तरों ने किया, उनका भागु-संतों द्वारा साधारणीकरण और सरलीकरण आदि के जरिए मानव की मानसिक आवश्यकताओं के अनुकूल हो सके और उनका निर्वाह हो सके। इसीलिए हम पाते हैं कि भक्ति के दायरे में कृष्ण, राम, दामोदर गिरधारी मुरलीधर गोपी वल्लभ, कंस नाशक, योगी, नरसिंह, वाराह, मधुसूदन आदि नाम अलग-अलग माँगों और आवश्यकताओं के रूप हो गए हैं। इस प्रकार है कि मीरा की भक्ति में प्रेम रूपा भक्ति की प्रधानता 11(214) और उसमें भी लौकिक की उपमा कान्ताभाव 11(215) की अधिकता है। ऐसा कान्ताभाव परम्परागत राजपूती संस्कृति के अनुरूप रहा था क्योंकि युद्ध और सुन्दर के *

प्रेमभक्ति कही कही गूथी जा चुकी है और जिसके साहित्यिक प्रमाण बीसल द रासो जैसे ग्रन्थो मे मिल जाते हैं 13(277 310)। मौखिक परम्परा वाले लोक काव्यो और लोक गीतो मे भी हम भक्ति प्रेम और शृगार के रलेमिले प्रतीक विधान मिल जाते हैं—

जे जीवण तिहाँ-तणा तन ही मॉहि वसत।
धारइ दूध पयो हर, बालक किम काढत।। 45(142)

तुँ ही सज्जता नित्त तू प्रीतम तू परिवाण।
हियडइ भीतर तू वसई, भावइ जाण म जाण।। 45 (114)

हु बलिहारी सज्जणा, सज्जणमो बलिहार।
हूँ सज्जण पग पानही, सज्जण मो गल हार।। 45(145)

सज्जण गुणे समुद्द तू, तर तर थक्की तेण।
अवगुण एक न सॉभर इ रहूँ विलबी जेण।। 45(151)

अहर फरक्कइ तन फुरइ, तनफुर नयँण फुरत।
नाभी मडल सहु फुरइ, सॉक्षइ नाह मिलत।। 44(160)

—इसी प्रकार 'सँकरी गली मे प्रियतम का मिलना', 'दिन गिनते गिनते उगलियो की रेखाओ का घिस जाना, याद मे दुबला जाना कि हाथ की अँगूठी बाह मे आने लग जाए' 'पपीहा', 'चकारे' आदि के अभिप्राय लोकतत्त्वो की बहुत पुरानी शृखला है और इनका उपयोग जसे प्रेम काव्यों मे हुआ है वैसे ही भक्ति साहित्य मे भी।

कहा जाता है कि मेडता म राव दूदा के जमाने मे चार भुजा की पूजा और भक्ति का जार था। राजपरिवार की महिलाएँ भी धार्मिक थी। नितनेम, भजन, पूजन, कीतन, साधु-सगत आम जनता मे बहुलता के साथ प्रचलित थे। भक्ति भरे वातावरण की छटा निराली ही रहती थी। मथुरा वृदावन, पुष्कर, द्वारिका, डाकोर आदि की ओर से आने जाने वाली साधु मडलियाँ भक्तजन और सत-महात्माओ के डेरे मेडता मे पडे ही रहते थे। 11(219) मेडता के पडोस म नागोर, पाली आदि स्थान भी सतो, नाथो और सिद्ध महात्माओ के अखाडे थे। उनका आवागमन भी बना रहता था। राजनीतिक दृष्टि से मेडता का महत्व इस तरह भी था कि वह जोधपुर, जयपुर, अजमेर, मालवा, दिल्ली-आगरा बीकानेर, चूरू, जालोर, मेवाड और गुजरात के बीच केन्द्रीय स्थान था। वहाँ सेनाओ और राजनीतिक जनो तथा बनजारो, व्यापारियो का जमघट बना ही रहता था। उसके कारण वहाँ के लोकमानस मे अपेक्षाकृत उदारता और खुलेपन की मात्रा अधिक ही थी। उसी राजनीतिक स्थिति को ध्यान मे रखकर राणा सॉगा ने मेडता के

साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए थे। 44(130 31)

एक तो वहाँ का भक्ति पूर्ण वातावरण, दूसरे व्यापक वृत्ति वाले लोकमानस और तीसरे बचपन से उस वातावरण मे पली पोसी होने से मीरा के सस्कार भक्ति भावना प्रधान बने थे। 11(219) मीरा के पदो से ही सकेत मिलता है कि—

सात बरस की मैं श्री रग सेविया, जद पायो सुख सुहाग।

—ये सस्कार ही उसकी माधुर्य भक्ति के रूप मे प्रकट हुए। वैष्णव भक्ति के वातावरण के कारण उस पर चार भुजा के सगुण स्वरूप का प्रभाव निश्चय ही प्रधान था। यद्यपि लोकमत के अनुसार उस भक्ति भाव मे लोकतत्वो की प्रखरता थी।

तभी मीरा के पदो मे अपने इष्ट के लिए विविध नामो और स्वरूपो का प्रयोग हुआ मिलता है यथा—13(154)

गिरिधर नागर राम गोकल का बिहारी हरी गोविंद, मनमोहन, ब्रजराज, सावरो, सावरिया चतरभुज नाथ, दीनानाथ प्रभुजी श्याम सुदर भरतार मोहन, बाँके बिहारी, नदलाल गोपाल यदुनाथ कान्हा नागर नट महाराज, ठाकुर, रावल, जोगी, जोगीडा, सामी, स्वामी अविनासी, सतगुरु खसम, प्रियतम, प्रिया, प्रिय, प्रान अधार।

—इनमे लोक प्रचलित प्रयोगो की झलक मिलती है। जहाँ तक मीरा के पदो मे इष्ट के सगुण स्वरूप के वर्णन का प्रश्न है, हमे उसके कई भावना परक प्रकाशन देखने को मिलते हैं।

बरजी मैं काहूकी नहिं रहू, म्हारो श्याम सुदर भरतार। 9 (405)
नैना लोभी रे बहुरि सके नहिं आय।
रोम रोम नख सिख सब निरखत, ललकि रहे ललचाय।
मैं ठाढी ग्रिह आपणे री, मोहन निकसे आय।
बदन चन्द परकासत हेली, मद मद मुसकाय। 9(405 2)
हमरो प्रणाम बाके बिहारी को।
मोर मुगट माथे तिलक बिराजे, कुडल अलक अकारी को।
अधर मधुर पर बशी बजावै, रीझ रिझावै राधा प्यारी को।
यह छवि देख मगन भई मीरा, मोहन गिरवर धारी को।।
33(95-2)

बसो मोरे नैनन मे नदलाल।
मोहन मूरति, साँवरि सूरति, नना बन बिसाल।
अधर सुधा रस मुरली राजति, उर बैजती माल।
छुद्र घटिका कटि तट सोहति, नूपुर सबद रसाल।
मीरा प्रभु सतन सुख दाई भगत बछल गोपाल। 33(96 3)

मेरो मन बहिगो गिरधरलाल सो।
मोर मुकट पीताम्बर हो, गल बैजन्ती माल।
गउवन मैं सग डोलत, हो जसुमति क लाल।
कालिंदी के तीर हो, कान्हा गउवाँ चराय।
सीतल कदम की छाहियाँ हो मुरली बजाय।
बृदावन क्रीड़ा करे, गोपिन क साथ।
सुर नर मुनि मोहे हो, ठाकुर जादुनाथ।
इन्द्र कोप घन बरसो, मूसल जल धार।
बूडत ब्रज को मलेऊ मोरे प्रान अधार।
मीरा के प्रभु गिरधर हो, सुनिये चित लाय।
तुम्हरे दरस की भूखी हो, मोहि कछु न सोहाय।। 33(97 6)

—इसमे मधुर भाव क साथ-साथ लीला स्वरूप भी हैं। दरअसल मीरा के गिरधर तीन स्वरूपो मे भावित हुए हैं 44(307)—

(1) अवतारी कृष्ण के रूप मे—जिस रूप मे मीरा ने उन्हे नर रूप माना है और सयोग-वियोग का आलम्बन बनाया है।

(2) विष्णु रूप मे—जिस रूप मे वे भिन्न भिन्न अवतारो के मूल, देवात्मय प्रभु स्वरूप वर्णित हुए हैं और

(3) अविनाशी रूप मे—जिसम वे असीम, निराकार, परमतत्व के रूप मे अनुभूत हुए हैं। ये तीनो स्वरूप तथापि बहुत विभेद के साथ पृथक् नहीं हो पाए हैं क्योंकि लोकमत मे वसा विभेद या विभाजन था नही। प्रधानता की दृष्टि स देखें तो मीरा को कृष्ण का बाँकेबिहारी वाला स्वरूप ही अधिक इष्ट था—

निपट बकट छवि अटके।
मेरे नयन निपट बकट छवि अटके।
देखत रूप मदन मोहन को, पियत पियूख न मटके।
बारिज भवाँ अलक टेढ़ी मनो अति सुगध रस अटके।
टेढ़ो कटि टेढ़ो करि मुरली टेढ़ी पाग लर लटके।
मीरा प्रभु के रूप लुभानो गिरधर नागर नट के। 33(97-7)

—ऐसे ही अन्य पदो म मीरा के 'गिरधर' का स्वरूप वसा ही है—'सुन्दर

वदन', 'कमल दल लोचन', 'बाँकी चितवन', 'मद मुसकान', 'धेनुचराता बंसी बजाता, 33(98 8) सीस मुकुट पर मोर चंद्रिका', कभी 'भाल पर केसर का तिलक', 'कानो मे लहराते कुंडल', 'कुटिल भकुटि', 'चितवन में टोना', 'अति सुंदर नासिका', 'ग्रीवा तीन रेखा युक्त' 33(98 9) ऐसे स्वरूप वाले गिरधर के 'अंग-अंग पर मीरा बलिहारी' है। गिरधर के इन स्वरूपो मे कुछ तो पारम्परिक हैं, 'बैजतीमाला' वाला रूप विष्णु स्वरूप के साथ जुड़ा हुआ—चार भुजा की छाप प्रमाणित करता है" 'टेढी पाग और उस पर लटकती मोतियो की लड' राजपूती बांके वीरो की छाप बताते हैं। ऐसे ही स्वरूप मे मीरा के 'लोभी नैन अटक गए हैं और बहुरते नही' 33(98-10), वे वही 'ललक कर रह गए हैं और नख से सिख तक उनका रोम रोम देख रहे हैं।' (वही) ऐसी 'माधुरी मूरत' मीरा के 'उर बिच आन अड़ी है', उसके बिना वह 'प्रान कैसे रखे' कि वही 'उसके लिए जीवन मूर जडी है वही (99 11)। ऐसे ही गिरधर के रूप के लिए उसने वह भाव भूमि पाई कि—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुगुट मेरो पति सोई।

और उस भाव बेल को उसने—"असुवन जल सीचि बोया है" क्योकि 'कुल की कानि' व 'जगती तरव' बाधक रहे थे। वही (100 15)

—इस सगुण, साकार और नर स्वरूप के अलावा मीरा ने कृष्ण के चार भुजाधारी विष्णु स्वरूप की वंदना भी की है—

मन रे परसि हरि के चरन।
सुभग सीतल कवल कोमल त्रिविध ज्वाला हरन।
जिस चरण प्रह्लाद परसे, इन्द्र पदवी धरण।
जिण चरण ध्रुव अटल कीन्हें, राखि अपनी सरण।
जिन चरण ब्रह्माड भेंटयो, नखसिखा की धरण।
जिस चरण गोवरधन धारयो, इन्द्र को ग्रब हरण।
जिण चरण कालीनाग नाथ्यो, गोप लीला करण।
दासी मीरा लाल गिरधर, अगम तारण तरण॥ 33(95-1)

इसमे विष्णु तथा उनके नृसिंह, वामन व कृष्णावतार के प्रसग आए हैं। कुछ अन्य पदो मे "कृष्णावतार की द्रौपदी की लज्जा बचाने वाली" झांकी नृसिंह अवतार और गजमोक्ष वाले,विष्णु का स्मरण है 33(119 63)। यह ध्यान देने योग्य है कि जोधपुर-बीकानेर-चूरू की ओर आज भी होली के आसपास नृसिंह धारण किया जाता है और स्वांगधारी रस्सी का चाबुक लेकर दुष्ट जनो को मारने का नाटक करता है। उस क्षेत्र मे नृसिंह की मान्यता पौराणिक काल से चली

आती है। मीरा ने यदि उसी अवतार को बार बार याद किया है तो वह लोक-तत्त्वानुसारी है। उसके अनुसार वह ऐसे 'हरी' से विनती करती है जिसने 'जुग-जुग भीर हरी भगतन की, दीनी मोक्ष समाज" वही (119 64)। तथापि ऐसे पदों मे भी मीरा अपनी दाम्पत्य भावना नहीं छोड सकी है। यानी इसका मूल स्वर मधुरा भक्ति का है और कृष्ण के 'तरण-तारण' वाले सर्वव्यापक स्वरूप का वणन करते हुए भी वह 'विरहिणी' की भावना उसके साथ जोड देती है—

हरी बिन कूण गति मेरी।
तुम मेरे प्रतिपाल कहिए, मैं रावरी चेरी।
आदि अन्त निज नाम तेरो, हीया मे फेरी।
बेरि बेरि पुकार कहों, प्रभु आरति है तेरी।
यो ससार विकार सागर, बीच मे घेरी।
नाव फाटी प्रभु पाल बांधो, बूडत है बेरी।
विरहिणी पिव की बाट जोवे, राखि लयो नेरी।
दासी मीरा राम रटत है, मैं सरण हूँ तेरी। 33(119 65)

मीरा के 'गिरधर' चाहे 'बाँके बिहारी' हैं, चाहे 'नन्दलाल' हैं, चाहे 'अविनास' हैं, चाहे 'भुवनपति (वही 130 96)हैं, चाहे 'मन मोहना'(वही 131-99) हैं, चाहे केवल 'तुम' हैं (वही 131-104) चाहे 'जनम मरण के साथी' हैं (वही 132-106), चाहे 'सजन' हैं, चाह 'राम' (वहीं 133), चाहे 'राज' हैं—उसी मधुरा भाव से सम्पृक्त किए गए हैं।

लगता है कि विष्णु सम्बन्धी मधुरा और तरणतारण वाले मीरा के पद अलग-अलग समय के हैं। मधुरा भावी पद तो समवत किशोरावस्था के होंगे और दीनता और आतुरता वाले विनय के पद उस अवस्था के होंगे जब चारो ओर के दबावो और पारिस्थितिक सकटो के बीच मीरा ने अपने को निराधार निराश्रित अनुभव किया होगा। वैसे समय मे उसने विष्णु के तरणतारण स्वरूप का ही स्मरण किया है और उनमे मधुरा भावा का अभाव है, यथा—

तुम सुणो दयाल म्हारी अरजी।
भव सागर म बही जात हों, काढ़ो तो थाँरी मरजी।
यौ ससार सगो नहिं कोई, साँचा सगा रघुबर जी।
मात पिता और कुटुम कबीलो सब मतलब के गरजी।
मीरा की प्रभु अरजी सुण लो, चरण लगावो थाँरी मरजी॥
वही (141-130)

इसी तरह से—

मैं थो तेरी सरण पडी रे रामा, ज्यू जाणो त्यू तार।
अडसठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो, मन नहिं मानी हार।
या जग में कोई नहिं अपणा सुनियो श्रवण मुरार।
मीरा दासी राम भरोसे, जम का फदा निवार।"

वही (141-131)

जैसे ही—

अब मैं सरण तिहारी जी, मोहि राखा कृपा निधान।
अजामील अपराधी तारे, तारे नीच सदान।
जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढी बिमान।
और अधम तारे बहुतेरे, भाखत सत सुजान।
कुबजा नीच भीलनी तारी, जानै सकल जहान।
कहँ लागे कहूँ गिणत न आवै, थकि रहे वेद पुरान।
मीरा कहैं मैं सरण रावल, सुणि यो म्हैनो कान। वहीं (141-132)

इसमे विष्णु के स्वरूप का तथा राम और कृष्ण अवतार का ही स्मरण है। कुछ और पदो म उसी प्रकार 'गजराज के तारण का' (वही 147-135) 'द्रौपदी की रक्षा का' (वही 135) 'प्रहलाद की रक्षा का', 'अहल्या उद्धार का', 'सुदामा की विपत्ति के निवारण का' (वही 135)। प्रसग देकर कहा गया है—'मीरा के प्रभु मो बदी पर, एती अबेर भई किन कारण।'

अविनाशी, परमतत्व और निराकार स्वरूप वाले पद वे हैं जिनकी चर्चा निर्गुनिया प्रभाव के अन्तर्गत हो चुकी है। और वे सभवत मीरा के एकात चितन के उन क्षणो के पद हैं जब वे तात्विक विमर्श की अवस्था मे रहती होगी और सघषपूण जीवन जी रही होगी।

वस्तुत हम मीरा की रचनाओ को उनके जीवनवृत के मोडो और सघर्षों से जोडकर देखना चाहिए। एक तो उनका प्रारभिक जीवन था—किशोरावस्था से लेकर विवाह के समय तक दूसरा विवाहित जीवन का समय, तीसरा वैधव्य और उसके बाद राणा सागा की मृत्यु तक, चौथा रत्नसिंह के राज्यकाल का राजनीतिक कलह का समय और अतिम राणा विक्रमाजीत का समय जबकि कष्टो का अन्त और आरभ चित्तौड त्याग के साथ हुआ था। अतिम समय रणछोड की शरण मे रहने का हो सकता है जिस समय वे पदमुक्त कीर्तन और आध्यात्मिक धरातल के हो सकते हैं।

मीरा के पद—वे चाहे विष्णु के कृष्णावतार से जुडे हो अवतारमूल से जुडे हो या निराकार स्वरूप से जुडे हो—तीनों मे यदि प्रयत्न किया जाए तो मीरा

का जीवन वृत्त और पारिस्थितिक साम्यगत विकास पृथक से खोजा जा सकता है। तथापि इतना ध्यातव्य है कि मीरा के सामने सगुण, निर्गुण, लीलाधारी, प्रेमल आदि स्वरूपो मे कोई विभेदक रेखा नही थी। हमे यह मानकर चलना चाहिए कि मीरा केवल भावना थी और उस भावना की बाढ़ मे जहां जो आ गया सो आ गया। वह न दार्शनिक थी, न शास्त्रवेत्ता थी, न आचार्य थी, न भक्त थी। वह भक्ति की साकार भावना थी जिसके सामने किसी तर्क की, किसी सम्प्रदायी छाप की कोई अस्मिता नही थी, 44(302) इसी कारण वह धार्मिक आंदोलनो के अपने युग मे भी सम्प्रदायवाद से निरपेक्ष रही। वैसा न होता तो अष्टछापी भक्तो की तरह वह भी एक छाप बन कर रह जाती। वह केवल भावना थी, इसीलिए अमूर्त होकर लोक के मन मे उतर गई और अनचाहे अनजाने देश-काल की सीमा मे फैल गई।

(iii) सगुण निर्गुण मे अभेद यही कारण है कि उसके पदो मे हमे सगुण मे निर्गुण और निर्गुण मे सगुण, परम मे अहम् और अहम मे परम का सम्मिश्रण मिलता है। *यथा—'गिरधर नागर' के साथ ही यह व्यक्त करना कि* 'सतगुरु शरण गहू' (404-1)। 'स्याम सुन्दर भरतार' की बात करते हुए उसके साथ मीरा के प्रभु अविनासी पूर्ण ब्रह्म अपार', (405 3) कहना। एक ओर 'देखो साईया कहना और उसके साथ ही 'हरिमन काठ किया (416 40) कहकर 'गिरधर नागर' की छाप से पद पूरा करना। उसी तरह पद की अर्धाली से मोर मुकुट पीताम्बर सौहे स्याम बरण बड भागी' कहना और उसी के साथ निर्गुनिया शैली मे—

'जनम जनम को साहिब मेरो, वाही से लौ लागी।
अपने पिया सग हिल मिल खेलू, अधर सुधारस पागी।।" का सम्पुट देना।

सगुण, निर्गुण, लीलामय और परम तत्व के सब स्वरूपो का विचित्र-सा मेल भी कुछ पदो मे मिलता है—

म्हाने चाकर राखो जी गिरधारी लाल, चाकर राखो जी।
चाकर रहसू बाग लगा सू, नित उठि दरसन पासू।
वृन्दावन की कुज गलिन म गोविंद लीला गा सू।
चाकरी मे दरसन पाऊँ सुमिरन पाऊँ खरची।
भाव भगत जागीरी पाऊँ तीनों बाता सरसी।।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल वैजन्ती माला।
वृन्दावन म धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला।।
ऊँचे-ऊँचे महल बनाऊँ बिच बिच राखू बारी।
सांवरिया के दरसन पाऊँ, पहिन कुसुम्भी सारी।।

जोगी आया जोग करन को तप करने सन्यासी।
हरी भजन को साधू आया, वृंदावन के वासी॥
मीरा के प्रभु गहिर गभीरा, हृदै रहो जो धीरा।
आधी रात प्रभु दरसन दी जो, प्रेम नदी के तीरा॥ 9(418-48)

वैसे ही एक पद मे 9(419-53) लौकिक धरातल पर लौकिक काव्य रुढ़ियो का प्रयोग करते हुए 'पपीहे को पी पी करने पर चोच मरोड़ने की धमकी है, चेतावनी है कि पी-पी करने का अधिकार तो विरहिणी का है, तू पी-पी करने वाला कौन ?' उससे दूर हटकर कौए की बानी को स्वागत की नजर से देखा गया है, उसकी चोच सोने से मढाने की बात है, उसके जरिये पाती भेजने की इच्छा भी कि जाकर 'पी स कहना कि तेरी प्रेमिका धान नही खाती' और अन्तत 'प्रिय' के लिए 'अन्तर-जामी' का प्रयोग जोकि परमतत्व का वाचक है। ऐसा लगता है कि निर्गुनिया शैली की व्यथा को लौकिक सगुनिया और कायिक अभिप्रायो से व्यक्त किया गया है।

एक पद मे 9(420 56) तुलसी की तरह केवल 'नाम महिमा' के प्रमाण मे पौराणिक 'पत्थर तैरने', 'गणिका', 'गजग्राह' की कथाए कहकर अत मे 'नाम महातम गुरु दियो परतीत पिछाणी हो' कहा गया है। पद 9(429 60) म 'अविनाशी के चरण कमलो की वदना' करके अत मे 'स्याम तुम्हारी दासी' कहा गया है। 'जोगिया' के नाम पर 'अलख जगाने, जोग जगाने की' बात कहकर मीरा अपने 'गिरधर नागर से मिलकर तपन बुझाना चाहती है 9(423 70)। उसी तरह जिन आखो मे साहब बसता है, उन्ह मीरा बद भी नही करना चाहती, त्रिकुटी महल म झरोखे से झाकी लगाए बैठी है' और एसी जाग साधना मे 'गिरधर नागर को पाना चाहती है। 9(425 81)

मीरा की भाव भगति म किसी मत विशेष की छाप नही है। सब मतमतातरो क प्रतीक, अभिप्राय और सार तत्व लोकमानस मे जाकर एकमेक हो जाते हैं। मीरा जैसी भक्त की भावनाए जब उमड उठती हैं तब चाहे जो उसके वेग को सह सके वह सहज भाव मे सामन आ जाता है—तभी

'वगनी का लहगा पहन कर वह सुहागण, राम नाम का घुडला पहनना चाहती है', 'हरि नाम की नक बेसर धारण करके 'सावरिया वर को वरना' चाहती है बल्कि 'कृष्ण नाम की झनकार करते हुए सुरत मे रमना चाहती है।' 43(162-201) और ऐसी 'पुकार' वह 'अविनासी की पोल पर' कर रही है।

मीरा के पदो मे (33) कुछ उपदेशपरक हैं, कुछ सासारिक माया मोह की असारता बताने वाले, लोक रूढ़ियो से सने हुए चरित्रोपदेशक पद भी हैं—जो सब सामान्य वाछा के अभिव्यजक कहे जा सकते हैं—

जग में जीवण थोड़ा, राम कुण करे जजार।
मात पिता जो जनम दियो है, करम दियो करतार।
कई रे खाइयो कइ रे खरचियो, कइ रे कियो उपगार।
दिया लिया तेरे संग चलेगा, और नहीं तेरे लार।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भज उतरे भव पार॥
33(161 196)

मनखा जनम पदारथ पायो, ऐसी बहुर न आती।
अबके मोसर ज्ञान बिचारो, राम नाम मुख गाती।
सतगुरु मिलिया सुज पिछाणी, ऐसा ब्रह्म मैं पाती।
सगुरा सदा अमरित पीवै, निगुरा प्यासा जाती।
मगन भया मेरा मन सुख मे, गोविंद का गुन गाती।
साहब पाया आदि अनादि, ना तर भव में जाती।
मीरा कहे इक आस आपरी, औरो सू सकुचाती॥ 33(161-197)

—ध्यान योग्य बात है कि मारवाड के लोकमत मे 'गुरु' करना एक व्यापक विश्वास रहा है। आज भी सवर्ण और अवर्ण बिना कान फुकाए भी किसी को 'गुरु' बनाते मानते हैं। विश्वास है कि 'गुरु' बिना 'जनम अकारथ' जाता है।

नहिं ऐसो जनम बारम्बार।
का जानू का पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार।
बढ़त छिन छिन घटत पल पल, जात न लागे बार।
बिरछ के ज्यूं पात टूटे, बहुरि न लागे डार।
भौ सागर अति जोर कहिए अनत ऊंडी धार।
राम नाम का बांध बेड़ा, उतर परले पार।
ज्ञान चौसर मंडी चौहटे सुरत पासा सार।
या दुनिया में रची बाजी जीत आवै हार।
साधु संत महंत ज्ञानी, चलत करत पुकार।
दासी मीरा लाल, जीणा दिन च्यार॥ 33(160 195)—ऐसे

पदो मे लोकतत्त्वों का सार-ही-सार है। उनमे सब दर्शनों का सार, सब मत मतांतरों का निचोड़ और सब साधनाओं का तत्त्व लोकमत मे समाया हुआ है। दार्शनिक वेदांत कहें तो बौद्ध वाद कहें तो, मायावाद कहें तो कर्मवाद कहें तो, नवधा भक्ति, निराकार उपासना, वैराग, जोग, भोग सबके सब लोकमानस के मंच पर रलमिलकर किस तरह से साधारणीकरण मे ढलते हैं—इसका पता मीरा के पदों से चल जाता है—

भज मन चरण कँवल अविनासी।
जेताई दीसे धरण-गगन बिच, तेताइ सब उठ जासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिए करवत कासी।
इण देही का गरव न करणा, माटी मे मिल जासी।
यो ससार चहर की बाजी, साझ पड्या उठ जासी।
कहा भया जो भगवाँ पहर्‍याँ, घर तज भये सन्यासी।
जोगी होय जुगति नहिं जाणी उलटि जनम फिरि आसी।
अरज करूँ अबला कर जारें, स्याम तुम्हारी दासी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी।
33(160-194)

और कर्मगति की अटलता, भाग्य का भोग लोकमत मे कितना अटल है, यह भी मीरा के पदो मे उतरा है—

करम गति टारे नाहिं टरी।
सतवादी हरिचद से राजा, सो तो नीच घट नीर भरे।
पाँच पाँडु अरु सती द्रोपदी, हाड हिमाल गरे।
जग्य कियो बलि लैण इद्रासन, पाताल धरे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, विष स अमत करे।
33(158-190)

एक तरफ तो 'सहज बैराग' की आवश्यकता का उपदेश—

यहि विधि भगति कैसे होय।
मन की मैल हिये तें न छूटी, दियो तिलक सिर धाय।
काम कूकर लोभ डोरी, बाँधि मोह चडाल।
क्रोध कसाई रहत घट मे, कैसे मिलें गोपाल।
बिलार विषया लालची रे, ताहि भोजन देत।
दीन हीन ह्वै क्षुधा रत से, राम नाम न लेत।

इस तरह से अत मे—

हरि हितु से हेत कर, ससार आसा त्याग।
दासी मीरा लाल गिरधर, सहज कर बैराग॥ 33(150 162)

और दूसरी तरफ "रमैया के बिना जीव दुख पाता है" ऐसी अभिव्यक्ति मे रलीमिली दुनिया की अज्ञानता पर खेद—

रमइया बिनि यों जिवड़ो दुख पावै।
कहो कुण धीर बँधावै।
वो ससार कुबधि को भाडो, साध सगत नहि भावे।
राम नाम की निंद्या ठाणे, करम ही कुगत कुमावै।
राम नाम बिन मुकुति न पावै, फिरि चौरासी आवै।
साध सगत मे कबहुँ न जावै, मूरखि जनम गुमावै।
जन मीरा सतगुरु के सरणै, जीव परम पद पावै।

33(150 160)

मीरा ने इष्ट का स्वरूप आलम्बन रूप मे चाहे "मोर मुकुट वाले, बाकी चितवन वाले, गोपी लीला वाले कृष्ण का था" तथापि उसकी भक्ति भावना बहुमुखी, लोकोन्मुखी और लोकमतानुसारी थी।

(2) साधना उसी तरह उनकी साधना पद्धति मे भी हमें उसी तरह की भिन्न भिन्न पद्धतियो और लौकिक समग्रता के प्रमाण मिल जाते हैं। मीरा के मन मे भक्ति का उद्रेक सात वष की उमर से हुआ था और सबसे निरतर भजन कीतन, उपदेश, कथा, अ तर्मुखी चितन तथा साधु सतो की सगति मे पुष्ट होकर उसने जो अनोखा और सुदृढ रूप धारण किया वह कुछ इस तरह का था कि जो टूट सकता था, मगर नम नही सकता था।

जैसा कि मेडता का धार्मिक और नैतिक परिवेश था, उसमे किसी सम्प्रदाय विशेष को प्रश्रय नही था। दूदाजी स्वय जगदवा के भक्त थे, परम वैष्णव थे, विष्णु का चार भुजा स्वरूप उनके कुल का इष्ट था, हरभूजी का उनका वरदहस्त और स्नह था, पाबूजी उनके वश गौरव थे, जाम्भोजी जनमत के जाग्रत महात्मा थ। इन सबके साथ पौराणिक और नाथ पथी प्रभाव लोकगत हो चुके थे। साधु-सतो का निरतर आवागमन, भजन, कीतन और सतसग लोक जीवन और राज घराने के लिए ज्ञान और प्रकाश का राजपथ बना हुआ था। ऐसे वातावरण मे सात बरस की मीरा ने जो सस्कार ग्रहण किए वे भावना प्रवण होकर इस कदर पनपे कि मीरा न व्यक्ति रही न कन्या रही, न राजवधू रही, न भक्त रही, न सत रही बल्कि 'लोक' हो गई और अमर हो गई।

कहा जाता है कि उसने सगुण रूप श्री कृष्ण की पत्नी भाव स भक्ति की, कृष्ण को अपना पति माना और उसके लिए किसी की परवाह न की। कोई उसमे नाथपथी जोग साधना, निर्गुनिया ज्ञान साधना की बात भी करते हैं। उसके व्यक्तित्व निर्माण की चर्चा म पहले यह कहा जा चुका है कि परिस्थितिजन्य विशिष्टताओ न मीरा का विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया था। बचपन स उसने अपने को "आभै गैरयो धरता झेल्यो' जैसा अनुभव किया था। अन्तर्मुखता उसकी विशिष्टता थी और धार्मिक वातावरण ने उसके खाली मन को परम तत्व की

अनुभूति से भरने का काम किया।

उसका भौतिक जीवन भी विषादपूर्ण संघर्षों और विषमताओं की कटु कहानी रहा था 44(149)—बचपन की निराश्रित भावना, किशोरावस्था में वंजनाओं का अम्बार, ठाकुर कन्या को राजवधू के रूप में देखने की परिवारवालों की कामना और आकांक्षाओं के साथ उसके रिक्त मन की भूख का संघर्ष जोकि उसे अधिक शक्ति पूर्वक कृष्ण शरण की ओर ले जाने वाला सिद्ध हुआ। वह मान चुकी थी कि "माता पिता उस कुटुम कबीलो, सब मतलब के गरजी" और इसीलिए शायद संकल्प कर चुकी थी। कि "बरजो मैं अब काहू की न रहों।"

उसके व्यक्तित्व की प्राणशक्ति बड़ी प्रबल थी, इसी कारण उसने अपने मन के खालीपन को भरने वाली भावना भक्ति और साधु संगत को नहीं छोड़ने की टेक, छिन्न भिन्न होने तक निभाई। पीहर में भी उसकी टेक थी कि—

"तू मत बरजे माइडी म्हनै साधा दरसण जाता" और ससुराल में भी उसकी टेक रही कि—

"राज किये ज्याना करणै दीजो, मैं भगता री दास।
सेवा साधु जनन की, म्हारे राम मिलन की आस।।"

—यदि उसने अपनी भावना भक्ति जारी रखी होती और साधु संगत की टेक छोड़ दी होती तो मीरा मीरा नहीं बनती, मेवाड़ के राजघराने की एक घटना-विहीन राजवधू होकर रह जाती। उसकी सारी साधना के मेरुदंड ये दो ही हैं—एक तो अपनी विशिष्ट शैली में भावनाशक्ति में डूबे रहना और दूसरा साधु संगत से विमुख न होना। भावना परकता भी इतनी एकांतिक और इतनी तीव्र और अभेद्य कि राज वैभव, ऐश्वर्य, लोभ, वंजना, प्रताड़ना मृत्यु, घात कुछ भी उसे भेदने में सक्षम नहीं रहा।

(1) निर्गुण मताधारित—जागतिक संघर्षों का झेलते हुए भी उसने अपनी भाव भगति की साधना शायद चारभुजा स्वरूप की स्तुति, विनती और निर्गुनिया संतों की बानी के प्रभाव से आरम्भ की। हो सकता है कि उसके आरंभिक पद साधु संतों से सुने हुए या उनके अनुकरण स्वरूप हों। उनमें सामान्य हरि स्मरण के, पुराण आधारित, स्वरूप वर्णनात्मक तथा संत बानी प्रभावित पद हो सकते हैं—

ओलूं थारी आवै हो महाराज अविनासी।
हो म्हान कबदे दरस दिखासी।
बिरह वियोगन बन-बन डोलूं करवत लूंगी कासी।
निसदिन ऊभी पंथ निहारूँ, कब मोहे धीर बंधासी।
कृपा करो म्हारे भवन पधारो नहिं ये जिवड़ो जासी। 9(409-

आत्मा के विरहिणी अभिप्राय के नमूने कबीर, रैदास और अन्य सतो की वानी मे भी मिलते हैं। आत्मा की परमात्म चेतना की आकुलता, वियोग की व्याकुलता, अन्न पानी मे अरुचि, काया सिंगार से विमुखता—जैसे सतो की वानी मे लक्षण मिलते हैं, वैसे ही मीरा के कई पदो म मिलते हैं। ऐसी अन्तर्मुखी साधना मीरा की मधुरा भक्ति की अपनी विशेषता है जिसमे वह नारी के उन्माद, विषाद अकुलाहट आदि को विशिष्ट रगरूप देकर अभिव्यक्त करती है। कबीर आदि सत तो आध्यात्म के धरातल को छोड नहीं पाए, मगर मीरा ने अपन अबिनासी को 'पति' बनाकर उसमे सगुण तत्त्व भी डाल दिए। बल्कि इस आलम्बन के लिए ससारी पति, कुल, परिवार, मर्यादा सबकी बलि चढ़ा दी। उसकी साधना में अनुभूतियो की अन्तर्मुखता अतुलनीय है—

अरी हौं तो याही उमा है लागी रही री।
कबहू न पिय मो सो प्रेम जतायौ,
कबहू न हसि मोरि बहियाँ गही री।
अब कैसे जीवन बनै मोरी आली,
कबहू न पिय मो सो जिय की कही री॥ 11(76 6)

—अमूत भावना मे लौकिक अभिप्रायो और क्रियाओ का सहज आरोपण मीरा की साधना की ऐसी सम्प्राप्ति है जिसकी सचाई से कोई इनकार नहीं कर सकता फिर भी जिसकी शास्त्रीयता पर प्रश्नवाचक बना रहता है।

वैसे तो कबीर भी 'राम की बहुरिया' बनते हैं और मीरा भी उस छाप पर "प्रेम की चूनर ओढकर भरतार गिरधर" को मानती है फिर भी नारी हृदय की जो कसक, व्यथा और पीडा मीरा की साधना मे है वह कबीर से कोसो दूर है—कबीर भी अपने "राम से मिलने के ताइ सिंगार करके" बैठते हैं, मगर उसी छाप पर मीरा की साधना कुछ अलग ही है—

आज रगीली रैण प्रीतम पाँवणा हो राज।
तन सनगारूँ सेज सवारु अजन सार धन वारु।
स्याम सुदर तन धारू लेसूँ भावना माराज।
फले मनोहर मन-मन फूले सदा सुहाग पटल सब हूले।
सब दुख भूले फूले करसु वदावना हो राज। 11(78-13)

देखने लायक है अनुभूति की वह तल्लीनता जिसमे राजपूत नारी की पाँवणा पधारण और वदावन के लौकिक तत्त्व सहज अभिव्यक्ति मे उतर आए हैं।

मीरा एक ओर "भगति देख राजी होती है' और "जगती देख रोती है" तो दूसरी ओर "अन्त लोक की अन्त अनुभूति मे किसी अगम लोक में सुख भी पाती है।"

चालाँ अगम वा देस काल देख्याँ डराँ।
भरा प्रेम रा होज, हसाँ केल्या कराँ॥ 44(365)

और ऐसी अन्तमु खता इतनी प्रबल सधी कि माता, पिता, पीहर, सासरा, दड, भय, लोभ सब नाकारा होकर रह गए—

नैण लगे तो घूघट कैसो, लोक लाज तिनका ज्यों तोर्‌यो।
नेकी बदी है सिर पे धारी, मन हाथी आंकुस दे मार्‌यो।
प्रगट निसान बजाय चली, राणा राव सकल जग छोर्‌यो।
मीरा सबल धणी के सरणे, का भयो भूपति मुख मोर्‌यो।

—देखने की बात है कि राजपूत रमणी जो 'सबल धणी' के 'सरणे' हो और 'निसान' के घोष पर चल पड़ी हो, उसे कौन छेड़ सकता है। मीरा ने अमूर्त पति को जो लोकतात्त्विक अर्थ दिया है, वह अनन्य है।

माई मेरा पिय बिन अलूणो देस।
राग रंग सिणगार न भावें, खुलि रहे सिर के केस।
सावण आयो साहिब दूरे, जाइ रहे पर देस।
सेज अलूणी भवन अकेली, रैण भयंकर भेस।
आव सलूणो प्रीतम प्यारे, बीते जोबन वेस। 9(400 8)

—इस टेक में व्यथा का अनोखापन तो है ही, निगु निया छाप में लौकिक अभिप्राय और व्यंजना—"अलूणो", 'खुलि रहे सिर के केस", "जाइ रहे परदेस", "सेज अलूणी", "सलूणे प्रीतम'—मीरा की विशिष्टता के द्योतक भी हैं।

मीरा की साधना अव्यक्त के प्रति, अमूर्त के प्रति, अमूर्त की शैली में भी है और मूर्त की शैली में भी है। संभव तो यह है कि साधु-संतों के समागम से उसने आत्मा-परमात्मा के अमूर्त ज्ञान के तत्त्व और पारिभाषिक अभिप्राय ग्रहण किए थे। वे मेड़ता के लोक मानस में भी रूढ़ थे। वे ही उसकी एकांतिक अनुभूतियों में सहज उद्‌गार बनकर फूट पड़े हैं—'रमैया बिन मो सू रह्यो न जाइ।' और जब 'उस अविनासी महाराज की ओलू आती है तब तो उसकी अन्तर्व्यथा कितने-कितने रूपों में फूटी पड़ती है कि—

बिरह वियोगिन बन बन डोलू करवत लूंगी कासी।' 'नहिं वे जिवड़ो जासी' और मैं भेद अभागण काहे को सरजी, पिया मा सूँ रहत उदासी' 9(409-13)

जो सिरजन हार है, उसी के वियोग की यह व्यथा मीरा ही उससे कह सकती थी। अपने 'भुवन पति' की वियोग व्यथा में 'भूख मिट जाना', 'नींद का नसाना', 'रैण बिहाणी होना' तो सामान्य लौकिक अभिव्यक्तियाँ हैं, मगर 'बालपनो की प्रीत' वाले 'रमैया का कदे तोल न आने पर' मीरा की जो कष्ट-साधना है, उसे

पहचान पाना कठिन ही है—

आवो मनमोहना जी मीठा थारा बोल।
बालपना री प्रीत रमइयाजी, कदे नहिं पायी थारो तोल।
दरसण बिन मोहिं जकन परत है, चित मेरो डांवाडोल।
मीरा कहे मैं भई रावरी, कहो तो बजाऊँ ढोल। 9(410 19)

जो 'आत' भाव मीरा के मन मे है उसके कारण 'तलपत-तलपत कलना परत है,' 'रात दिन पथ देखते' बीतते हैं और 'पलक न पल भर लागी रे', 'रात दिन पिव पिव रटते रटते', 'दूजी सब सुध-बुध भाग गई है।' इसी कारण शायद मीरा ने लोक लाज, कुल मर्यादा किसी की परवाह नहीं की क्योंकि—

मीरा व्याकुल अकुलाणी, पिया की उमग अति लागी री।
9(401-24)

उसकी साधना का लोकानुसारी स्वरूप यह था कि—

अग छीन व्याकुल भई, मुख पिय पिय बानी हो।
अ तर वेदन विरह की, वह पीर न जानी हो।
ज्यो चातक घन को रटै, मछली जिमि पानी हो।
मीरा व्याकुल बिरहणी, सुध बुध बिसरानी हो। 9(414 35)

साधना की वेदना मे कष्टो के बयान मे मीरा के पास आलकारिक या कलात्मक अभिव्यक्ति नही है। लोक जीवन की सपाट अनुभूति—जागते रहना, विकल रहना, आरति सहना, प्रतीक्षा करना खानपान न भाना, अगीसगारे रहना—यही सब बार बार सहज बानी म उभरती गई है। पपैये को बुरा भला कहना, कौए को सदेशवाहक बनाना, उसकी काँव-काँव को प्रिय आगमन का सूचक मानना, चातक, मोर, सावण को त्राहक मानना—ये सब राजस्थानी लोककाव्यो के बहुत पुराने अभिप्राय या प्रतीक हैं—यथा—

बावहियउ नइ विरहणी दुहुवा एक सहाव।
जबही बरसइ घण घणउ, तबहि कहइ प्रिय आव॥ (ढोलामारू 27)
बावहिया निल पखि या वाढत दइ वइ लूण।
पिउ मेरा मइ प्रीउ की तू प्रिउ कहइ सकूण। (वही 33)
सावण दूभर हे सखी किहाँ मुग पाण आधार। (वही 49)
कउआ दिऊँ बधाइयाँ, प्रीतम मेलई मुज्झ।
काढि कलेजउ उप्पवउ भोजन दिउली तुज्झ। (वही 75)
हूँ बलिहारी सज्जणां सज्जण मो बलिहार।
हूँ सज्जण पग पानहीं, सज्जण मो गलहार। (वही 176)
चाल सखी निण मदिर रहूँ, सज्जन रहियउँ जेण। (वही, 359)

और, उन सबका अपने ढंग से उपयोग करते हुए मीरा ने अपनी साधना को वाणी दी है—

"ज्यों चातक घन को रटै, मछली जिमि पानी हो।"
"भूख गई निदरा गई, पापी जोव न जावे हो।" 9(410-13)
"रे पपैया प्यारे कबको बैर चितार्‌यो।
दाझ्या ऊपर लूण लगायो, हिवड़ो करवत सार्‌यो।।" 9(408-11)

"पपइया रे पिव की बाणी न बोल।
सुणि पवेली बिरहणी रे, थारी रालेली पांख मरोड़।
चोंच कटाऊँ पपइया रे, ऊपरि कालर लूण।
पिव मेरा मैं पिव की रे, तू पिव कहे सकूण।" 9(419-53)

प्रीतम कू पतिया लिखूं कउआ तू ले जाइ।
प्रीतम जी सू यू कहे रे, थाँरी बिरहणि धान न खाइ।। 9(419 53)

निरतर सालती पीड़ा का अनुभव ही मीरा की साधना का सार है—वह भी अमूर्त के साथ सुरति की पीड़ा—

मीरा मनमानी सुरत सैल असमानी।
जब जब सुरत लगे वा घर की, पल पल नैनन पानी।
ज्यों हिये पीट तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी।
रात दिवस मोंहि नींद न आवत भावै अन्न न पानी।। 9(425 78)

और वह पीड़ा भी ऐसी कि उसके लिए मीरा—

'माता पिता सुत बधु दारा, ये पाँव मे बेरी' 11(93-59)

मानकर उन्हें तोड़ने का सकल्प रखती है। सकल्प भी बहुत पुराना है—

"सात बरस री मैं श्रीरग सेविया, अब पायो सुख सुहाग,
मीरा नैं प्रभु मिल्याजी भव भवरा भरतार।" 11(93 64)

और वह भरतार भी ऐसा कि—

बलि जाऊँ चरणा की दासी।
यों ही मेरे गगा, यों ही मेरे जमणा, यो ही है तीरथ कासी।
हरिजी मेरा म्हें हरिजी की, जगत करा किन हासी।
मीरा के सिर उपरि बिराजे एक सखेड अविनासी।
11(107-115)

एक पल भी इस अविनासी के बिना प्राण दूभर हो जाते हैं—

प्रभुजी तुम दरसण बिन दोरी।
मेरी लगन लगी है राम सूं और सकल सूं तोरी।

और

पीया मोसू मुख न बोले, मैं किणधू विध जीऊँ ।
मैं तो प्राण तजत हूँ अब ही, भर बटकी विख पीऊँ । 11(106 111)

उस दूभरता मे वह—

फारूँगी चीर करूँ गलकथा, रहूँगी बैरागण होयरी ।
चूरियाँ फोरूँ, माँग बिखेरूँ, कजरा मैं डारूँ धोयरी ।
33(114 48)

—ऐसा करके 'जोगन बन कर' 'बन-बन भटकने' को भी तैयार है, मगर 'कुल मरजाद' 'पीहर-सासरे की लाज' निभाने को तैयार नही है। ऐसी अटलता, अविचलता और एकात निष्ठा मीरा की साधना के निर्गुनिया रूप मे उभरती है।

(ii) सगुण मताधारित—दूसरी ओर सगुण वैष्णव मत से प्रभावित उसकी साधना मे साधु सगति, भजन, कीर्तन, नितनेम, दरसण, कीर्ति स्मरण, गुणवर्णन, लीला गान—की बातें दो रूपो मे मिलती हैं। एक तो प्रेम भावना की अनन्यता के साथ और दूसरे दासी भावना के साथ। साधु-सगति मीरा के साधना-पथ का कटकाकीर्ण क्षेत्र था। यदि वह अपनी भक्ति कायम रखती और साधु सग की टेक छोड देती तो उसके जीवन का सघर्ष मिट जाता। मगर उसकी वह टेक बहुत अडिग थी—

पीहर मे भी वह—

'तू मत बरजे माइडी म्हनै साधो दरसन जाती
राम नाम हिरदै बसै, माहिले मदमाती ।" 33(106-20)

कहकर उस टेक को पूरा करती थी, और सासरे मे भी उसने वही टेक पकड रखी थी—

"राज किमे ज्याना करणे दीज्यो, म्हूँ भगताँ री दास ।
सेवा साधू जनन की, म्हारे राम मिलण की आस ।"
33(106 29)

उसके लिए साधुजन ही आत्म कल्याण के माध्यम थे और वह उनकी सगति किसी भी कीमत पर छोडने को तैयार नही थी।

उसकी नजर मे—

"साध माता पिता कुल मेरे, सजन सनेही ग्यानी ।
संत चरण की सरण रैनदिन, सत कहत है बानी ।" 33(107 30)

—ऐसी लगन थी—साधु सगत के प्रति। निश्चित रूप से उसके बचपन की भावात्मक रिक्तता को साधु-सगत मे आश्रय मिला था और वह उस आश्रय को

आजीवन नही छोड सकी, चाहे उसकी वह टेक निंदा, वर्जना, प्रताडना, अपमान आदि का कारण बनी।

लीला गुण-गान में उसने विष्णु के पौराणिक स्वरूप का, अवतारो का, कल्याण-कारी और पोषक भावना का वैष्णव शैली मे स्मरण किया है जहाँ वे भक्तवत्सल हैं, दया निधान, कृपाल, स्वामी, भुवनपति, विपदविदारण, राम आदि हैं। विनय और प्रार्थना साधन बने हैं—कही दास भावना उभरती है तो कही भक्त का समर्पण और श्रद्धा ही व्यक्त होती है। हो सकता है मेडता के चारभुजा मदिर मे ऐसे प्रार्थना के पद उसके सुने सुनाए हो या रणछोड के मंदिर मे हताश मीरा के वे उच्छवास भी हो। यथा—

'मन रे परसि हरि के चरण जो कि 'सुभग शीतल कँवल कोमल त्रिविध ज्वाला हरण' है। 33(95 1) ऐसे विष्णु के स्मरण के साथ नृसिंह अवतार, ध्रुव वाले विष्णु वामन अवतार, राम अवतार और कृष्ण अवतार का स्मरण है। 33(95 1) ऐसे पदो में मीरा के साथ 'दासी' का सम्पुट लगा हुआ है। कही कुछ भी नहीं है—'यह छवि देख मगन भइ मीरा मोहन गिरधारी की।' कही वे 'सतन सुखदाई प्रभु भक्त वत्सल' हैं 33(96 3) मगर, प्रमुख स्वर यहाँ भी 'निराश्रित के आश्रय', 'स्वामी' और 'प्रियतम' का है—

हरि मोरे जीवन प्रान अधार।
और आसिरो नाँहि तुम बिन, तीनूं लोक मँझार।
आप बिना मोहि कुछ न सुहावै, निरखो सब ससार।
मीरा कहै मैं दास रावरो, दीज्यो मती बिसार। 33(96 4)

—जहाँ 'दरशन की भूखी' या प्यासी' वाली भावना है वहाँ आलम्बन 'गिरधर' का है—

'मेरो मन बासिगो गिरधरन लाल सों' और उसके साथ लीला स्मरण और तब 'मीरा के प्रभु गिरधर हो, सुनिए चित लाय।

तुम्हारे दरस की भूखी हो मोहि कछु न सुहाय। वही (97-6)

—यह 'प्रभु' भावना और 'दरशन की भूख' उत्तरोत्तर विकसित होकर 'दाम्पत्य भावना मे खिल उठती है जो मीरा की विशिष्टता है।

ऐसा कहा जा सकता है कि 'प्रभु' भावना वाले पद या तो आरंभिक अवस्था के हैं और कुछ अंतिम अवस्था वाले भी हो सकते हैं—खास करके वे जिनमे निराशा, हताश और गिडगिडाहट झलकती है। 'दाम्पत्य भावना' वाले पदों का समय हम 'किशोरावस्था से लेकर भोजराज की मृत्यु-पूर्व' तक का मान सकते हैं—यानी लगभग 11 वर्ष की अवधि मे (विक्रमी 1579 तक) और ये पद ही मीरा की मुख्य साधना के स्वर माने जाते हैं जिनमे वैष्णव भजन, कीतन, गुणगान आदि से

भिन्न अनुभूतियों की तीव्रता, एकनिष्ठता, ध्यान मग्नता और अद्वितीयता कही जाती है—उनकी शुरूआत कुछ ऐसे होती है—

> निपट बकट छवि अटके, मेरे नैन।
> देखत रूप मदन मोहन को, पियत पियूख न मटके।
> बारिज भवाँ अलक टेढ़ी मनो, अति सुगंध रस अटके।
> टेढ़ी कटि, टेढ़ो करि मुरली, टेढ़ो पाग लट लटके।
> मीरा प्रभु के रूप लुभानी, गिरधर नागर नट के। 33(97 7)

और अपने कृष्ण के रूप पर लुभाने की वह सीमा इस कदर बढ़ती चली गई कि 'या मोहन के मैं रूप लुभानी' से होकर 'तन मन धन गिरधर पर वारूँ, कँवल लपटानी' (वही 8) से भी उसकी बाढ़ रुकी नहीं बल्कि उत्तरोत्तर बढ़ती गयी—

> "जब से मोहि नंदनंदन दृष्टि पड्यो माई।
> तब से परलोक लोक, कछू न सुहाई।" (वही 9)

और

> "गिरधर के अंग-अंग मीरा बलि जाई।" (वही)

—यह बलिहारी ऐसी सीमा तक होती रही कि 'रोम रोम आँखें बनकर उसमे अटक गए और वापस नहीं आए सो नहीं ही आए। (वही 10) 'लोक कुटुम्ब बरजि बरजहीं बतिया कहत बनाइ' मगर मीरा के वे नैन' 'चंचल निपट अटक नहिं मानत, परहथ गये बिकाई। (वही) ऐसी सीमा आन पर मीरा राजकन्या नहीं-नहीं लड़की नहीं रही, राजवधू नहीं रही सिर्फ कृष्णमयी हो गई। ऐसा भावनात्मक विकास 'भली कहो कोई बुरी मैं सब लई सीस चढ़ाई' में झलकता है।

ऐसी 'कृष्णमय' अवस्था में मीरा की जो भक्ति साधना पनपी वही उसका अमूल्य धन है। फिर तो—

> आली री मेरे नैणा बान पड़ी।
> चित चढ़ी वह माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी। (वही 11)

उसके बिना—

> कसे प्राण पियाबिन राखं, जीवन मूर अड़ी।
> मीरा गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहैं बिगड़ी। (वही)

ऐसी भावना प्रवणता में—जहाँ मीरा को लोकलाज, कुल मर्यादा आदि की सुध भी नहीं थी, तो उसे आचार्यों और शास्त्रियों के सम्प्रदायवाद का ध्यान कैसे रह सकता था ? वह तो सिर्फ प्रवहमान भावना बन गई थी जिसमें व्यथा, वेदना, बाधाएँ, सांसारिक रोड़े सब आतुरता, व्याकुलता और अभिलाषा में आप्लावित हो गए, बहते चले गए। तभी मीरा की भक्ति साधना निर्गुनिया—सगुनिया शलियों

की परवाह नहीं करती। लोक मे प्रचलित और साधु-सतो से गृहीत जो कुछ भी मीरा सँजो पाई वही उसकी अभिव्यक्ति का साधन बन गया। तभी वह यह भी कहती है कि—

'असा पिया जाण न दीजै हो।
तन मन धन करि वारणै, हिरदे धरि लीजै हो।
आव सखी मिलि देखिए, नैणां रस पीजै हो।
जिह-जिह विधि रीझै हरी, सोई विधि कीजे हो।
सु'दर स्याम सुहावणा, मुख देख्या जीजे हो। 33(99-13)

और "सुन्न महल मे समाधि लगाकर अपने प्रिय का अमृत अकेली भी पीना चाहती है"—

नैनन बनज बसाऊ री, जो मैं सहिब पाऊँ री।
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न लाऊँ री।
त्रिकुटी महल में बना है झरोखा तहाँ से झाकी लगाऊँ री।
सुन्न महल मे सूरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाऊँ री। (वही 12)

एक तरफ वह चैतन्य मतियो की तरह अपने गिरधर के आगे नाचती भी है, मगर वेशभूषा निगुनियो को लेकर—

गिरधर आगे नाचूगी।
नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊ, प्रेमीजन को जाचूगी।
प्रेम प्रीत की बाँधि घुघरू, सुरत की कछनी काछूगी।
लोक लाज की कुल मरयादा, यामे एक न राखूगी।
पिव के पलग जायो झूगी, मीरा हरि सग राचूगी।

(iii) सगुण निर्गुण में अभेद मीरा के पास सगुण निर्गुण का भेद नहीं है। वहाँ सिर्फ मन का उमडता दरियाव है, जिसकी लपेट मे घर, ससार, मरजाद सब डूबकर रह गए हैं और ऐसी अवस्था आ गई है कि—

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई। 33(100-5)

—यही अवस्था

"ऐसे वर को क्यू वरूँ, जो परणे अर मर जाय।" के विरोध मे
"वर परणीजै सावरो म्हारो चुडलो अमर हो जाय।"

—से व्यक्त होती है।

और उस 'पति भाव की बेल को' मीरा ने 'आंसुओं से सींच-सींचकर बड़ा किया' था क्योंकि उस 'भाव को परिपक्व करने के लिए' उसे बहुत संघर्ष झेलना पड़ा था—

"लोग कुटुम्बी गरजि बरजहिं, मानत परहुथ गई विकाय।"
9(405 2)

"सखियन मिलि कैं सीख दई, मन एक न मानो हो।"
(वही 414-35)

"कुल कुटुम्बी आन बैठे, मानहुँ मधुमाखी।
दासी मीरा लाल गिरधर, मिटी जग हासी। 33(103-22)

"लागै पीहर सासरोजी, माइ तणो मो साल।
सब ही लाजै मेड़तियाजी, थासू बुरो कहे संसार। 33(105-29)

मगर, अन्ततः मीरा का अटल निश्चय रहा कि—

तेरो कोइ नहिं रोकणहार, मगन होइ मीरा चली।
लाज शरम कुल की मरजादा, सिर सें दूरि करी। वही (108-33)

और

राणाजी म्हे तो गोबिंद का गुण गास्या।
चरणाम्रित का नेम हमारो, नित उठ दरसण जास्यां।
हरि मंदिर में निरत करस्या, घुंघरिया धमकास्यां।
राम नाम का झाझ चलास्या, भव सागर तट जास्यां।
(वही 109-34)

सीसोद्या रूठो तो म्हारो काई करसी।
म्हैं तो गोबिंद का गुण गास्यां हो माइ। (वही 110 38)

—ऐसी टेक के परिणामस्वरूप मीरा ने अपमान, प्रताड़ना और प्राणघात भी सहे—

"राणाजी थें जहर दियो मैं जाणी।"

जैसे—कंचन दहत अगिन में निकसत बारा बाणी। मगर,

—वैसे ही मीरा खरी उतरी और साधना के संघर्ष को एक निश्चित दिशा मिली—

लोक लाज कुल काण जगत की, दइ बहाय जस पाणी।
अपणे घर का परदा कर ले, मैं अबला बौराणी। 33(111-41)

फिर तो उस 'बौराई' ने भी खुला विद्रोह कर दिया—

बरजी मैं काहू की नाहीं रहौं। और
तन मन धन मेरो सबही जावो, भल मेरो सीस लहौ। 9(404-1)

मगर, उस बौराएपन से जीवन का सघर्ष, मन की व्यथा, प्रतिष्ठा की आतुरता, आत्मा की व्याकुलता न मिटी, न कम हुई। विरह निवेदन के, मर्मभेदी व्यथा के, पद सभवत उसी अवधि के हैं जब मीरा ने चित्तौड की कुल मर्यादा सिर से उतार फैंकी और द्वारिकावास कर लिया। बीच मे मेडता का पतन और वीरमदे के दर बदर होने की परिस्थितियो ने एक बार और उसकी साधना को जबदस्त धक्का पहुँचाया होगा। और उसकी दीनता भरी गिडगिडाहट फूट पडी होगी—

हरि बिण कूण गति मेरी।
तुम मेरे प्रतिपाल कहिए, मैं रावरी चेरी।
आदि अत निज नाम तेरो, हिया मे फेरी।
बेरि बेरि पुकारि कहूँ, प्रभु आरती है तेरी।
यो ससार विकार सागर, बीच में घेरी।
नाव फूटी प्रभु पाल बांधो, बूडत है बेरी। 9(281 9)

या कि

अब मैं सरण तिहारी जी, मोहिं राखो कृपा निधान।
अजामील अपराधी तारे, तारे नीच सदान।
जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढी बिमान।
और अधम तारे बहुतेरे, माखन सत सुजान।
कुबजा नीच भीलनी तारी, जाने सकल जहान।
कहूँ लगि कहौं गिणत नहिं आवै, थकि रहे वेद पुरान।
मीरा कहे म्हे सरण रावरी, सुनियो दोनू कान। 9(306-78)

और भी

हम सुणी छै हरि अधम उधारण।
अधम उधारण सब जग तारण।
गज की अरजि गरजि उठि घ्यायो, सकट पर्यो तब निवारण।
द्रोपदी सुता को चीर बढायो, दुसासन को मान पद मारण।
प्रह्लाद की प्रतिज्ञा राखी, हरनाकुस नख द्द्र विदारण।
रिख पत्नी पर किरपा कीन्ही, विप्र सुदामा की विपति विदारण।
मीरा के प्रभु मो बदी पर, एती अबेर भई किण कारण।
9(307-82)

अन्तत द्वारिका वास ही मीरा की साधना का अन्त रहा—

राम श्री रण छोड दीज्यो द्वारिका को बास।
सख चक्र गदा पद्म सें मिटे जग के त्रास।

सकल तीरथ गोमती में करत रहत निवास।
संख झालरि झांझि बाजें, सदा सुख की रास।
तजियो देस, वेस, पति ग्रह तज्यो सम्पत्ति राजि।
दासी मीरा सरन आई, तुम्हें अब सब लाजि। 9(479 3)

और नागरीदास के प्रमाण पर जब रणछोड़जी का मंदिर छोड़कर वापस मेवाड़ या मेड़ता आने की परिस्थिति बनी तब उसकी अन्तिम अरदास ऐसी रही कि—

हरि, काटि हो जान की पीर।
द्रोपदी की लाज राखी, तुम बढ़ायो चीर।
भक्त कारण रूप नरहरि, धर्‍या आप शरीर।
हरिण कस्यप मारि लीनें, धर्‍यो नाहिन धीर।
बूड़ते गज ग्राह तार्‍यो, कियो बाहर नीर।
दास मीरा लाल गिरधर, दुःख जहाँ तहाँ पीर। 9(479 4)

उसके साथ ही जिस अंतिम पद के साथ शरीरपात हुआ—

सजन, सुधि ज्यों जाने त्यों लीजे।
तुम बिन मेरे और न कोई, कृपा रावरी कीजें।
द्योस न भूख रैन नहिं निदरा, यह तन पल पल छीजै,
मीरा प्रभु गिरधर नागर, अब, मिलि बिछुरन नहिं कीज।
9(480 4)

और वस्तुत "मिला का बिछुरन नहीं हुआ" और एक भावना जीवन्त होकर लोकव्यापी हो गई, युग जीवी हो गई।

इस तरह मीरा की आत्मसाधना को परमात्मा से तादात्म्य पाने में पूरा जीवन काल लगा। मोटे रूप से कुल 48-49 वर्ष की आयु में से 41 बरस उसने साधना में बिताए— यही इस बात का अनुमान करने को काफी है कि वह हाड़ माँस की संसारी उपज नहीं थी। कुछ विशिष्ट ही थी कि जिसका कलेवर भावना-ही भावना का बना था। वह केवल अन्तर्मनवासिनी थी, इसीलिए बाहरी दुनिया की कोई बात उसे छू नहीं पाती थी। जान-बूझकर उसने कोई विद्रोह नहीं किया बल्कि जो कुछ घटा और जो कुछ हुआ वह केवल बाहरी दुनिया में ही घटा मीरा तो केवल निमित्त रही, इसलिए कि वह कायिक रूप से उन घटनाओं के प्रति संवेदनशील थी ही नहीं। पीहर में माई बाप बरजते रहे कि सहेलियाँ सिखाती रहीं कि ससुराल में मर्यादाजीवी लोग सीख देते रहे, पर सीख लेने वाला काया में स्थित था ही नहीं तो कौन सुनता और कौन अपने को सुधारता!

वह भावनाजीवी मीरा उत्तरोत्तर अति भावमयी होती गई जैसे-जैसे परि-

स्थितियाँ उसे संघर्ष और व्यथा देती गईं कि अ तत रण छोड की शरण मे वह जगत् व्यापी हो गई।

(3) ईश्वरीय अनुभूति के तत्व—"शृगार की मधुर कामना का आलम्बन जब लौकिक पुरुष न होकर अलौकिक पुरुष सत्ता का अपार्थिव देवता होता है तब वह दिव्य शृ गार भावना कहलाती है।" 23(113) मीरा की मधुरा भक्ति कही रिमझिम प्रेम वृष्टि, कही आवेगमयी लहर और कही खिन्नता और विषाद भरी उतराई के साथ उत्कट हठ और उमडता ज्वार लेकर इस कदर आवेशन करती है कि वहा भावना-ही भावना प्रखर रहती है और शब्द सौंदर्य या उक्ति चमत्कार जैसी बात ध्यान मे ही नहीं आती। यानी कि मीरा की वाणी कही दूर अन्त स्थल की गहराई से अपनी वेदना, व्यथा, खिन्नता, आशा, प्रतीक्षा, खीझ, रोष, हताशा आदि के साथ सहज स्वाभाविक उद्रेक पाती है और जैसे वह उसके अन्तस्थल से फूटती है, वैसे ही श्रोता या पाठक के मम मे उतर जाती है।

मीरा की दिव्य अनुभूति के कुछ आयाम स्पष्टतया उनके पदो मे परिलक्षित हो जाते हैं और वे उनकी साधना के स्वायत्त विकास के सोपानो का परिचय देत हैं। सामान्य लोकजीवन मे जैसे हम अपने किसी स्नेही-जन का परिचय पाते हैं, गुण बोध करते हैं, नाम स्मरण करते हैं और घनिष्ठ होते-होते एकाकार हो जाते हैं। मीरा की प्रभु भक्ति में भी ऐसे ही लोकतात्त्विक विकास के आयाम हैं जिनमे प्रमुख हैं—

(i) दरसन परसन—परिचय, गुणगान, नाम स्मरण, आशा, आकाक्षा आदि के साथ हर्ष आदि।

(ii) प्रतीक्षा विरह—साधना, गुण स्मरण, व्यथा, आतुरता आदि।

(iii) टेक और हठ—अटल निष्ठा, एकागी प्रेम, खोज अनुसरण, पीडा आदि।

(iv) विनय और दासता—प्रार्थना, खिन्नता, निराश्रयता कृपाकाक्षा आदि।

(v) पुनर्जन्म का कौल—अटूट अनत नाता, अमर सम्बन्ध आदि।

(i) दरसन परसन—मीरा की अनुभूतियाँ मानवीय सवेदनाओ के आस्वादन वाले धरातल की हैं द्वैत दर्शी या तटस्थ अवलोकनकर्ता की वे नहीं लगती। उनके लिए जा इष्ट है—चाहे वह अविनासी, अलख, प्रभु, गिरधर, जोगी जो कुछ भी है, वह परोक्ष बनकर 'वर्णित नहीं हुआ है, वह 'अनुभूत' होकर 'प्रतिम्बित' हुआ है। तभी प्रिय के दर्शन, परिचय रूप निरूपण के उनके पदो मे भी पूरी भाव प्रबलता मिलती है, यथा—

सखि मेरो कानूडो कलेजा री कोर।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुडल की झकझोर।

ब्रिंदावन की कुंज गलिन मे, नाचत नन्द किसोर।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल चितचोर।

ऐसे पदो मे आरभिक परिचय की अवस्था खोजी जा सकती है कि यहाँ 'चितचोर' 'चरण कँवल' हैं फिर भी 'वह कानूडों' 'कलेजे की कोर' बना हुआ है। परिचय से आगे 'मोहित होने' 'लुभाए जाने' की अवस्था भी उतनी ही भाव प्रवण मिलती है—

निपट बँकट छवि अटके, मेरे नैन।
देखत रूप मदन मोहन को पियत पियूख न मटके।
बारिज भवाँ अलक टेढी मनो, अति सुगंध रस अटके।
टेढी कटि, टेढी करि मुरली, टेढी पाग लर लटके।
मीरा प्रभु के रूप लुभानी, गिरधर नागर नट के। 33(97 6) -

ऐसे जिस लुभावने रूप से परिचय प्रगाढ होता चला गया है, उसमे 'कमल-दल लोचन हैं, 'बाकी चितवन' है 'मद मुसकानि' है, 'मीठी मुरली की बानी है'' और मीरा उस रूप के ''चरण कमलो से लिपटानी' है 33(98 8)।

परिचय के साथ प्रति परिचय की उत्कठा भी है—

पिया तेरे नाम लुभाणी हो। 9(420 56)

और इसके साथ 'पत्थर तैराने', 'गणिका को तारने', 'गज की पशु योनि छुडवाने' की बात कहकर 'नाम महातम गुरु दियो, परतीत पिछाणी हो' से 'अमूर्त प्रियतम' से कामना की गई है कि 'मीरा दासी रावकी, अपणी कर जाणो हो।' (वही)

परिचय प्रति परिचय के बीच कई तरह की आशाओ आकाक्षाओ, शकाओं की सभावना रहती है। मीरा के पदो में वे सब यत्र-तत्र बिखरी भावनाएँ व्यक्त हुई मिलती हैं—जैसे साधना का नतीजा न मिलने पर व्यग्रता—

जावा दे, जावा दे, जोगी किणका मीत।
सदा उदासी रहै मोरी सजनी, निपट अटपटी रीत।
बोलत बचन मधुर से मानूँ जोरत नाहीं प्रीत।
मैं जाणूँ या पार निभैगी, छाडि चले अध बीच।
मीरा के प्रभु स्याम मनोहर, प्रेम पियारा मीत। वही (411 61)

कुछ ध्यानावस्था के बाद जब साधना में प्रत्यान्तर आता है, तब की दशा है यह, जो व्यग्रता उत्पन्न करती है। अवस्था निरूपण में भावना प्रवणता ही प्रधान है और अभिव्यक्ति माध्यम मे नाथपथी 'जोगी' और 'स्याम मनोहर' सगुण दोनों ही वाहक बन रहे हैं। मीरा की यही विशिष्टता थी कि वह भावना का आस्वा-

दन कर रही होती थी, अन्य बातो की उसे परवाह नही होती थी, क्योंकि जैसा कहा जा चुका है, वह कवयित्री नही थी, आचार्य नही थी, एक प्रेमल भावना थी।

परिचय प्रति परिचय के बीच नाना रगी भावनाओ के उतार-चढाव के साथ मीरा की अन्त साधना प्रगाढ होती चली गई है। उसे प्रियतम की हर चीज लुभावनी और आकर्षक लगती है। उस आकर्षण का उत्साह और उससे सलग्न रहने का भाव भी प्रखर होता जाता है, यथा—

नैणा लोभी रे बहुरि सके नहि आइ। 33(98-10)

"रोम रोम नख सिख ललक ललक कर ललचाते रहते हैं" और इस दशा तक पहुँचा देते हैं कि "प्रभु गिरधर के बिन, पल भर रह्यो न जाए" प्रेम को निरतर देखते रहने की उत्कठा और अभिलाषा इस सीमा तक बढती है कि—

मीरा गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहैं बिगडी। वही (11)

दूसरे शब्दो में दरसन परसन अभिलाषा के लिए मीरा 'एकटक ध्यान लगा कर बैठी' रहती है।

नैनन बनज बसाऊँ री, जो मैं साहब पाऊँ। वही (12)

किस सम्प्रदाय के किस अभिप्राय के जरिये भावना उजागर होती है, यह मुख्य बात नहीं है, मुख्य बात है कि प्रियतम के दरस-परस की ललक प्रकाशित होती है या नहीं। मीरा ध्यानावस्था मे 'पलक भी नही झपकती' कि नैनो मे बसे प्रेम की छवि मिट न जाए। और,

त्रिकुटी महल मे बना है झरोखा तहाँ से झाँकी लगाऊँ री।
सुन्न महल मे सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाऊँ री
33(99 12)

अपने प्रिय को हर हालत मे रिझाए रखने और पास बनाए रखने की ललक कितनी सहज अनुभूति के साथ उभरी है कि—

असा पिया जाण न दीजै हो।
तन मन धन करि वारणै, हिरदे धरि लीजै हो। वही (13)

और

जिहि जिहि विधि रीझै हरी सोई विधि कीजै हो।
मीरा के प्रभु रामजी, बड भागण रीझै हो। वही

और भक्ति की यह भावना इस सीमा तक गहरा जाती है कि 'मगन भई

मीरा' दुनियावी चेतना से एकदम परे हो जाती है—

मैं तो सावरे के रग राची ।
साजि सिंगार बाँधि पग घुघरू, लोक लाज तजि नाची ।

वही (100-16)

और ऐसी अवस्था आने पर ससार और सासारिक वर्जनाओ के साथ सघर्ष की शुरुआत हो जाती है। ससारी सघर्ष और आतरिक ऊहापोह के बीच मीरा की अन्तर्मुखता, प्रेम की विकलता, प्रिय दरसन की आकुलता, प्रतीक्षा भी बढ़ती चली जाती है—

(ii) प्रतीक्षा और विरह

मैं तो म्हारा रमैया नै देखबो करूं री।
तेरे ही उमरण, तेरो ही सुमरण, तेरो ही ध्यान धरूं री ।
जहाँ जहाँ पाव धरणी पर, तहाँ तहाँ निरत करूं री ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरणाँ लिपट परूं री ।

वही (101)

स्मरण, ध्यान और उसके साथ चैतन्य मतीय मरण प्रतीक्षातुरता और मगनता की अनोखी भाव व्यजना कर रहे हैं। वैसे ही 'गिरधर के आगे नाचना', और 'उसको रिझाने' की तैयारी जिसमे 'प्रेम प्रीत के घुंघरूं' और 'सुरत की कहानी' वही (100) मिलकर एकाकार हो गए हैं, यह बताते है कि मीरा के परिवेश मे वैष्णव या सत-नाथ मतो की धारणाए समन्वित होकर एक लोकमत मे गल ढल चुकी थी।

अपने प्रिय के लिए समपण की निष्ठा मे मीरा तत्कालीन नारी मर्यादा का इस तरह से निरूपण करती है—

मैं तो गिरधर के घर जाऊं ।
गिरधर म्हारो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊं ।
रैण पड़े तब ही उठि जाऊं । भोरि भये उठि आऊं ।
रैण दिना वाके सग खेलूं ज्यू त्यू वाहि रिझाऊं ।
जो पहिरावै सो ही पहरूं जो दे सो ही खाऊं ।
मेरी उनकी प्रीत पुरानी, उण बिन पल न रहाऊं ।
जहाँ बिठावे तित ही बैठू बेचे तो बिक जाऊं ।

ऐसे सर्वांग समर्पण के साथ ही मधुरा भावना पक्की हो जाती है। बल्कि 'चाकर रहकर केवल दरसण पान' तक की सीमा तक भी वह समपण चला गया है 33 (147 154)। प्रिय के पास चाकर के रूप में रहकर, केवल नाम की सीमा तक अपने को सीमित रखकर गुणगान

के साथ उनको रिझाए रखने से ही वह सतोष नही पा गयी अपितु 'कुसुभी सारी' पहनकर 'दरसण पाने की अभिलाषा' की सीमा तक उसका समपण भाव जाता है। उसमे भी उसकी विवशता ही है कि—

राणा जी म्हारी प्रीत पुरबली, मैं कांई करूँ।
राम नाम बिन घड़ी न सुहावे, राम मिले म्हारा हियराय ठराय।
33(111-42)

यह उसकी विवशता ही है कि ससारी बातो का प्रवेश उसके मन मे होता ही नही। वहां तो केवल प्रिय का स्मरण ही छाया हुआ रहता है—

मैं गिरधर रग राती सैंया।
पचरंग चोला पहर सखी मैं, झिरमिट खेलन जाती।
ओहि झिरमिट मे मिल्यो सावरो, खोल मिली तन गति।
वही (103-22)

उसकी निष्ठा कितनी सच्ची है कि—

मैं अपणे सैंया सग साची।
अब काहे की लाज सजनी परगट ह्वै नाची।
कुल कुटुम्बी आन बैठे मनहुँ मधुमाखी। वही (103-22)

ऐसी एकात निष्ठा के सामने वह अनुभव करती है कि "मीरा लागो रग हरि, औरन रग अटक परी।" और वे 'औरन रग' ससार, वैभव, पत्नी धम, पुत्री धम, जगत व्यवहार सब मे जो 'अटक मे पड गए।' अब तो 'कोई कुछ कहै, मन लागा,' सोने मे सुहागा जैसे मन-भावना से एकाकार हो ही गया, सतगुरु शब्द सुनकर सोया मनवा जाग गया, तागे की तरह नाते रिश्ते, कुटुम, कबीले के बधन टूट गए और तुलसी की तरह सकल्प हो गया कि—

अब लौं नसानी अब ना नसैं हौं।
राम कृपा भवनिसा सिरानी, जागे फिर न डसैं हौं।

—मीरा जाग गई तो जाग ही गई। कृष्ण को, परमात्मा को पति के रूप मे पाकर कभी मिलन की आशा, कभी आगमन की प्रतीक्षा, कभी आकाक्षा के झकोरो मे लहराते रहने म ही उसकी इयत्ता बध जाती है—कभी तो—

'दरस बिन दूखण लागे नैण', वही (132 103) कभी "म्हारा जनम-जनम रा साथी, थांने नहिं बिसरू दिन-राती" वही (106), कभी "राग मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोवू बाटडियां' वही (108) तो कभी 'म्हारे घर होता जाज्यो महाराज" के साथ 'अब के जिन टाला देजा थो, सिर पर राखू विराज" वही (109) और फिर भी साक्षात्कार न होने पर, 'ये, तो पलक उघाडो दीना

नाथ, हाजिर नाजिर कब की खड़ी वही (137-119) वाले मुकाम मीरा अनुभव करती है और कभी पल-दो-पल का साक्षात्कार होने पर उमगो और आशाओ से हिलोर लेने लगती है—"सुनी हो मैं हरि आवन की" बात सुनकर 'महल चढना, प्रतीक्षा करना' वही (144-141) और अनुभव करना कि 'जैसे धरती मेघ का स्वागत करने को उद्यत हो—नये नये रूप धारण करके, विविध प्रकार की किलकारियो के साथ वैसे ही मीरा का रोम रोम आगत की प्रतीक्षा मे उत्सुक है। मिलन की यह घडी उमगो और सुखो की घडी बन गई है कि—

> "आज आनद उमागें भयो है, जीव लहै सुखधाम।
> पाँच सखी मिलि पीव परसि कै, आनद ठामूठाम।
> बिसिर गई दुख निरखि पिया को सुफल मनोरथ काम।
>
> वही (142)

—वैसी अनुभूति के क्षण बहुत कम और बडी मुश्किल से आते हैं कि—बदरिया जल भर लाती है, छोटी छोटी बूदो से मन काया भीग जाती है। पवन, कोयल सब आनद मगल गाने लगते हैं और—सेज सवारी पिय घर आए, हिल मिल मगल गायो वही (145-147)। और 'रग रगीली होली भी मच जाती है।' वही (146) प्रियतम के हाथो मीरा रग मे भर दी जाती है। चोवा, चदन अरगजा, केसर की गागरें की गागरें उस पर उलट जाती हैं।(वही) रतन न्यौछावर किए जाते हैं बधावणा होता है, आरती होती है—सब कुछ जो ऐसे मगल अवसर पर राजघरानो म परम्परित रूप से होता रहा है। मगर, सूरदास के अनुसार 'ऐसा पल का जीना ही काफी था'—धन्य सूर एको पल या सुख, का सत कल्प जिये।

मगर, मीरा को उसके बाद भी जीना पडा। बाहरी सघर्ष भी सहना पडा और भीतरी द्वन्द्व भी सहना पडा। पल भर का 'जोगिया' का दरसण सहेज कर नहीं रखा जा सका—

> मैं जाण्यो नहिं प्रभु को मिलण कैसे होइ री।
> आए मेरे सजना फिरि गए अगना, मैं अभागण रहि सोइ री।
> फाड़ूंगी चीर करूँगी गल कथा, रहूँगी बैरागण होइ री।
> चुरियाँ फोरूँ माँग बिखेरूँ, कजरा मैं डारूंगी धोइ री।
>
> वही (114 48)

एक तरफ ऐसी खिन्नता, ऐसी व्यथा और दूसरी तरफ माइतो की तरफ से यजना—

> माई कहे सुन धीयड़ी, काहे गुण फूली।
> सोक सोवे सुख नींदड़ी, थूं क्यूं रैणज भूली। वही (106-28)

दूसरी तरफ से सांसारियो के वजन, तजन और सीख सदेस की—

बाल सनेही गोबिंदो, या तो साध सता को काम।
थें बेटी राठोड की, था ने राज दिया भगवान। वही (29)

और,

या ने बरज बरज मैं हारी, भाभी मानो बात हमारी।
राणे कोप कियो था ऊपर, साधां मे मत जा री। वही (30)

यहाँ तक कि "राणा जी थे क्यानें राखो म्हा सू बैर" की और "राणा जी थें जहर दियो मैं जाणी" वही (37-41) के बीच मीरा की शेष सारी अनुभूतियाँ या तो वियोग जनित पीड़ा की है या फिर अपनी टेक, अपना हठीलापन बनाए रखने की हैं या अत मे टूट कर बिखरने वाली हताशा और दीनता की हैं।

इन मिलीजुली खीझ, पीड़ा, अकेलेपन की टीस, दरसन रहित एकागी निष्ठा की खिन्नता, आकुलता, उन्माद आदि की भाव सम्पदा ही मीरा को मीरा बनाने वाली अलोखी सम्पदा है—चाहे उसने 'गहना गाठी त्यागा, हाथ का चुड़ला त्यागा, काजल टीकी त्यागी" वही (109 34) 'माला-दोवडी धारण कर ली' वही (140 23) 'भाव भगति के भूषण' और 'प्रेम की चूनड' धारण की वही (107-30) 'भगवी चादर पहन ली' वही (110-37) 'भूइ सोना और भूखे मरना शुरू किया' तथापि—

'जोगिया जू जोवत बहु दिन बीत्या, अज हू आयो नाहिं। वही (115-49)
उस जोगी के लिए ललक इतनी विकट है कि—

"अगर चन्नण की चिता बनाऊँ, अपने हाथ जला जा।
जल बल भई भसम की ढेरी, आपणे अग लगाजा। वही (115-50)

यहाँ तक मीरा की तैयारी है। मगर, न जोगी आया, न गिरधर के दरसन हुए और मीरा इस दुविधा मे दुख भोगती रही कि—

"रावली होय के किण रे जाऊँ, तुम ही हिवडा रो साज।
मीरा के प्रभु और न कोई, राखो अबके लाज।"
वही (115-51)

दुविधा, दुख, चिन्ता, निराश्रयता, आकुलता आदि के कई स्तर मीरा के पदों मे साधना के चरणों के रूप मे मिल जाते हैं—व्याकुल विरहिणी के 'प्राण तडपते रहते हैं' वही 115 (49) 'भोजनिया नहिं भावें', नींदडली नहिं आवें', 'तडफ तडफ जिय जासी' जैसी व्यथाएँ तो आम हैं, मगर मीरा उनसे अगे अपने 'जोगी के कारण', 'जोगण होने' और वैसा भी न हो सकने पर 'कासी करवत लेने, (वही) (115 52) की तैयारी मे है। उपालम्भ उलाहनों की बात तो ठीक है, मगर

'कासी करवत लेने पर' भी जब दरसन-परसन नही होता तो हताश भावना को शरणागत ही होना पडता है। सब उपाय आजमा लेने के बाद भी अनुभूति सार्थक नही होती—

माई म्हारी हरि हू न बूझी बात।
पिंड मे सू प्राण पति, निकसि यू नहिं जात।
पट नहिं खोल्या मुख न बोल्या, साँझ भई परभात
अबोलणा जुग बीतण लाग्यो, काहे की कुसलात। वही (120 68)
अत
लेइ कटारी कठ सर्कू, मरूँगी विष खाइ।

मीरा दासी राम रती, ललच रही ललचाइ। (वही) या फिर अपने जोगी की खोज मे—

या तन ऊपर भसम रमाऊँ, खोर करूँ सिर केस।
भगवा भेस धरू तुम कारण, ढूँढ़त च्यारूँ देस।
मीरा के प्रभु राम मिलण कूँ जीवनि जनम अनेस। वही (121-70)

क्योंकि—"नातो नाम को मोसू तनक न तोडयो जाय।" वही (122 74) उसे पाने के लिए 'छाणे लगण मैं किया रे' (वही) जैसे कि लौकिक जीवन मे स्त्रियाँ करती आई हैं और करती रही हैं। उसके कारण—

मास गले गल छीजिया रे, करक रह्या गल आई।
आँगालियाँ री मूदडो, म्हारे आवण लागी बाहि।। (वही)

—ऐसी काव्य रूढि राजस्थानी प्रेमकाव्यो की—लोक काव्य की बहुत पुरानी रूढि रही है। मीरा के लोकानुसारी मन मे वह सहज होकर फूट पडी है। इतना ही नही, उसे पपैया की बानी भी असहनीय लगती है—

रहो रहो पापी पपीहा रे पिव को नाम न लेइ।
जो कोई बिरहणि साँभले पिव कारण जिव देइ। (वही)

अपने प्रिय को सदेसा भेजने का तरीका भी अनोखा है—

काढि कलेजो मैं धरू रे, कौआ तू ले जाइ।
ज्याँ देसाँ म्हारो पिव बसै, वा देखै तू खाइ। (वही)

और मीरा का यह 'नाता' सिफ नाम का था और 'किसी स्तर का' नही था। मगर न जोत जगी, न दरसन परसन हुआ न जोगी आया।

(iii) विनय और दासता तब तक सांसारिक घटनाओं ने करवट बदल ली। चित्तौड छूटा, मेडता टूटा और सब ओर से निराश्रित, हताश, भग्नाश मीरा को भावना भक्ति मे दीनता भरी करुणा घोलनी पडी—

तुम सुणो दयाल म्हारी अरजी।
भव सागर में बही जात हूँ, काढ़ो तो थाँरी मरजी।
या ससार सगो नहिं कोई, साँचा सगा रघवर जी।
मात पिता अर कुटुम कबीलो, सब मतलब के गरजी।
मीरा की प्रभु अरज सुणलो, चरण लगावो थाँरी मरजी।

—यह 'थाँरी मरजी' वाली बात मीरा की अतिम पराजय और हताशा वाली स्थिति बताती है।

"मैं तो तेरी सरण पड़ी रे रामा, ज्यूं जाणे त्यूं तार।
अड़सठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आया, मन नहिं मानी हार।
या जग मे कोई नहिं अपणा, सुणियो श्रवण मुरार।
मीरा दासी राम भरोसे, गम का फदा निवार।

वही (141-131)

—यहाँ वह स्थिति आ गई है कि मीरा बाहरी भीतरी सघर्षों से थक चुकी है या कि टूट चुकी है—

"अब मैं सरण तिहारी जी, मोहि राखो कृपा निधान।
अजामील अपराधी तारे, तारे नीच सदान।
जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढ़ी विमान।
और अधम तारे बहुतेरे, भाखत संत सुजान।
मीरा कहे मैं सरण रावरी, सुनियो दोनू कांन।

वही (141-132)

स्पष्ट है कि शरणागत होने की यह स्थिति घोर सकट की है जैसी कि गजराज की थी, जिसकी तुलना में अजामील और गणिका का तारण तो आकस्मिक ही था। यहाँ हम डूबते गजराज' के साथ 'डूबती मीरा' की समानता कर सकते हैं। क्योंकि मीरा ने इस स्थिति तक आते-आते—

"या भव मे मैं बहु दुख पायो, मसा सोग निवार। वही (133)
और
सगो सनेही मेरो न कोई, बरी सकल जहान। (वही)

—निराश्रय स्थिति की अपनी तुलना मीरा ने गजराज से', 'द्रौपदी से', 'प्रह्लाद से' और 'ऋषि पत्नी अहिल्या से की है वही (142-135)। निश्चित रूप से ऐसे दीनता मिश्रित पद मीरा के निराश्रय-काल के हैं।

क्योंकि विनय और दास्य भावना वाले ऐसे ही अन्य पदों में अंतर मिलता है। साधारण स्तुति, गुणगान, विनय, असारता, उपदेश के अन्य पदों मे वह मर्म भरी

चेदना नहीं है जो इसम है। उनमे—"अविनासी के चरण कवलो की वदना" है, वही (160-194) मानुस जनम की दुष्प्राप्यता' के साथ 'दुनिया मे ज्ञान चौसर की बाजी' का उल्लेख है, चाहे तो 'जीतो' चाहे तो 'हारो' वही (195), 'थोड़े दिन के जीवन मे 'सत्कर्म' का उपदेश है, (196) 'बदगी न भूलने' की चेतावनी है, 'भजन भाव से जन्म जन्मांतर के खत फटने का विश्वास है', वही (162 200) मगर, वैसी असहायता और आकुल शरणागति नही है।

और अन्तत द्वारिका वास के साथ सभवत इस दीनता का एक बार अवसान होता है, नई आशा और उमग भावनाओ मे भरती है—

राय श्री रणछोड दीज्यो द्वारिका का वास।
सख चक्र गदा पद्म दरसै, मिट जम की त्रास।
सकल तीरथ गोमती के, रहत नित पास।
झालर झझा बाजै सदा सुख की रास।
तज्यो देस अरु वेस हूतजि, तज्यो राना राज।
दास मीरा गिरधर सरनै आवत, तुम्हें अब सब लाज। 9 (479 3)

और निश्चित है कि टूटी मीरा के उस समय के भजनो मे समर्पण, दया निधान से शरण मांगने उपदेशात्मक और वैराग्य मूलक पद ही बने होंगे। वह समय सिंगार का, मिलन का प्रतीक्षा का, अनुनय का नही था। अन्तत एक विधवा राजवधू अपने सस्कारो मे इतनी मर्यादित तो रही होगी कि 'विधवा होकर अपने सिंगार के पद नही गाए होंगे' क्योंकि वह लोकतत्वो की गढन्त थी और लोक मर्यादा से बाहर होने का ऐसा काम वह कर ही नही सकती थी।

(iv) टेक और हठीलापन चाहे उसकी भावना भक्ति की टेक अनोखी थी और उसके लिए लोक लाज, कुल मर्यादा, राज मर्यादा आदि को न पालने का उसका हठीलापन भी उत्तर से परे था, मगर नारी भाव की मर्यादा मे, लोक-प्रतिष्ठित नारीत्व की मर्यादा मे वह सच्ची थी, वैसे ही जैसे, 'मैं अपने सैंया सग साची' थी।

जहां तक भावना भक्ति की टेक का सवाल है, मीरा उसके लिए विवश थी। जो एक बार आत्म तत्व को पहचान लेता है, जगत उसके सामने कूडा हो जाता है उसके सबूत हमे नामदेव, कबीर गोरख, नानक और बीसियो सतो के जीवन चरित्र से मिलते हैं। मीरा के साथ भी यही था कि उसने सात बरस की उमर से राम की आराधना शुरू की थी। मुश्किल नही कि साधु सत्सग और अपनी विशिष्ट परिस्थितियो के कारण उसने आत्मतत्व को पहचान लिया हो। यदि ऐसा न होता तो अपने पीहर मे ही वह यह नही कहती कि—

"तू मत बरजे माइडी म्हनें साधां दरसण जाती।
राम नाम हिरदे बसे, माहिले मद माती। 33 (106-28)

चारभुजा जोधाणो के इष्ट थे और उनके प्रति विशेष आग्रह होना सहज स्वाभाविक था। आत्म तत्व को पहचान कर मीरा ने कृष्ण में या चारभुजा में परमतत्व का आधान किया हो तो यह भी स्वाभाविक था। और सत्संग तथा वातावरण से नाथपंथी अलख तत्व का आधान किया था तो वह भी सगत था।

उसकी भावना भक्ति की टेक, आचार-व्यवहार की टेक इन दोनों स्वरूपों को लेकर मिलती है—'मीरा लाग्यो रंग हरी, औरन रंग अटक परी' कहकर यह अपनी टेक का परिचय देती है तो 'चूडो म्हारो तिलक अरू माला' वही (140-23) 'सील बरत सिंगारा' कह कर अपनी विराग भावना का परिचय देती है।

ऐसी टेक के लिए, 'सात बरस की मैं औरन भजिया तप पाया करतार' वाला कथन महत्वपूर्ण है। बचपन में पडे संस्कार स्थायी हो सकते हैं और जहाँ तक आत्मबोध का प्रश्न है, वह एक बार हो पडे तो आजीवन उसकी स्मृति बनी रहती है। तभी मीरा ने कहा है—

"मैं तो चरण लगी गोपाल।
जब लागी तब कोऊ न जायी, अब जाणी ससार। 9 (414 33)

बचपन की पडी उस 'बान' के कारण ही उसका रूझान साधु सगत, सील, बरत, गौन, माला, चिन्तन आदि की ओर अधिक था और ससार व्यवहार की ओर अत्यल्प था। तभी कहती है—

"आवो सखी रली करां हे, पर घर गवण निवारि।
झूठा माणक मोतियां री झूठी जगमग जोति
झूठा सब आभूषणो री, सांचा पियाजी री पोति।
झूठा पाट पटम्बरा री, झूठा दणीय चीर।
सांची पियाजी री गूदडो, जामे निरमल रहे सरीर।
33 (105-25)

—उसकी अपनी टेक थी कि 'मीरा कू प्रभु मिलिया हे' तो उसे किसी भी हालत मे छोडेगी नहीं—'कोई कछु कहे, मन लागा।' वही (26) 'ज्यू सोन मे सुहागा', तो वह अलग होने से तो रहा। 'जनम जनम का सोया मनवां जागा'—तब उसके वापस सो जाने का सवाल तो था ही नही। तभी उसने पीहर वालों के सामने भी अपनी टेक बनाए रखी कि—थूमत बरजें माइडी म्हन साधां दरसण जाता' क्योंकि—

"मैं तो लिया गोविन्दो मोल ।" वही (101 19)

—वह भी 'तराजू तोल कर और 'बजवा ढोल' से साथ कि 'आँखें खोल' कर। उसका विश्वास भी था कि वह सब 'पूरब जनम का कौल' था । और 'कौल' था तो राजपूत कन्या को उसे निभाना ही था । और जब वह 'अपने सैंया सग साँची थी', 'परगट होकर नाचने लगी थी', 'अब काहे की लाज'—वही (103-22) ऐसा अनुभव कर चुकी थी, तब अपनी भावना भगति पर अड़े रहना, उसे छोडकर ससार-चेतना के धरातल पर न आना उसकी सहज नियति ही बन गई थी । वह तो उस स्थिति तक पहुँच गई थी कि—'म्हारा मनरी उणरथ भागी री वही (21)

छीलरिये सू काम नही रे, डाबरिये कुण जाव।
गग जमुन सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाय मिलू दरियाव।
हाल्याँ मोल्याँ सू काम नही रे, सीख नही सिरदार।
कामदारों सू काम नहीं रे, मैं तो जाय करू दरबार। (वही)

—जो परमतत्व का अनुभव कर ले, उसे तब छोटे मोटे भैरव, भवानी, गारक, देवर, भोप आदि से क्या लगाव हो सकता है ! इसलिए पीहर की तरह सासरे मे भी उसकी टेक थी था कि उसका हठ था कि—

कोई निन्दो कोई बिन्दो, म्हें तो गोविंद का गुण गास्यां ।
चोरी न करस्यां, जिव न सतास्यां, काइ करसी कोइ म्हारो ।
गज सू उतरि कै खर नहि चढसां, या तो बात न हाई ।
वही (104 23)

अपनी टेक निभाने के लिए उसने 'राजकुल की लाज गमाई', साँधो के सग भटकी', 'नित उठ मदिर जाती रही', जेठी बहू होने की कानि की परवाह नहीं की', 'घूघट'—जो कि मेवाडी राजपूता मे हर जठी स्त्री के लिए भी होता था—भी 'पटकी' वही (24) गुरु गोविंद की आन देकर' सकल्प व्यक्त किया कि गोरख नही पूजेगी' वही (106 29) । न केवल गोरख बल्कि कोई भी 'अनदेव' न पूजने की 'आन' थी । (वही) वह तो 'अपने गिरधर के हाथ बिकानी' थी क्योकि 'राणा जी म्हारी प्रीत पुरबली मैं कोइ करू' वही (111-42) उस 'पुरबली प्रीत' के कारण वह स्वय सचेत नही थी, चेतन ससार में नही थी तो उसके निणय लेन या मार्ग बदलने का प्रश्न ही नहीं उठता था ।

चेतन जगत मे तो उसकी टेक इतनी सी थी कि—
राणजी म्हें तो गोविंद का गुण गास्यां ।
चरणाम्रित को नेम हमारो, नित उठ दरसण जास्यां ।

मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, निरख परख गुण गास्या।
हरि मंदिर मे निरत करास्याँ, घूँघरिया घमकास्याँ।
वही (109-34)

—और, इस टेक के लिए, उसका हठ भी इतना विकट रहा कि वजनाएँ, सर्जनाएँ, कोप, कपट, छल, घात, बात कुछ भी उसे अपनी टेक से डिगा नही सके। "लोग कहैं मीरा भई बावरी न्यात कहे कुल कुल नासी" "नणद आदि बरजि बरजि हारी" मगर उसका तो कहना था—

राणाजी म्हाँन या बदनामी लागे मीठी।
कोई निन्दो कोई बिन्दो मैं तो चलूगी चाल अपूठी।" वही (36)

'पीठ दिखाना' यो भी राजपूत महिला के लिए अपमानजनक था। फिर मीरा के लिए तो वैसा करना सभव ही नही था।

चाहे उसने अनुभव किया कि—

"राणाजी थे क्या ने राखो म्हा सू बैर ?
थें तो म्हा न इसड़ा लागो ज्यू ब्रिच्छन मे कैर।" वही (110-37)

यह भी कि—'राणा जी थें जहर दियो, हम जाणी' मगर,

जैसे कचन दहत अगन मे, निकसत बाराबाणी वही (111 41)
अब तो, "आपने घर का परदा कर ले मैं अबला बौराणी।"

—जिसको 'साकड़ी गली में सतगुरु' मिल गए जो ज्योतिष्मान हो चुकी, वह पुन तमसोगमय कैसे हो सकती थी। उसने—

"महल अटारी हम सब त्यागा, त्यागा थारो बसनो सहर।
काजल टीको राणा हम सब त्यागा, भगवी चादर पहर।" वही (37)

अत अपनी टेक की रक्षा मे उसने स्पष्टत घोषणा कर दी कि—

नहिं भावे थारो देसड़लो रग रूड़ो।
थारा देस मे राणा भगति नहिं छे, लोक बसै सब कूड़ो।
वही (109-36)

चाहे राणा कोप करे चाहे लोक निंदा करे, चाहे पीहर लाजे, चाहे सासरिया लाजे, मीरा की टेक तो अनन्य थी—

"सीसोदयो रूठयो तो म्हाँरो कई कर लेसी।
राणा जी रुठे वारो देस रखासी।
हरि रूठ्यो कठे जास्याँ हो माइ।" वही (110 38)

—न राज भय, न लाज भय, न मर्यादा भय, न लोक भय—ऐसी निभय हो

चूंकि मीरा हठीली और टेक वाली बनी तो या बनी कि—

'या तो रग धत्ता लग्या ए माइ।
पिया पियाला अमर रस का, चढ गई घूम घुमाव।
यो तो अमल म्हारो कबहु न उतरे कोइ करो न उपाव।
वही (112 44)

वह तो, "भजन भाव म मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय," की सुरत म रमी रहती थी। उसे बाहरी जगत की चेतना व्यापती ही नही थी। उसे तो अपने 'सबल धणी का साथ', (वही 113 47) था, ससारी राजा राणा का भय उसे कसे व्यापता। उसकी तो बडे घर ताली लागी रे, 'समद सू सीट' हो गया था, तब क्या चित्तौड और क्या मेडता—कोई उसे अपनी टेक से नहीं डिगा सका।

टेक की आन और ऐसा हठीलापन अन्तत रोजकोप का कारण बना। इतना कि उस 'परम तत्व चेती मीरा' को भी—चाहे पार्थिव कहिए या अपार्थिव कहिए, अपने 'बाबो सा' से कहना पडा कि—

"म्हारे बाबो सा ने कहियो म्हानैं वेगा लेवा आवे।"

भावना भक्ति के दायरे म भी मीरा की टेक और हठीलापन वैसे ही झलकता है जैसे परिवार जनो या ससुराल वालो क प्रसग मे था।

'प्रिय के दरसन' की लगन में उसन केवल पूजा या भजन कीतन को पर्याप्त नहीं माना था। उसकी टेक तो अपने पिया को रिझाने की थी।

असा पिया जाण न दीजै हो।
तन मन धन करि वारणै, हिरदै धरि लीजै हो।
आव सखी मिलि देखिये, नणो रस पीजे हो।
जिह जिह विध रीझे हरी, सोई विधि कीजे हो। 33(99 13)

और उन विधियो मे 'एकटक दरसन', गिरधर आगे नाचना और पिव रसिक को ही रिझाना,' 'सतो के साथ बठकर स्मरण करना' 'रमैया ने देख वो कहूँ करना, 'पचरग चोला पहिन कर झिरमिट खेलने जाना,' 'सुरतनिरत का दिवला सजोकर रात दिन जलाए रखना', भूख सहना' 'नीदा सहना,' 'सुन महल मे सेज बिछाकर'जोगिया की प्रतीक्षा करना,' 'खोज और खिन्नता पूवक जोगिया की बाट जोहना,' 'चन्दन की चिता बनाकर अपने को भस्म कराना और भस्म जोगी के अग लगवाना,'—परसन के लिए ऐसा हठ, 'जोगन बनकर बन बन अपने जोगिया को ढूढना—यानी जिस विधि से सभव हो हरि दरसन की टेक निभाती मिलती है।' 'वास्तव में बैरागिनी हुँया हो।' 33(147-152)

(४) पुरब जनम को कोल मीरा की भावना भक्ति के मूल मे उसका पुनर् जनम का कोल एक प्रभावकारी अभिकारक प्रतीत होता है। चाहे तार्किक

और वैज्ञानिक कसौटी पर इसमें तथ्य न हो, मगर भावना लोक किसी विश्वास पर टिका होता है। वह विश्वास ईश्वर के साकार रूप का हो, तरणतारण स्वरूप का हो, निराकार सत्ता का हो, अवतारवाद का हो, भक्तो और सतो का चिंतन उन्हीं आधारो पर टिका हुआ है। भक्ति स्वय भी भावना ही होती है।

मीरा कई पदो मे अपनी 'पुरबली प्रीत' की बात दोहराती है और इसी बल पर उसकी मधुरा भक्ति की टेक और उसका हठीलापन टिका हुआ भी है—

"मेरी उसकी प्रीत पुरानी, उण बिन पल न रहाऊँ। 33(101-17)
राणा जी म्हारी प्रीत पुरबली मैं कांई करूं। 33(111-42)
हेली म्हांसूं हरि बिन रह्योइ न जाय।
सास लड़े म्हारी नणद खिजावै, राणा रह्या रिसाय।
पहरो भी राख्यो चौकी बिठारयो, ताला दियो जड़ाय।
पूरब जनम की प्रीत पुराणी, सो क्यू छोडी जाय। 33 (113 46)
रियौ बैल जुताय कै, ऊँटा कसियो भार।
कैसे तोड़ू रामा सू, म्हारो भो भो रो भरतार। वही (114 47)
थांने कइ कइ कहि समझा यूं, म्हारा वाला गिरधारी।
पूरब जनक की प्रीत हमारी अब नहिं जात निवारी। वही(116-54)
सदके करूं जी सरीर जुगे जुग वारणै।
छोडी छोडी कुल की लाज, साहिब तेरे करणै। वही (55)
म्हारो जनम मरण को साथो, थान नाहिं बिसरूं दिन राती।
वही (132-106)
म्हू तो जनम जनम की दासी, थें म्हांरा सिरताज।
वही (133-109)
जनम जनम का सोया मनवां, सतगुरु सबद सुण जागा। 9(424 76)
जोगी होय जुगति नहिं जाणी, उलटि जनम फिर आसी।
वही (421 60
जनम जनम की पूजी पाई, जग मे सबै खोवायौ। वही (417-45)

जिस मीरा की बचपन की अनुभूति थी कि—"नहिं म्हारे माय र बाप, अम्मर डारयो, धरती झेलीयो 9(203 10) उसके लिए यदि यह विश्वास दृढ हो गया हो कि वह 'उसी की' है जिसने उसे धरती पर फेंका है,' तो यह असगत बात नही होगी। उसका पुनर्जन्म का विश्वास उतना ही मजबूत था जितनी कि उसकी भक्ति की टेक हठीली थी। तभी उसका यह भी निर्विकल्प विश्वास था कि—

"रमापति आवे म्हांरी भीर, अरज करूं छूं थाँ सू विनती।" (वही)

उसी विश्वास के बल पर वह कह सकी थी कि—

"म्हें तो गाबिन्द का गुण गास्या, राणा जी म्हारा काई करसी।" या कि 'बाई ऊदा थे राणा ने रावले मेल्हि,'

कुल रो ही नाती म्हारे कोई नहिं।

—इस तरह से मीरा की अनुभूतियो के तत्व अनेकधा होते हुए भी, मधुरा भक्ति को केन्द्र मे रखकर गुम्फित कहे जा सकते हैं। अभिव्यक्ति के साधना का कोई आग्रह मीरा के सामने नहीं था। अनुभूति की सहजता, तीव्रता और सच्चाई जिस तरह से उभर सकी, वही उसके पदो मे सहज स्वाभाविक रूप से फूट पडी है।

2 सामाजिक तत्त्व

और, उस सहजता मे उसका सामाजिक सास्कृतिक परिवेश चरितार्थ हो उठा है। उस परिवेश की झाकियाँ हम निम्नाकित रूपो मे देख सकते हैं

मीरा के सम्बन्ध मे हमे एक बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि "वह एक राज परिवार मे जन्म लेकर भी लोकजीवन के साथ एकरस हो गई और राज-परिवारो की पूरी उपेक्षा और विस्मरण कर देने को चेष्टाओ के बाद भी लोक व्यापी हो गई'—यह बहुत बडी बात है।

यद्यपि उसके लिए परिस्थितिया ऐसी थी कि वह सामान्य राजपूत महिला बन सकती थी। उस समय का मेडता, युद्ध और राजनीति के लिए अत्यन्त महत्व-पूर्ण केन्द्र था। चित्तौड के राणा देश के एकमात्र नेता थे और वीरता वैभव और प्रभाव मे अनन्य थे। इन दोनो का लाभ उठाकर वह देश की सर्वश्रेष्ठ शक्ति की राजवधू के रूप मे इतिहास मे स्मरण की जा सकती थी जैसी कि रानी करमती की जाती है किन्तु वैसा नही हुआ। क्योंकि उसका व्यक्तित्व जिस विशिष्ट तरीके से निर्मित हुआ था वह राजकन्या का नही था, राजवधू का नही था, वह भावना लोक का एक अनन्त गामी सूक्ष्म व्यक्तित्व था जो वस्तुत जगत व्यापी हो गया, युगजीवी हो गया, सनातन हो गया। तभी उसने कहा था—'ले जाती बकुठ कू म्हारी नक न मानो बात।" 33 (112-42)

उसकी भावना भक्ति सामाजिक उपज थी जैसे कि उसका व्यक्तित्व तत्का-कालीन परिवेश के अनुकूल और पारिवारिक सीमाओ के उल्लघन से बना था। उसके आत्मतत्व की पहचान वस्तुत समष्टि की पहचान थी और उस पहचान की अभिव्यक्ति ऐसे साधनों से और ऐसे धरातल पर हुई थी जो लोकानुसारी था बल्कि जो लोकतात्विक था। यत्र-तत्र उसके पदो में हमे ऐसे प्रमाण मिल जाते हैं।

(1) पव उत्सव आदि के हवालों मे—जोधपुर-मेड़ता बीकानेर क्षेत्र मे, परम्परा से कुछ खास पर्वों उत्सवो का लोकव्यापी महत्व है—यथा—सावणी तीज, होली, गणगोर, अक्षय ततीया। यो रक्षाबधन, विजया दशमी, दीवाली, करवा चौथ, बसत पचमी, शिवरात्रि 13 (251) ऋषिपचमी, अनत चतुर्दशी, नवरात्रि, भाई दूज मकर सक्रांति, शीतला पूजन 23 (196) अनेक पव और उत्सव राजस्थानी जन-जीवन मे प्रचालित थे और हैं, मगर मीरा के पदो मे उन्ही का सकेतात्मक या अभिव्यक्ति मूलक उल्लेख आया है जो उसकी अनुभूतियो के वाहक बन सके हैं। एक पद मे, जो कि 'बारहमासा' की शैली मे है, तत्कालीन ऋतु माहात्म्य और उत्सवों का हवाला मिलता है—

पिया मोहि दरसण दीजे हो।
बेर बेर म्ह टेर हूँ, अहै किरपा कीजे हो।
जेठ महीना जल बिना, पछी दुख होई हो।
मोर असाढा कुरल हे, घन चात्रम सोई हो।
सावण मे झड लागियो सखि तीजा खेलै हो।
भादरवै नदियो वहैं, दूरी जिन मेलै हो।
सीप स्वाति ही झेलती, आसोजा सोई हो।
देव काती मे पूज हे, मेरे तुम होई हो।
मगसर ठड बहोती पडे, मोहि वेगि सम्हालो हो।
पोस नही पाला घणा, अबही तुम हालो हो।
महा महीं बसत पचमी, फागां सब गावै हो।
फागुण फागा खेल हैं, वणराइ जलावै हो।
चैत चित्त मे ऊपजी, दरसण तुम दीजै हो।
बैसाख बणराइ फूलवै, कोइल कुरलीजै हो।
काग उडावत दन गया बूझू पिडत जोसी हो।
मीरा बिरहिणी ब्याकुली, दरसण कब हासी हो।

तीज वसे मारवाड देश मे तीज, दीवाली और होली का महात्म्य सावलौकिक है। अन्य प्रदेशो मे अन्य-अन्य पर्वों का महत्व है, यथा—

तीजा पूगल देसरी गवरल उदिया दीप,
दिली दसेरी देखिए मोती समदा दीप 45(328)

और इनमे से भी तीज वह त्योहार है जो स्त्रियो मे सुख सुहाग का माना जाता है—मोरां बिन डूगर किसा मेह बिन किसी मलार।

तिरियां बिन तीजा किसी, पिव बिन किसा तिवार। 45 (328)

राजस्थानी लोक जीवन मे तीज जीवन्त त्योहार है और यह जैसे लोक-

जीवन मे वैसे ही काव्य रूढ़ियो मे भी बहुत गहराई के साथ उतरा हुआ है। यह पति मिलन का, सुख का या सुहाग का प्रतीक बन गया है।

जइ तू ढोला नावियउ, काजलिया री तीज।
चमक मरेसी मारवी, देख खिवता बीज। 45 (328)

वैसे भी काव्य रूढिया मे 'सावण' पिय मिलन का और वियोग मे दाह का प्रबल अभिप्राय रहा है। उमडते मेघ, कडकते बादल, चमकती बिजली, नाचते मोर, पिव पिव करते पपीहा, टरटराते मेढक—सब मिलन मे सुखदायी और विरह मे दग्धकारी माने जाते रहे हैं। लोक काव्यो मे भी उनकी बहुलता मिलती है। वैसे ही मीरा के पदो मे—

कहीं 'सावण' प्रतीक्षा की अवधि सीमा के रूप म साधन बना है—
"श्रावण कह गए अज हूँ न आये, जिवडो अति अकुलावै।"
33 (121 69)

"सावण आवण कह गया वाल्हा कर कौल अनेक" वही (137-118)
रावल कुण बिलमाइ राखो, विरहिन है बेहाल॥ वही (136 117)

"आया सावण मास सजनी, भरे जल थल ताल।

"सावण दे रह्या जोरा रे, घर आज्यो जी स्याम मोरा रे।
उमड घुमड चहुँ दिसि से आया, गरजत है घन घोरा रे।
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल कर रही सोरा रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ज्यो वारूँ सो ही थोरा रे।
वही (145-145)

तो कहीं वह विरह की तपन का मापक बना है—

"दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुनावै।
घुमड घटा ऊलर होई आई, दामिन दरक डरावै।
वही (123 76)

नैन झर लावै।
सावन भादों, ऊमडो, बरखा रितु आई है।
भौंह घटा घन घोरि के नैनन झर लाई रे। वही (140 129)

कहीं वह तीज मनाने की खुशियों का पैमाना है—
सावण मे झड लागियो सखि तीजां खेलैं हो। वही (135 116)

तो कहीं वह भय और त्रास का प्रतीक है और ताप बुझाने का साधन भी—

बादल देख डरी हो स्याम, मैं बादल देख डरी।
काली पीली घट उमड़ी, बरस्यो एक घड़ी।

जित जाऊँ तित पाणी पाणी, हुई हुई भोम हरी।
जाका पिय परदेस बसत है, भीजू खडी खडी।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, कीज्यो प्रीत खरी। वही (126 82)

कैसी रुत आई मेरो हियो लरजे हे माय।
निस अँधियारी कारी, बिजरी चमकै, सेज चढता जिया डरपे हे माय।
नहीं कदन मेहा बरसे, ऊपर से सुरपति गरजे हे माय।
सूनी सेज स्याम बिन लागत, कुक उठी पिया पिया करिके हे माय।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, मोय विधाता क्यू सरजी हे माय।
9(412 27)

मनवारे बादर आए रे, हरि को सनेसो कछु न लाये रे।
दादर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुनाये रे।
कारी आधियारी बिजरी चमकै बिरहणि अति डरपाये रे।
गाजै बाजै पवन मधुरिया, मेहा अति झड लाये रे।
कारी नाग बिरह अति जारी, मीरा मन हरि भाये रे।
वही (128-81)

कही वह मिलन की आतुरता का उद्दीपक है—

भीजै म्हारो दावण चीर, सावणियो लूम रह्यो रे।
आप तो जाय बिदेस छाये, जिवडो धरत न धीर।
लिख लिख पतियाँ सदेसा भेजू कब घर आवै म्हारो पीव।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, दरसन द्यो बलबीर।
वही (138-123)

मद नदन बिलमाई, बदरा ने घेरी माई।
इत घन गरजे, उत घन लरजे, चमकत विज्जु सवाई।
उमड घुमड चहुँ दिस से आया, पवन चलै पुरवाई।
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुणाई।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चितलाई। वही(143-140)

तो, कही वह मिलन की उमगो और आशाओ का साक्षीभूत भी है—

सुनी हो म्हैं हरि आवन की आवाज।
म्हैल चढ़ै चढि जोऊँ मेरी सजनी, अब आवे महराज।
दादर मोर पपीहा बोलै, कोइल मधुरे साज।
उमग्यो इन्द्र चहुँ दिसि बरसै, दामिणि छोडी लाज।
धरती रूप नवा नवा धरिया, इन्द्र मिलण कै काज।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, वेग मिलो महाराज। वही (144-141)

वसे ही—

झुक आई बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन मे उमग्यो मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।
उमड घुमड चहुँदिसि सें आयो, दामण दमक झट लावण की,
नन्हो नन्हों बूदन मेहा बरसै, सीतल पवन सुहावन की।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, आणद मगल गावण की।
वही (145-144)

बदली रे तू जल भर लाई।
नन्ही नन्ही बूदन बरसन लागी, काइल सवद सुणाई।
गाजै बाजै पवन मधुरिया, अम्बर बदरा छायो।
सेज सँवारी पिय घर आये, हिलमिल मगला गायो।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, भाग चलो जिन पायो। वही(145 147)

और, कहीं वह रामखुमारी का उद्घाटक और चैतन्य प्रदायक अभिघटक भी है—

लगी मोहि रामखुमारी हो।
रमझम बरसै मेहड़ा, भीजै तन सारी हो।
चहुँदिस चमकै दामणी, गरजै घन भारी हो।
सतगुरु भेद बताइया, खोली भरम किवारी हो।
सब घट दीसै आतमा सबही सू न्यारी हो।
दीपक जाऊँ ग्यान का, चढू अगम अटारी हो।
मीरा दासी राम की, इमरत बलिहारी हो। वही (149 158)

राजस्थानी लोक-जीवन मे सावण और सावणिये की तीज का अवसर विशेष स्वागत, उछाह और प्रतीक्षा का मानक रहा आया है। लोकगीतो मे, लोक कथाओ मे और लोक काव्यो मे वह उतना ही मान्य रहता आया है जितना कि खेती किसानी मे जीवन का मुख्य आधार बना रहा है। लोककाव्यो म भी सावण और पिया अनिवार्य सम्बन्धी रहते आए हैं कि—

उनमो आई वद्ली ढोलउ आयउ चित्त।
यो बरसइ रितु आपणी, नहण हमारे नित्त। 45(142) या कि

गिरह पलाखण, सर भरण, नदी हिंडोलण हारि।
सूती सेजइ एकली, हइ हइ दइव म मारि। (वही)

वैसे ही बिजली भी—

बिज्जुलियां निलज्जियां, जलहर तु ही लाज्जे।
सूनी सेज विदेस प्रिय, महुरे महुरे गज्जि। (वही)

सावन तो प्रकृति जादूगरनी का क्रीडा केन्द्र है—अम्बर मे बदलियो की लीलाएँ, गरजते मेघ, लरजती बिजली, उमडती घटा, शीतल पवन, नन्ही बूदो की झडी, नाचते कूकते मोर, पपीहे की पुकार, उमँगती धरती—ऐसे मे भला पिया का योग या उसकी स्मृति आए बिना कैसे रहा जा सकता है—

सावण आयउ साहुबा, पगइ विलबी गार।
ध्रच्छ विलबी बेलड्याँ, नरा विलबी नार। वही (149)

मीरा की लोकानुसारिता इसी से जाहिर होती है कि उसके पदो मे अन्य ऋतुओ की उपेक्षा सावन का उपयोग आलबन, उद्दीपन और अनुभूति प्रकाशन के लिए अधिक सख्या मे हुआ है और वह सब उसी रूप मे है जिस रूप मे वह लोकानुगत रहा है।

बसत और होली मारवाड मे बसन्त का वसा महत्व नही रहा जैसा कि मालवा गुजरात और पूर्वी राजस्थान मे रहा, तथापि बसत आगमन के साथ फाग गाने और होली की तैयारिया करने का सिलसिला आरभ हो जाता है। लोक-काव्यो मे भी बसत का उतना महत्वपूण उपयोग नही हुआ जितना कि वर्षा का हुआ है।

'पृथ्वीराज रासो' मे बसत पचमी के उत्सव के राजकीय आयोजन का वणन मिलता है 13 (255) उस दिन श्रीकृष्ण के फाग खेलन का आयोजन किया जाता था। अगरू, कपूर, केसर, कस्तूरी, पुष्प, अबीर, रोली मेवा, मिष्ठान आदि के साथ श्रीकृष्ण की पूजा की जाती थी। लीलाओ के अभिनय किए जाते थे और "घटे, शख, झालर, मृदग, बीणा, नफीरी, भेरी, शहनाई, ढोल, नगाडा बशी आदि वाद्यो के साथ नत्य भी होत थे।" यदि मीरा के मेडता मे ऐसा कोई आयोजन रहा हो तो वह स्थानिक रहा होगा, मगर इतना जरूर है कि आज भी बसत पचमी से डफ और फाग गाना जारी हो जाता है।

मीरा के एक पद मे बसत के आगमन और उस समय प्रिय के पास न रहने का दुख प्रकट हुआ है—

बाजत झाँझ मृदग मुरलिया, बाज रही इकतारी।
आयो बसत कंत घर नाही, तन मे जर भया भारी।
स्याम मन कहा बिचारी। 33(124-78)

मगर, होली का मारवाड़ क्षेत्र मे सर्वाधिक महत्व है। कई अंचलो मे इस समय नृसिंह अवतार के स्वाग भर जाते हैं, हिरणाक्श्यप को मारने की घटना का उस माध्यम से सार्वजनिक स्मरण किया जाता है। सब वण और जातियाँ भेदभाव भूलकर इस पव मे समानता के धरातल पर रग, गुलाल, कीचड, कादा -स एक दूसरे को सराबोर करते हैं, भक्ष्य-अभक्ष्य खाते खिलाते हैं, स्त्री-पुरुष सब

उन्मादित होकर नाचते गाते हैं, सामाजिक मर्यादाएँ, शिष्टाचार एक एक दिन के लिए भूल जाते हैं, ईलाजी की स्थापना करते हैं, स्त्रियाँ भी अश्लील गीतो-नृत्या मे सम्मिलित होती हैं। गधे की सवारी, अश्लील गालियाँ, हुडदग सब ओर मच जाती है। ऐसा लगता है जसे हजारो वर्षों की नैतिकता, शील आदि को छोडकर लोक आदिम हो जाना चाहता है। हल्लीसक नृत्य, गेर जैसे उन्माद भरे नत्य चारो ओर होते रहते हैं। और, यह सब बहुत पुरानी बात भी है। गौतम बुद्ध ने अपने शिष्यो को हल्लीसक नृत्य मे भाग न लेने का निर्देश दिया था। कई तरह के वाद्यो और कई तरह के रगो अबीरो का उपयोग राजघरानो मे होता था जबकि लोक मे कीचड, राख धूल की होली खेली जाती थी।

स्त्रियों में कजली तीज की तरह होली की दूज का भी महत्त्व होता था। उस दिन परदेसी पिया के आए बिना होली नीरस हो जाती है। कई जगह स्त्रियाँ पति पत्नी को पुन विवाह करने पर भी विवश करती हैं तो कई जगह "जमरा खाडने" की प्रथा निभाई जाती है। पिछली होली के बाद जन्मे बच्चो की ढूढ भी की जाती है।

मीरा के पदो मे इस लोक त्योहार के सदभ उसी रूप मे आए हैं जिस रूप मे सावन के आए हैं—

"होली पिया विण मोहि न भावै, घर आगण ना सुहावै।
दीपक जोय कहा करूँ हेली, पिय परदेस रहावै।
सूनी सेज जहर ज्यू लागे, सुसक सुसक जिय जावे।
नींद नहि आवे। 33 (124 79)

प्रीतम के बिना होली खेलन मे कोई रस नही। और किसके साथ होली खेली जा सकती है!

किण सग खेलू होली, पिया तज गये हैं अकेली।
माणिक मोती सब हम छोडे, गल मे पहनी सेली।
भोजन भवत भलो नहि लागे पिया कारण भई गोली।
म्हनै दूर क्यू मेली। वही (125 80)

और यदि प्रीतम पास मे हो तो वही होली रँग रँगीली, मदभरी मस्ती का आलम बन जाती है—

रग भरी रग भरी रग सू भरी री।
होली आई प्यारी रग सू भरी री।
उडत गुलाल लाल भये बादल, पिचकारिन की लागी झरी।
चोवा चन्दन और अरगजा, केसर गागर भरी धरी री।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, चेरी होय पायन मैं परी री।
वही (145)

और दृश्य वर्णन के रूप मे भी होली—

होरी खेलत हैं गिरधारी।
मुरली चग बजत डफ न्यारो, सग जुवति व्रज नारी।
चदन केसर छिरकत मोहन, अपने हाथ बिहारी।
भरि भरि मूठि गुलाल चहुँ देत सबन पैं डारी।
छैल छबीले नवल कान्ह सग, स्यामा प्राण पियारी।
गावत चार धमार राग तहँ, दै दै कल करतारी।
फाग जु खेलत रसिक सावरो, बाढयो रस व्रज भारी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर मिलिया लाल बिहारी। वही (177)

और सतमत से प्रभावित आत्म साधना की होली भी मीरा के पद मे मिलती है—

फागुन के दिन च्यार रे होली खेल मना रे।
बिन करताल पखावज बाजैं, अणहद की झणकार रे।
बिन सुर राग छत्तीसों गावैं, रोम रोम रग सार रे।
सील सतोख की केसर घोली, प्रेम प्रीत पिचकारी रे।
उडत गुलाल लाल भयो अम्बर, बरसत रग अपार रे।
घटके पट सब खोल दिये हैं, लोक लाज सब डार रे।
होरी खेलि पीव घर आये, सोइ प्यारी प्रिय प्यार रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर कवल बलिहार रे। वही (151)

होली लोक त्योहार है। मीरा के समय मे भी था और इसी कारण उसके लोक मानस ने होली को वण्य विषय के रूप मे और आलम्बन-उद्दीपन के रूप मे अपनी मधुरा भक्ति मे स्थान दिया है।

गणगौर होली के साथ ही जुडा हुआ गणगौर का त्योहार है जिसे कन्याएँ अच्छा वर पाने की कामना से मनाती हैं। ईसर और गौर के पूजन का यह त्योहार किसी-न किसी सीमा तक पूरे मारवाड क्षेत्र मे प्रचलित है। जैसे बच्चे के जन्म मरण का लौकिक महत्व है, वैसे ही इच्छित भरतार की कामना भी सार्वलौकिक होती है।

मीरा के प्रसग मे गणगौर पूजन इसलिए महत्वपूण नहीं माना जा सकता कि उसकी आस्था पार्थिव भरतार मे थी ही नहीं। "ऐसे वर का क्या करूँ जो जनमे अर मरि जाय!" इसी कारण विवाह के बाद की चर्चित घटना मे ससुराल जाकर गौर पूजा से उसने इनकार किया होगा—

म्हाने गुरु गोविंद री आण, गोरल ना पूजां।
औरज पूजे गौरज्यो जी, थें क्यूँ पूजो न गोर।

मन वछत फल पावस्यो जी, थें क्यू पूजे और ।

नहिं हम पूज्या गोरज्या जी, नहिं पूजो अनदेव ।
परम सनेही गोविंदो, थें काइ जानो म्हारो भेव । 33 (106-29)

गणगोर पूजन का यह विरोध समवत मीरा की मधुरा भक्ति की टेक का वाचक ही अधिक है । इससे शायद यह बात अधिक उजागर होती है कि पार्थिव भरतार के साथ सुहाग-कामना मे उसकी आस्था नही थी क्योकि उसने तो परम तत्व को पति प्रमाण प्राप्त कर लिया था।

मगर, अपने अलोकिक प्रियतम के साथ गणगोर भी इसके लिए उतनी ही मान्य थी जितनी किसी ससारी स्त्री के लिए होती है—

रे सांवलिया म्हारे आज रगीली गणगौर छजी ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरणा मे म्हारो जोर छै जी।
वही (145)

कुल मिलाकर मीरा के पदो मे लोकतत्व मूलक वर्षा, होली, बसत, गणगौर का उपयोग प्रकृत वणन के रूप मे और आलम्बन उद्दीपन के रूप मे हुआ है। वर्षा का उपयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है जो कि बहुत पुराना लोक मगल का आधार भी रहा है और मानवीय सवेदनाओं का जनक, प्रयेता और वाहक भी ।

(ii) कीतन भजन साधना के आयोजनों मे मध्य युग धार्मिक वातावरण का युग था । हजारों वर्षों की दार्शनिक और धार्मिक मान्यताओ का लौकिक पयवसान तीर्थयात्रा, सत्सग देवदशन, भजन कीतन, साधना, मदिर निर्माण और दान-पुण्य में हुआ था । जो लोग मदिर आदि का निर्माण कर सकते थे, वे वैसा करते और सामान्य लोक दर्शन, पूजा, सत्सग आदि कर के जीवन की आध्यात्मिक भूख शांत किया करते थे ।

साधु, सत, जोगी जती, महात्मा तपस्वी, नाथ, बटुक आदि के ऐसे अनेक समूह बने हुए थे जो निरन्तर भ्रमणशील रहकर लोक के लिए धम की व्याख्या किया करते थे । दर्शन, पुराण, ब्रह्म, ईश्वर तथा जगत् सम्बन्धी जितनी भी मान्यताएं विकसित हुई थीं उन्हें लोक शिक्षा बनाने के साधन यही लोग थे और इनके सिवा कुछ भी नहीं था । यद्यपि इनके नाम पर कुटिल कपटी लोग भी अपना स्वाथ साधने का काम करते थे तथापि साधु-सतों का राज म और लोक म मान सम्मान था । भजन कीतन साधना, दीक्षा और तपस्या के माध्यम से ये लोग लोक-शिक्षा का काम करते थे । जिन राज्यों म उन्हें तनिक भी आश्रय होता वहां उनके जमघट बने रहते थे और जहां वैसा नहीं होता था उधर साधु-संतों का आवागमन भी कम रहता था । मेड़ता और चित्तोड़ में यह अन्तर प्रखर था । तभी मीरा को

कहना पडा था कि—

नहि भावे थाँरो देसडलो रग रूडो।
थाँरे देए मे राणा साध नहि छै, लोग वसै सब कूडा।"

और इसकी तुलना मे—

"म्हारे पीहरिया रा लोक भले रो, बाधे कठी माला।"

मेडता, जोधपुर, नागोर, शेखावाटी, जालोर, बीकानेर की तरफ नाथपथियो का गहरा प्रभाव रहा था और लोक मानस उनकी साधना प्रणाली से बहुत दूर तक प्रभावित था। वैष्णव भक्ति, लोक देवता, सिद्ध-पुरुष आदि का प्रभाव भी व्यापक था और वैष्णव चतुर्भुज, नरसिंह, कृष्ण, शिव आदि मता का भी प्रभाव था। मेडता स्वत जगदम्बा, चारभुजा और नाथो का गढ था। वहाँ भजन कीतन के आयोजन और साधु समागम सदा चलते रहते थे।

मीरा पर उनका प्रभाव रहा था। उसके पदो मे भजन कीतन और साधना के कई स्वरूपा का मिला-जुला लौकिक प्रचलन व्यक्त हुआ है। वह अभिव्यक्ति वैष्णव रूप की भी है और नाथपथी साधना रूप की भी है। वह अभिव्यक्ति हमे बता सकती है कि उस समय भक्ति, भजन और साधना के किन रूपो की लोक म अवस्थिति थी।

मीरा के पदो मे से कम से कम 36 पद ऐसे मिलते हैं जिनमे भजन कीर्तन और इष्ट प्रीति की साधनाओ के सकेत हैं। सामान्य स्तुति प्रार्थना और विनय के पद इनसे अलग हैं जिनमे कभी इष्ट के परमतत्व की महिमा कही गई है और कभी अवतारो की महिमा बखानी गई है। अन्य तथा जो साधना रूप व्यक्त हुए हैं, उनमे गायन-नतन बहुत प्रखर भाव से व्यक्त हुआ है—

"मैं तो गिरधर आगे नाचूगी।" और अकेले ही नही बल्कि "नाच-नाच कर रसिक प्रिय को रिझाने और अन्य प्रेमी जनो को भी उस हेतु प्रेरित करने की बात भी है। 33(14) इस नतन म प्रेम प्रीत के घुघरू हैं, सुरत की कछनी है और उसके साथ लोक लाज की मर्यादा का उल्लघन हो तो भी चिता नही है। ऐमी अभिव्यक्ति में वैष्णव भावना के साथ सत मत का प्रभाव परिलक्षित है। 'गिरधर के रग मे रची हुई मीरा के लिए" "सिगार साज कर, पग में घुघरू बाँध कर" नतन करना स्वाभाविक है, वही (16) बल्कि "धरती पर जहाँ जहाँ पैर पड़ें वहाँ नृत्य करना" वही (18) 'अपने प्रिय के प्रति इतनी सच्ची होना कि लाज शरम छोड कर भी यह काम करना वही (22) ' नित प्रति उठ कर मदिर जाना और चुटकी दे देकर नाचना", वही (24) राजवधू होकर भी "हरि मदिर में निरत कराना और घु घरूओं की धमक कराना", वही (34) चारो तरफ से विरोध होने "गोविन्द के गुण गाना", वही (38) ' पग घु घरू बाँध कर नाचना"

ससुराल वाले कुलनासी कहे या लोग बावरी कहें वही (39), केवल इष्ट के सामने ही नहीं बल्कि इष्ट साधक "साधुओ के सामने ताल परवावज मदंग के साथ नाचल" वही (40)। चाहे कोई बावरी कहे, चाहे मदमाती कहे, चाहे निब देकर मारना चाहे—ये सब मीरा की भक्ति साधना की अभिव्यक्ति के मापक हैं। ये बताते हैं कि इस प्रकार का गायन और नर्तन लोक मे और राज परिवारो म, किसी कुलीन महिला या कन्या के, लिए सम्मानजनक तो नही था। मगर मारवाड क्षेत्र मे—खास करके जालोर, जैसलमेर, सिवाना की तरफ देवदासियो की प्रथा अनजानी नही थी और उस प्रथा की छाप यदि मीरा पर रही हो तो असभव नही कहा जा सकता। भजन और गुण गायन के लिए तो इतना आग्रह था कि "राणा रूठ जाए, शहर निकाला दे दे तो परवाह नही," "मैं तो गोविन्द के गुण गाणा" वही (43) और गुण गायन करन करते "मगन हो जाना" वही (45) "कीतन गा गाकर अपने राम रसिया को रिझाना" वही (92)—इसकी टेक मीरा ने बना रखी थी।

वस्तुत इस अभिव्यक्ति मे भजन, कीतन, गुणगान तो लोक सम्मत व्यवहार थे ही, नृत्य करना अवश्य ही सम्मानजनक नही था। चित्तौड के राजघराने मे राजवधुओ के लिए तो वह भयकर दुष्कम भी माना जाता रहा होगा क्योकि वहाँ तो महिला महिला से भी पर्दा करती थी, तब इतनी निलज्जता कैसे सहन हो सकती थी।

भजन कीतन और साधना की दूसरी प्रखर अभिव्यक्ति सतमत से प्रभावित ज्ञान, ध्यान और सुरत समाधी से सम्बधित कही जा सकती है।

'पचरग चोला पहिनकर झिरमिट खेलने जाना' और वहाँ 'स्याम से तन खोल कर मिलना' 33(102 20) मे सतमत की आत्मा परमात्मा का विचार अन्त निहित है। इसी तरह 'मोती माणक छोडकर माला दोवडी धारण करना वही (24) और परम गुरु के चरणो मे प्रणाम करना' भी उसी प्रभाव का सकेत करते हैं। 'अपने पिया की पोत को सच्ची मानना', बाकी 'आभूषणो को व्यथ मानना' और 'गुदडी' धारण करना वही (25) उस पर सतपथ के सन्यासी मत का प्रभाव बताता है। 'सतगुरु के सबद' से 'आत्म ज्ञान' मिलने की बात अनेक पदो मे स्वीकार की गई है। 'पचरगी झालर, सुखमण सज और सुरत निरत' वही (32) की बात भी कई पदो मे आती है। बल्कि अपने 'परम प्रिय' के लिए सुहाग चिह्न छोडकर 'भगवा चादर पहनने' वही (37) को भी मीरा तैयार है। उतना ही नहीं 'चीर फाडकर कथा धारण करना, वैरागन होकर रहना चूडा, काजल टीकी सब त्याग कर जोगन हो जाना' भी वही (48) उसे कबूल है। लोक-काव्या का सत प्रभाव मीरा पर इतना प्रबल है कि 'अपने जोगी प्रियतम के अग पर भभूत बन कर लिपटना पडे तो वह वैसा भी करना चाहती है।' वही (50)

"अगर चदण की चिता बनाऊँ, अपने हाथ जला जा।
जल बल भई भसम की ढेरी, अपणे अग लगा जा।"

वही (52)

"प्रिय के कारण जोगन होना, वन वन जोगी को ढूढ़ना तो राजस्थानी प्रेम कथाओ और काव्यो मे प्रचलित सदियो रही हैं मगर मीरा उनमें 'कासी करवत लेने' (52) और 'विप खाकर मरने' जैसे अतिसीम अभिप्राय भी भरती है जो कि उसकी अनुभूति की तीव्रता को व्यक्त करते हैं।

'तन-मन की सुरति मे सजोकर परम तत्व को समपण करना' वही (55) तो साधरण अभिव्यक्ति है, मगर मीरा इससे आगे जाकर भस्म रमाकर, जटा बाँध कर जोगण बनना और च्यारो खूट अपने जोगी को ढूढने वही (70) की साधना से नही चूकना चाहती। नाथ पथी रीति के अनुसार वह जोग सुरति और उसके साथ नतन की अनोखी साधना को अभिव्यक्ति देती है—

मन कू मार सजू सतगुरु, दुरसत दूर भगाऊँ।
ढाको नाम सुरत की डोरी, कडियाँ प्रेम चढाऊँ।
ज्ञान को ढोल बन्यो अति भारी, मगन हाय गुण गाऊँ।
तन करू ताल, मन करूँ मोरचग, सोती सुरत जमाऊँ।
निरत करूँ मैं प्रीतम आगे, तो अमरापुर पाऊँ। वही (92)

नाथपथियो की तरह 'जोग धारण करके, घर घर अलख जगाने' वही (40) मे भी वह अपनी आत्म साधना मानती है, बल्कि 'माला, मुद्रा, मेखला, खप्पर धारण करके' पूरा 'जोगण वेश' ही धारण करना चाहती है। वही (118)

बाल्हा म्हैं बैरागण हूँगी हो।
जी जी भेप म्हारो साहब रीझै, सो सो भेप धरूँगी हो।
सील सतोप धरू घट भीतर, समता पकड रहूँगी हो।
जाको नाम निरजण कहिये, ताको ध्यान धरूँगी हो।
गुरु ग्यान रगू तन कपडा, मन मुद्रा पहिरूँगी हो।
प्रेम प्रीत सू हरि गुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी हो।
या तन की म्हैं करूँ किंगरी, रसना राम रटूगी हो।

वही (152)

कभी उसकी अनुभूति शुद्ध ज्ञानात्मक धरातल पर उभरती है—

सतगुरु भेद बताइया, खोली भरम किवारी हो।
सब घट दीसै आत्मा, सब ही सू न्यारी हो।
दीपक जोऊँ ग्यान का, चढू अगम अटारी हो।
मीरा दासी राम की, इमरत बलिहारी हो। वही (158)

नाथपंथी और जोग रीति से परे रहकर कभी अनुभूतियों का प्रभाव सत-मतानुकूल शील-सदाचार को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है—जो कि मारवाड़ के लोक जीवन का गृहीत सार है, और भक्तजनों की सहज वाणी भी है—

यहि विधि भक्ति कैसे होय ।
मन की मैल हिये तें न छूटी, दियो तिलक सिर धोय ।
काम कूकर लोभ डोरी, बाँधि मोह चंडाल ।
क्रोध कसाई रहत उर में, कैसे मिले गोपाल ।
बिलार विषया लालची रे, ताहि भोजन देत ।
दीन हीन ह्वै छुधा रत से, राम नाम न लेत ।
आपहि आप पुजाय के रे फूले अंग न समात ।
अभिमान टीला किये बहु, कहु जल कहाँ ठहरात ।
जो तेरे हिय अन्तर की जानै, तासो कपट न बने ।
हिरदै हरि को नाम न आवै, मुख में मनिया गनै ।
हरि हितु से हेत कर, संसार आसा त्याग ।
दासी मीरा लाल गिरधर, सहज कर बैराग । वही (162)

और मन को धो धाकर साफ करके तब—

चलो अगम के देस, काल देखत डरै ।
जहँ भरा प्रेम का हौज, हँस केल्या करै ।
ओढ़ण लज्जा चीर, धीरज को घाघरो ।
छिमता काँकण हाथ, सुमति को मूंदड़ो ।
दिल दुलड़ी दरियाव, साँच को दोवड़ो ।
उबटन गुरु को ग्यान, ध्यान को धोवणो ।
कान अखोटा ग्यान, जुगत को झूटणो ।
बेसर हरि को नाम चूड़ो चित्त ऊजलो ।
जौहर सील संतोष, निरत को घूघरो ।
बिंदली गज अरहार, तिलक गुरु ग्यान को ।
सज सोलह सिंगार पहिर सोने राखड़ी ।
साँवलिया सूँ प्रीति और सूँ आखड़ी । वही (192)

—मीरा अपने प्रियतम से मिलन जाती है ।

अतः मीरा के भजन-कीर्तन और प्रेम साधना की अभिव्यक्ति में हमें वैष्णव, सन्त, नाथ सभी मतों के लोक प्रचलित संस्कार एवं साथ देखने को मिलते हैं । वस्तुतः जहाँ सन्तमत और नाथपंथी प्रभाव हैं वहाँ अभिव्यक्ति में बाँकापन और स्पष्टता भी अधिक मिलती है । पूजा-अर्चना के बाह्री तत्त्वों की बात मीरा ने

पदो में नहीं मिलती—आरती, छापा, माला, पूजा भोग आदि के अष्टकम या नवधा रूप मीरा के स्वभाव मे नहीं थे। दशन और नित नेम का हवाला जरूर मिलता है—

चरणाम्रित का नम हमारो, नित उठ दरसण जास्यां। वही (34)

और एक पद मे छापे तिलक का कमकाड भी आता है—

छापा तिलक बणावियां ओ मन मई निस्चै धार।
रामजी काज सवारिया, म्हनै भावे गरदन मार।। वही (42)

वैसे ही एक पद मे चाकर भक्ति का हवाला मिलता है 33 (154) और 'दासी' छाप तो कई पदो म मिलती है।

(iii) साधु सगति की टेक मे मध्ययुग मे साधु-सन्त ही लोक शिक्षा के साधन थे। उनके भिन्न-भिन्न मतो के उपदेश, उनकी वार्ने और उनकी शिक्षाएँ लोक मे जाकर एक सावजनिक मान्यता का धरातल बनाती थी जिस पर विविध लोक विश्वासों, रीतियो और प्रथाओ का प्रचलन होता था।

मेडता मे साधु सतो का आवागमन और समागम अपेक्षाकृत अधिक था। यहाँ तक कि वल्लभ मत के पुष्टि मार्गी अधिकारी भी मेडता मे कई बार प्रवास कर चुके थे यद्यपि वे राज्याश्रय के भागीदार नही बने। मुक्त साधु सगति का मीरा पर इतना प्रभाव पडा था कि 'साधु सगति और साधु सेवा' को अपने जीवन का व्रत बना लिया था। वह उसकी प्रेम भक्ति मे एक ऐसी टेक बन गई थी जो हठ की सीमा तक पहुँच गई थी। यहाँ तक कि उसे मरना कबूल था, मगर साधु सेवा छोडना कबूल नही था।

साधु सगति करि हरि सुख लीजै जग सूँ दूरि रहूँ।
तन मन धन मेरे सब ही जावो, भलि मेरो सीस लहू। 33(31)

बचपन से ही साधु सगति की उपयोगिता मीरा ने इस रूप मे और इतनी अनिवायता से अनुभव कर ली थी कि परिवार वालो के मना करने पर भी वह नहीं मानती थी—

तू मत बरजे माइडी म्हनै साधो दरसण जाती।
राम नाम हिरदे बसे, माहिले मदमाती। वही (28)

तदुपरान्त उसके पदो मे अनेक बार साधु सगति की अनिवायता और साधना मे उसका सहायकपना कई तरह से उजागर हुआ है—

यदि राजकुल की कन्या या महिला के लिए साधु सतो की सभा मे बैठना निलज्जता थी तो मीरा ने अपने लिए उसे भी स्वीकार किया था—

छाँडि दई कुल की कानि, कहा करि है कोई।
सतन ढिग बैठि बैठि, लोक लाज खोई। वही (15)

—कोई क्या कर लेगा, राजा हो तो अपना राज रख लेगा, धन ले लेगा मगर जिनसे हरि भक्ति का मार्ग मिलता है उन्हें छोड़ने से तो जनम ही अकारथ हो जाएगा। ऐसी उसकी मान्यता उसके पदों से उभरती है। इसलिए उसकी टेक थी कि—

कोई निन्दो कोई विन्दो, म्हें तो गोविंद का गुण गास्यां।
जिण मारग म्हारा साध पधारे, उण मारग म्हें जास्यां।

वही (23)

उसे परिवार निन्दा, कुटुम्ब निन्दा, लोक निन्दा की कोई परवाह नहीं थी। साधु संतों से प्रेरणा लेना या उसमें सुख पाने की उसकी इच्छा अटल थी, अडिग थी। इसीलिए उसने—

"राजकुल की लाज गमाई", और "साधां के संग भटकी" वही (24) उसके कारण—"भाग खुल्यो म्हारो साध संगत सूं सांवरिया की वट की। (वही) इसीलिए चाहे 'मात पिता सब कुटुम कबीला, टूट गया ज्यूं तागा।" वही (26) फिर भी 'उसका' भाग जाग गया और "जनम जनम का सोया मनवा जाग उठा।" (वही) तो 'सीसोदे' ने उसकी बात मानी नहीं वरना वह तो उस 'राज-कुल' को भी 'बैकुंठ ले जाती।' वही (42)

साधु संगति की टेक के लिए उसे 'राजपाट, सुख सुविधा' किसी की परवाह नहीं थी। वह तो इस पर अडिग थी कि—

'राज किया ज्याना नरके दीजे, म्हे भगता री दासी।"

देखा साधू जनन की, म्हारे राम मिलन की आस।—उसकी नजर में तो "राम मिलन की आशा के केन्द्र—साधु संगत" का महत्त्व इतना अधिक था कि उसके माध्यम से ही—

"बड़े घर ताली लागी रे, म्हारे मन री उणारथ भागी री।" वही (2)

वह तो अपने ससुराल में भी साधु संगत की टेक पर अड़ी रही थी—

"राणा ने समझावो जावा, मैं तो बात न मानी।"

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, संतां हाथ बिकानी। वही (30)

जब कभी साधु संगत का जाग जमता था, मीरा का अनोखी प्रसन्नता होती थी—

आज म्हारो साधु जनन नो संग राणा म्हारा भाग भल्या।

साधू जन नो संग जो करिये, चढ़े ते चौगुणो रंग रे। वही (33) वह तो "सब तरह के संतों पर तन मन वारती थी" वही (41)—इसका आशय यह भी था कि "ज्ञान के लिए वह मुक्त मार्ग पसंद करती थी। उसके लिए यदि राणा लज्जित होता था तो मीरा का कथन था—

"अपणे घर का परदा कर ले, मैं अबला बौराणी।"—(वही) उसकी टेक भी—"सेवा करस्या साध की, म्हारे और न दूजो काम। वही (47) उसने तो "साधु सगति ने ही सुगति पाई थी", वही (16) इसलिए—

साधु मात पिता कुल मेरे, सजन सनेही ग्यानी।

सत चरण की सरण रैन दिन, सत्त कहत हू बाणी। वही (30)—और जो माता पिता हो कुल-कुटुम्बी हो उनसे लज्जा कैसी, दुराव छिपाव कसे।

साधु-सगति की इतनी महिमा अन्य किसी भक्त या सत कवि की रचनाओ मे नही मिलती तो इसका कारण सभवत मीरा का राजघराने से जुडे रहने का तथ्य होगा। राजघराने चाहे भजन कीर्तन मडलियो का आयोजन करवा सकते थे, साधुओ की सेवा की व्यवस्था करवा सकते थे, मगर उनकी सगति मे बैठना और उनके साथ उठना बैठना मर्यादा मे नही अटता था। इसी प्रतिष्ठा का खडन मीरा ने किया था, उसी पर टीका टिप्पणी भी हुई थी और अतत मीरा के चित्तौड त्याग का कारण भी यही टेक बनी थी।

(IV) खानपान, वेशभूषा, आभूषण आदि के प्रासगिक उल्लेखो मे जोधपुर-मेडता मारवाड भारतीय सस्कृति मे अपने चटक रगो, वस्त्रो, आभूषणों और खानपान के लिए विख्यात रहा है। मीरा के पदो मे यद्यपि इन वणनो और प्रसगो के बारे मे समृद्ध और विविध सकेत नही मिलते, किन्तु अन्य लोक काव्यो और रासो साहित्य मे पयाप्त सूचनाएँ मिल जाती हैं। मीरा के पदो मे खानपान, वेश-भूषा, आभूषण आदि के पर्याप्त सकेत न मिलने का एक कारण तो उसकी सहज वैराग भावना का हो सकता है, दूसरा उसकी अनुभूति प्रवणता का और तीसरा प्रेम भक्ति की केन्द्रीय वृत्ति का जिसमे इस तरह के सकेत कही प्रासगिक होकर आए हैं तो आए हैं अन्यथा वैसा कोई लक्ष्य रहा नही।

वसे मध्यकालीन सिणगार भोजन की स्थिति आर्थिक सामाजिक स्तरो के अनुसार भिन्न भिन्न रही थी। दूध, दही, घी, छाछ, लूणी, बाजरा, मूग, तिल—सावजनिक खानपान के पदाथ थे। रोटी छाछ, दूध रोटी का चलन लगभग हर परिवार मे था और आज भी वही चलन मिलता है। प्रात काल दही रोटी भी अधिकतर चलन मे है। वार त्योहार और जिमणार म लपसी गात और घी श्रेय स्कर माने जाते थे। लोककाव्यो मे भी उनके उल्लेख आते हैं—

छटठे प्रहरे दिवस में हुई न जीमणवार।
मन चावल, तन लापसी नैणज घी की धार।

अमल पाणी भी राजपूती घराना मे आम चलन की बात रही है जिसका हवाला मीरा के पदो मे भी मिलता है—"राम अमल माती रहे, धन मीरा राठोड।" 33(47) बिम्बा फल (9), दाडिम (9) और फलो (15) के उल्लेख

केवल उपमा मूलक अभिव्यक्ति में हुए हैं। मीरा की जैसी वैराग भावना थी और चित्तौड़ में जिस ढँग से उसने विद्रोहिणी टेक धारण कर रखी थी तथा राणा के कोप की शिकार बनी थी, उस कारण संभव है कि उसे आम मेड़तियों का भोजन—छाछ और रोटी—की ही आपूर्ति की जाती रही हो—

खीर खाड को भोजन त्याग्यो ये बाई, त्याग्यो दिखणोचीर।
राणा सो वर त्याग्यो ए बाई, सब संतन मे म्हारो सीर। 9(205 13)

बास्या सूक्या टुकड़ा ये भाभी और मिलसी खाटी छाय।
रो रो भूखा मरो ये भाभी, नहीं मिले हरि आय। (वही)

बास्या तो कूस्या टुकड़ा ये बाई, पीस्या खारी छाय।
म्हं रोवा, भूखां मरां ये बाई, जबरे मिलेगो हरि आय।
माया म्हें तो यू रे लजी। (वही)

दूध दही गोरस के संकेत ब्रजवर्णन के कुछ पदों में मिल जाते हैं—33(163, 168 व 178) में "भोजन दूध दही को", "गोपी दही मथत सुनियत है," 'दधि को नाम बिसरि गयो प्यारी"—जैसे ही।

बाकी सम्पन्न परिवारों में खानपान का स्तर काफी अच्छा और भली भाँति की मिठाइयों चटनियों, अचारों आदि से सम्पुटित होता था। राज परिवारों में मेवा, मिष्टान्न, खाड, खीर बटु मधु, द्राक्षा, केसर, कपूर कस्तूरी, भाँति भाँति की मिठाइयों आदि से सम्पृक्त होता था। नशे के लिए अमल पानी, ताम्बूल सेवन, मदिरा आदि का चलन भी लोक व्यापी था। मगर सार्वजनिक जीवन में मूंग, बाजरा और गोरस की चीजों का चलन ही प्रधानतया था। भात का चलन बहुत विरल और वार-त्यौहार पर ही होता था, वह भी घी शक्कर के साथ। जब किसी प्रसिद्ध वीर की मृत्यु होती थी या शोक होता था तो भात को वर्जित किया जाता था। वह शोक मनाने की प्रथा थी।

वस्त्राभूषण के बारे में भी उसी तरह से प्रासंगिक संकेत ही मीरा के पदों में मिलते हैं। अन्य स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं के अनुसार स्त्री-पुरुष, बालक-बूढ़े सब चटक्दार रंगों के भारी वस्त्राभूषण धारण करते थे। तथापि विधवाओं के लिए वस्त्राभूषण, सिंगार आदि की वर्जनाएँ थीं। पुरुषों के लिए पाग और उस पर प्रतिष्ठा के अनुसार कलगी पेंच आदि इज्जत की चीज होती थी। जीमा, जामा, अंगरखा, पीतांबर, दोलगी धोती, कमर बंद, कछनी, मोजड़ी—वेशभूषा में प्रचलित वस्त्राभूषण थे। वीर लोग पैरों में लंगर भी पहनते थे। स्त्रियों में घाघरा, चूनड़ी, काचली चूड़ा, गले में हार, कान, नाक, सिर पैर के अनेक तरह के आभूषण आर्थिक-सामाजिक स्थिति के अनुसार प्रचलित थे। सबके लिए वही मगर स्तर भेद से रांगे, पीतल, चाँदी, सोने के ये हुआ करते थे। मीरा में एक

प्राचीन चित्र मे 11 (आरभ मे) मीरा को घाघरा, चुनडी, काचली के साथ बताया गया है और बोरही, कण फूल, नौसर हार, चूडले भी चित्रित हैं।

मीरा के पदो मे वस्त्राभूषण के जो प्रासगिक सकेत आए हैं वे या तो कृष्ण के स्वरूप वणन के रूप मे या जोगी के उल्लेखो मे या अन्यथा रूपो मे आए हुए हैं।

कृष्ण के प्रसग मे कृष्ण के प्रसग मे मीरा का वस्त्राभूषण का वणन परम्परित भी है और 'अपनी छाप वाला' भी है। अधिकतर वो 'मोर मुकुट, तिलक, कुडल,' 33 (2) कमर मे छोटी घटियो वाली करधनी, पैरो मे नूपुर, 33 (3) पीताम्बर, गल मे वैजयती माला 33 (6)—और ऐसे ही रूप मे 'कालिंदी क तीर हो काहा, गउवां चराय' वही (6) और 'सीतल कदम की छहियां मुरली बजाय' कहकर चित्रण किया गया है। मगर, कही उनके 'बांके, छैल छबीले रूप' को उकेरते समय 'बक्ट छवि' उभारी गई है। उसम 'भौंह भी बांकी, अलकावलि भी बांकी, पाग भी बांकी और बाकी पाग पर लट भी बांकी' वही (7) है। उसके साथ 'कटि बांकी' और 'कर मे मुरली भी बांकी' हैं। कभी 'तिलक' केसर का कहा गया है, कभी 'चदन का'। इसका मतलब यह कि चदन मे केसर घिसकर तिलक करने की प्रथा जब भी थी। अधिकतर तो कृष्ण की वेशभूषा, 'मोर मुकुट पीताबर सोहे, गल बैजती माला" वही (154) वाला ही है, उसमे कभी 'केसर का तिलक' जुडता है तो कभी 'हरि के कुडल वही (164) झलकते हैं। एकाध स्थान पर मीरा के कृष्ण 'रतन सिंघासण पर बिराजते' हैं और 'तुलसी का मुकुट' वही (163) धारण करते हैं। जोधपुरी प्रभाव से एक पद मे मीरा के कृष्ण 'पीताबर फेंटा बाँधे, अरगजा से अपने को सुवासित किए हुए' भी हैं। वही (166) वे 'ठाकुर' रूप मे मीरा को 'दरसन' देते हैं। वैसा ही पूरा मारवाडी पुरुष का रूप मीरा उकेरती है—

आवत मोरी गलियन मे गिरधारी।
मैं तो छिप गई लाज की मारी।
कुसुमल पाग केसरिया जाना, ऊपर फूल हजारी।
मुकुट ऊपर छत्र बिराजे, कुडल की छबि न्यारी।
केसरी चीर, दरयाई को लैंगो, ऊपर अंगिया भारी।
आवत दखी किसन मुरारी, छिप गई राधा प्यारी।
मोर मुकुट मनोहर सोहै, नथनी की छबि न्यारी।
गल मोतिन की माल बिराजै, चरण कमल बलिहारी। वही (172)

—यह मीरा क कृष्ण का राज रूप है जो तत्कालीन पुरुष वेशभूषा का चित्र स्तुत करता है।

जोगी रूप के उल्लेखों में मारवाड क्षेत्र मे 'जोगी' नाथपथी योगियो के लिए

प्रचलित सम्बोधन है। उस संस्कृति में नाथ पथ का प्रभाव इतनी गहराई तक था कि मीरा के पहले से ही लोककाव्यों और कथाओं में प्रियतम के लिए जोगी का सम्बोधन और जोगसाधना से उसे पाने के अभिप्राय प्रचलित थे।

मीरा ने नाथपंथी योगी के शील, व्रत, सदाचार और उसकी वेषभूषा आदि को प्रियतम कृष्ण पर आरोपित किया है—

धूतारा जोगी एक रसू हँसि बोल।
जगत बदीत करी मनमोहन, कहा बजावत ढोल।
अग भभूति, गले मृगछाला, तू जन गुढ़ियां खोल।
सदन सरोज वदन की सोभा, ऊभी जोऊँ कपोल।
सेली नाद बधूत न बटवो, अजू मुनी मुख खोल।
चढती बेस नैण अणियाले, तू घरि घरि मति डोल। 33(62)

वैसे ही योगियो के परम्परित रूप और वेशभूषा को उकेरा गया है—

आसन मांडि गुफा मे बैठो, ध्यान हरी को लगायो।
गल बिच सेली, हाथ हाजरियो, अग भभूत रमाय। वही (189)

—बस, जोगी रूप मे प्रियतम की वस्त्राभूषण सज्जा का इतना ही उल्लेख है। इस रूप के वर्णन मे मीरा की रुचि इतनी नहीं रही जितनी कि उस परम जोगी को पाने की साधना में 'जोगन' का रूप बनाने और खोजने के अभिप्राय मे थी।

"चूड़ो म्हारे तिलक अर माला, सील बरत सिणगारो।
और सिंगार म्हारे दाय न आवै, यो गुर ग्यानहमारो।
वही (23)

वह 'जोगन' बन कर 'पचरग चोला पहर कर' झिरमिट खेलने' जाती है वही (20) और वहा अपने सावरे से तन खोलकर मिलती है।' 'इमरित प्याला पीने की इच्छुक' मीरा—

"मोती माणक परत न पहरूँ, मैं तो कबकी नटगी।
गैणो तो म्हारे माला दोवडी, अर चन्दण की कुटकी। वही (24)

—अपने प्रियतम से मिलने के लिए, वह जोगन—

या तन ऊहर भेस्म रमाऊँ, छोर करूँ सिर केस।
भगवां भेम धरूँ तुम कारण, ढूंढत च्यारू देस। वही (70)

और—

तेरे कारण जोगण हूंगी, दूंगी नगर बिच फेरो।
अग भभूत गले मिग छाला योगन भस्म करूँ री।
अजहू न मिल्या राम अविनासी, बन बन बीच फिरूं री। वही (94)

वह पूरी तरह जोगण वेस धारण करके अपने जोगी को ढूंढना चाहती है—

"माला मुदरा मेखला रे बाला, खप्पर लूगी हाथ।
जोगिण होय जग ढूंढ, सू रे, म्हारा रावलियारी साथ। वही (118)

इसके साथ ही जोगियों के 'कीकरी' के वाद्य का भी हवाला है। वही (151) य सब वेशभूषा जोगी पंथियो की है जिनका चलन मीरा के समय मे अधिक था और जिनके अभिप्राय लोकमानस मे गहराई तक पैठ चुके थे।

अन्य प्रसगों मे ऐसे ही प्रसग, तत्कालीन वेशभूषा, सिंगार आदि के, बिखरे-बिखरे सकेत मिलते हैं। कही अभिसार मूलक 'पचरंगी चोले' (20) का सकेत है, कही सौभाग्य चिह्न चूडे' का (23), कही 'मोती, माणिक जडे आभूषणो का' (24), कही सामान्य जनो की स्त्रियो के सुहाग चिह्न 'पोत' (25) का तो कही सम्पन्न वग के 'पाट पाटम्बर' और 'दिखणीचीर' (25) का हवाला है। 'हजारी हार' व 'रतन जडित आभूषण' (30) राजघरानो के आभूषण थे, तो 'बाजूबद, कडूला और माग मे सिंदूर' (32) सुहाग के चिह्न थे। 'काजल, टीकी' (35) सावजनिक उपयोग के सिंगार, तो 'नौसर हार' (44) राजमहलो मे ही समव था। सामान्य जनो के 'चीर' 'चूडियाँ' और 'काजल' (48) भी सुहाग चिह्न होते थे जिन्हें प्रिय वियोग मे छोडने तोडने की प्रथा थी। वही 'माँग भरने' (48) या 'सजाने' की भी रीत थी 'दुहाग' मे माँग बिखेर कर केस खुले छोड दिए जाते थे। 'बालो मे पट्टी पाडना', और 'माँग सवारना' (129) सुहागिनो का काम था, जबकि बैरागन होने पर 'भगवा चादर' धारण की जाती थी। 'हार', 'चीन माल चतुरभुज चूडलो', 'झाँझरिया', कठी, 'बिछुवा', 'घुघरू', 'अनवट', 'कमर पेटी', 'टीका (139)—ये सब विविध प्रकार के आभूषण थे। मीरा ने इनके हवाले सयोग वियोग की अनुभूतियो के प्रसगत दिए हैं।

(v) सुहाग दुहाग की सांस्कृतिक चेतना के रूप में मीरा के पदो मे तत्कालीन सामाजिक रुढिया, रीतियो और मान्यताओ का दिग्दशन सुहाग दुहाग की चेतना के हवालो से भी होता है। सुहाग के चिह्न चूडा, टीकी, काजल, माग, सिंदूर, चुनडी चीर आदि को दुहाग के समय या तो स्थगित करने की रीति थी या फिर उन्हें मिटाने की। मीरा ने इष्ट के वियोग मे अनेक बार ऐसी अभिव्यक्ति की है कि—

चूडो म्हारे तिलक अरु माला, सील वरत सिंगारो।
और सिंगार म्हारे दाय न आवै। 33(23)

अपने 'दुहाग' की बेला मे मीरा ने 'मामूली कँठी माला' धारण कर रखी थी। उससे कहा जाता है—

छापा तिलक गल हार उतारो, पहिरो हार हजारी।
रतनजडित आभूषण पहिरो, भोगो भोग अपारी। वही (30)

अपने प्रिय के वियोग मे मीरा 'दुहाग' की रीति का पालन करती है—

गहना गाँठी हम सब त्यागा, त्यागो कर रो चूडो।
काजल टीकी हम सब त्यागा, त्यागो छै बाधन जूडो। वही (35)

बल्कि,

"महल अटारी हम सब त्यागा, त्यागो थारो बसनो सहर।
काजल टीकी हम सब त्याग्या, भगवी चादर पहर। वही (37)

—भगवा चादर पहनकर वैरागन कहलाना 'दुहाग सूचक' था। दुहाग का एक लक्षण था कि वैसी महिला रूखा सूखा खाती थी, भूमिशयन करती थी और अन्न पानी का त्याग करके अपने को तपस्या मे झोक देती थी—

"सीप भर्‌यो पाणी पिवे रे, टाक भरयो अन्न खाय।" वही (47)
"खास्यो तो कूस्यो टूकडा ये बाई, पीस्या खाटी छाय।
भुईं हूवाँ, भूखा मराँ ये बाई, जब रे मिलेगो हरि आय।
9(205 13)

इतना ही नहीं दुहाग की स्थिति मे—

"फाड़ूँगी चीर करूँ गल कथा, रहुगी वैरागण होय री।
चूरियो फोरू माँग बिखेरू, कजरा मैं डारू धोयरी। 33(48)

सुहाग की वेला मे सिगार करना, मोतियो के चौक पूरना, वही (54) मगल गाना बधाइया झेलना सास्कृतिक चेतना के तत्व ये तो दुहाग मे "घर मे दीप जलाना' भी वर्जित होता था—

बिन पिया जोत मदिर अँधियारो, दीपक दाय न आवे। वही (76)

और

"दीपक जोय कहा करू सजनी, पिय परदेस रहावे। वही (79)

सुहाग हो तो—

रतन करूँ नेवछावरी, ले आरति साजूँ हो।
पाँच सखी इकठी भई मगल गावे हो।
पिय का रली बधावण, आणद अगिन मावे हो। वही (148)

इस तरह से सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति मीरा के पदों में मिलती है जो बताती है कि तत्कालीन लोकतत्वों की सहज प्रकाशिका मीरा थी।

(vi) राजरीतियों के प्रासगिक हवालों मे एक ओर जहां लोकजीवन और लोक सस्कृति की चेतना मीरा के पदो मे व्यक्त हुई है, वहां प्रासगिक रूप से राज-रीतियो के भी कुछ सकेत मिलते हैं। मेडता मे यद्यपि राजरीतियो मे और लोक-रीतियो मे स्वरूपगत अतर नही था किन्तु चित्तौड मे था।

चित्तौड मे राजघराने को शासन प्रतिष्ठा का परम्परित दर्जा मिला हुआ था। वैभवपूर्ण जीवन, विलासितापूर्ण उपभोग और साधारण जनो से अलगाव वहां की राजरीतियो के आधार थे जबकि मेडता नवस्थापित राज था जहां राज घराने और जाट, सरदार और भाई बधु कठिन सघर्ष मे साथ साथ रहते थे। मेवाड मे राणा अपने थाल मे से कुछ सामग्री दाने मे रखकर किसी सरदार को दे सकता था और उसे सौभाग्य समझकर अपनाया जा सकता था, मगर मेडता की ओर ठाकुर सरदार और अन्य उत्पादक जन एक थाल मे भोजन करते थे। घनिष्ठता, सम्पर्क और समानता की यह रीति आज भी मारवाड के कई क्षेत्रो मे लोकरीति के रूप मे देखी जा सकती है। मीरा वहां की उपज थी जिसे राज-वधू बनकर एक विपरीत रीतियो वाले समाज मे आना पडा था जहां स्त्री, स्त्री का घूघट निकालती थी, बोलना तो अपमान करने के बराबर माना जाता था।

नारी भावना के साथ 'हुजूरी', 'पांव लिपटान' जैसी रीति रही थी। मीरा के पदो मे इसीलिए 'दासी मीरा' और 'चरण लिपट परूंरी' जैसे सहज प्रयोग हुए हैं।— 'ऊभी ढाडी अरज करत हूँ", 33(5) "मीरा कहे मैं दास रावरी" (4), "तन मन धन गिरधर पे वारूं, चरण कवल मीरा लपटानी" (8)—मे नारी की समर्पण रीति और पुरुष के मुकाबले उसकी व्यवहार रीति के सकेत हैं।

साधारण लोक जीवन मे तो पत्नी परिवार के भरोसे रहकर दुहाग की अवधि भोग सकती थी, किन्तु राजनीति मे राजवधू को प्रिय की प्रतीक्षा, दुख भोग और मौन विलाप निभाना होता था। मीरा के कई पद ऐसा सकेत करते हैं—

"लोक कुटुम्बी गरजि बरजहि बतियां कहत बनाई" (10), यदि वैसी रीति का पालन न हो अथवा अन्यथा रूप से अपनी व्यथा को भुलाने की कोशिश की जाए। यदि प्रीतम कभी भूले भटके 'रीझ' जाएं 'तो बड भागण रीझै हो' (13) माना जाता था, वरना तो राजनीति मे—'जो पहिरावै सो ही पहिरू', जो दे सो ही खावू' 'जहां बिठावे तित ही बैठू, बेचे तो बिक जावू (17) वाली रीति का पालन करना पडता था।

निरतर युद्ध और सघर्ष मे लिप्त राज पुरुषो की पत्नियो को सदा उनकी प्रतीक्षा ही रहती थी। यही प्रयत्न करने पडते थे कि—'तरो ही उमरण, तेरो ही सुमरण' (18), करते रह कर "वोहि जेहि विधि मेरो साहिब रीझै, तेहि तेहि विधि कीजे हो"—के उपाय करके उसे रिझाये रखना पडता था।

यदि पति सेवा, पति आज्ञा और स्थापित मर्यादा का पालन न हो तो राज-

रीति निभाने के लिए सुवचन, सीख आदि भी दिए जाते थे—

"लाजे पीहर सासरो, माइ तणो मोसाल।
सब ही लाजे मेडतिया जी, थाँ सू बुरो कहे ससार।" वही (29)

—मेडता मे तो साधु सगति पर उतना अकुश नही था, मगर चित्तौड मे था और राजवधू होने के नाम पर चित्तौड की प्रतिष्ठा मेडते मे भी निभानी जरूरी थी। इसलिए मीरा के सत्सग की टेक का जैसा विरोध चित्तौड में था, वैसा बाद मे मेडतियो ने भी किया ही होगा।

राणे रोस कियो था ऊपर, साधाँ मे मत जारी।
कुल को दाग लग छँ भाभी निंदा हो रही भारी।
साधाँ र सग वन वन भटको, लाज गमाई सारी।
बडा घर थें जनम लियो छँ, नाचो दे दे तारी।
वर पायो हिंदवाणे सूरज थे काईं मन धारी। (30)

—बडे घर और बडे कुल की स्त्रिया की मर्यादा महलो मे रहने की और प्रतिष्ठा के अनुसार परदे म रहने की थी। उनकी प्रतिष्ठा इसमे भी कि—

"पहिरो हार हजारी", 'रतन जडित आभूषण पहिरो", और "भोगो भोग अपारी" (30)। उसके साथ-ही साथ 'ऊँचे चढि चढि' अपने प्रिया का 'पथ निहारो' (106) और "रोय रोय अँखियाँ राती करो।" (वही)

कभी 'प्रीतम' आ जाएँ या 'उनके आने की भनक मिले' तो 'सिंगार कर, मोती चौक पूराने, आरती सजाने (148) और मगल गीत गाने (54) तथा मोती रतन आदि की नेवछावरि करने' की राजरीत थी। और, न आएँ या आकर भी न आएँ तो—

"फारूँ गी चीर करूँ गल कथा, रहूँगी बैरागण होय री।
चूरियाँ फोरूँ, माँग बिखेरूँ, कजरा मैं डारू धोय री।" (48)

—इस तरह अपने को 'दुहागन' बनकर जाहिर करने की रीति थी।

यह सार्वजनिक रीति भी थी कि 'प्रिय परदेस में हो' तो घर अँधेरा रखा जाता था। यही रीति राजघरानो में भी थी—

"दीपक जोय कहा करूँ सजनी, पिय परदेस रहावै।" (79)

—इस तरह से मीरा क पदों में तत्कालीन राजरीतियों और लोकरीतियों के कुछ सकेत मिल जाते हैं। वैसे भी अन्य स्रोतो से पता लगता है 13(238) कि राजरीति में पत्नी के लिए पति का परमेश्वर मानना, प्रात उठकर उसका दर्शन करने, कोई शिकायत या शिकवा न करने, सब कुछ सहन करने और नम्रशील बने रहने का महत्त्व अधिक था। 'मान' करना, रूठना जैसी क्रियाओं

को दुर्गुण माना जाता था। राजघरानो मे बहुपत्नी की प्रथा थी, इसलिए भी पत्नी को अपने पति की प्रतीक्षा करनी पडती थी। तदथ हर एक को पति को रिझाए रखने के उपाय करने पडते थे। पतिपरायण होने से और पति का विशेष स्नेह मिलने पर उसका राजनीतिक सम्मान भी बढता था। अवमानना की स्थिति मे 'महलो से उतार देने की रीति' भी थी। दास-दासियो मे कमी, भोजन पानी पर नियत्रण और सुख साधनो मे कटौती के साथ कभी-कभी 'हाथ खच के परगने' भी जब्त कर लिए जाते थे। अत राजपूती वधुआ को पूणतया परवश होकर रहना पडता था।

(vii) लोकरीतियो और प्रथाओं के वक्ता विधानों मे मीरा के पदो मे राजरीतियो की तरह लोकरीतियो और प्रथाओ के सकेत भी अभिव्यक्ति माध्यम के रूप मे अथवा विश्वासो, मान्यताओ के आधार रूप मे बिखरे हुए मिलते हैं। इन्हें हम कुछ शीषको म रखकर देख सकते हैं—

(क) अवतार मान्यताओ के रूप मे,
(ख) लीला धारणा के रूप मे,
(ग) पुराण-मान्यताओ के विश्वासो म,
(घ) जीवात्मा दशन की मान्यता मे
(च) विवाह, विरह आदि के रीति सकेतो मे,
(छ) जन्मातर से मुक्ति-चाह की धारणा मे,
(ज) ससारी काय व्यापार-बनज आदि के सकेतो मे।

हर समाज मे—देश काल के अनुसार—अपनी कुछ मान्यताएँ होती हैं जो सामाजिक जीवन प्रथाओ आदि के मूल मे प्रेरणा केन्द्र बनती हैं।

मीरा के युग म भी युगयुगान्तर से आई हुई कुछ मान्यताए रही होगी। जो उसके पदो म अनुभूति या अभिव्यक्ति के रूप मे उभरी हैं—

(क) अवतार मान्यताओं के रूप मे पुराने समय से नाना मत मतान्तरो ने ईश्वर के मूल रूप को अवतारो के रूप मे अवतरित माना है और उन्हें सासारिक कष्टो, सघर्षों मे रक्षक की तरह स्वीकार किया है। मीरा के समय मे मेडता क्षेत्र मे—नृसिंह अवतार, चार भुजा और विष्णु अवतारो की लोकमान्यता थी। उसके पदो मे इन अवतारो और उनसे जुडा पौराणिक कथाओ के सकेत स्तुति, प्राथना, विनय सम्बन्धी अनुभूतियो मे आए हैं—यथा—33(1), (63), (94), (65), (138) मे खास करके विष्णु अवतार की महिमा का बखान किया गया है। दूदाजी वैष्णव थे और चार भुजा (विष्णु) उनके वश परम्परागत इष्ट थे। मीरा के पदो मे, अत (एक पद को छोडकर), विष्णु का ही स्मरण हुआ है। ऐसे अवतारो को तरण तारण (61)' लज्जा रक्षक (64)' 'कष्ट निवारक, (63)' 'आरति हर' (65) के रूप मे स्मरण किया जाता है और उस माध्यम से

हारी-थकी आत्मशक्ति को सजीवन दिया जाता है। लोक मे भी अवतार मान्यता बहुत गहराई तक जमी हुई है।

(ख) लीला धारणा के रूप में ईश्वर को जगन्नियता, सूत्रधार और सचालक मानने की धारणा बहुत पुरानी है। उसके अवतारो के साथ भी लीलाओं के विश्वास बँधे हुए हैं। किन्तु 'लीला' का बहुप्रयोग कृष्ण अवतार के साथ है। मीरा की भक्ति 'कृष्ण' केंद्रित थी और उसके पदो से सकेत मिलता है कि उस समय कृष्ण लीलाओ मे व्रजलीला (गोप) (164), बाललीला (165,66) माखन लीला (167), वशीलीला (166) नागलीला (168), चीरहरण लीला (169), रासलीला (172 73), पनघटलीला (174,75,76), फागलीला (177), दधिलीला (168,79), मथुरालीला (181,82 83), योगलीला (184, 85, 86), सुदामालीला (188) का चलन हो चुका था। लीलाओ की ऐसी विविधता अन्य किसी अवतार के साथ नहीं थी।

(ग) पुराण मान्यताओं के विश्वासों में—अवतारों के साथ, उनकी स्तुति, वदना उनसे सम्बन्धित उत्सवों, आयोजनो आदि के साथ पुराण मान्यताओं के विश्वास भी जुडे हुए होते हैं। उन विश्वासों के बल पर ही, आज भी रामनवमी, दशहरा, रक्षाबधन, होली गणगार जैसे त्योहार, पर्व, उत्सव आदि लोक जीवन मे आयोजित होते रहते हैं। उसी तरह दान, पुण्य, नित्तनेम, व्रत-पालन, तीरथ आदि लोक जीवन मे क्रियाशील होते हैं। मीरा के पदो में ऐसे कुछ विश्वासों के सकेत मिलते हैं—

> चदा जाएगा, सूरज जायेगा, जायेगी अकासी।
> पवन पाणी दोनू ही जायेंगे, अटल रहे अविनासी। 33 (20)

मे अनत का विश्वास,

> ना घर तेरा, ना घर मेरा, गावै मीरा दासी। (वही)

म असारता का,

> खोटी न कररयाँ जिव न सतास्या, काई करसी म्हारो कोई।

मे शील की निर्भयता का,

> गज से उतर के खर नहिं चढस्याँ, ये तो बात न होई। वही (23),

मे ससार की हेयता का,

> चरणामृत को नेम हमारा नित उठ दरसण जास्याँ। वही (34)

में नेम धरम का,

> झूठा माणक मोतिया री, झूठी जगमग जोति।
> झूठा सब आभूषणाँ री, साँचा पियाजी री पोति। वही (25)

मे ससार की अनित्यता का,

छैल विराणो लाख को हे, अपणे काज न होइ ।
वाके सम सिधारसो हे, भला न बहसी कोइ । (वही)
वह होणो अपणो भलो हे, कोढी कुष्टी काइ । (वही)

मे पतिनिष्ठा का,

आटेज पूजैं ओरज्याजी थे क्यू न पूजो ओर ।
मन बधत फल पावस्योजी, थे क्यू पूजे ओर । वही (20)

मे पूजा परिणाम का,

चोरी करा न मारगी, नहिं मैं करूँ अकज ।
पुन के मारग चालतां जी, झक मारे ससार । (वही)

मे शीलव्रत का,

राणाजी म्हारी प्रीत पुरवली मैं काई करूं । वही (42) और
"रामजी काज सवारिया, म्हाने भावे दरदन मार।"

मे अतिविश्वास की धारणा है ।

— ऐसे अनेक विश्वास और ऐसी अनक धारणाएँ मीरा के पदो मे मिलती हैं जो उस समय के लोकमानस के घटको का हवाला देती हैं—

"विष का प्याला राणाजी भेज्या, अमत कर आरोगे म" वही (40)—भक्ति की निष्ठा और उसके सुफल का 'विश्वास' जमा हुआ बैठा है क्योकि, 'कर चरणामत पी गई म्हाने रामजी के विश्वास' वही (42) वाला विश्वास पुराणो से छन-छन कर लोक मानस मे गहराई तक उतर गया है । 'बैकुठ जाना' और 'अपन साथ दूसरो को भी तार देना' का विश्वास भी उस समय था—

राठोडा री धीवडी जी, सीसोदयाँ र साथ ।
ले जाती बैंकुठ कू, म्हारी नेक न मानी बात । वही (पद)

—और इष्ट के प्रति निष्ठा की गहराई इतनी अधिक कि घर, द्वार, राज, परिवार छूटे तो परवाह नही—हरि रस्या कत जाणा ! वही (44)

'पूवज म' और 'पुनर्जन्म' भी मजबूत पौराणिक विश्वास था । आज भी है । 'प्रीत पुरवली मैं काइ करू' के साथ 'पूरबजनम की प्रीत पुरानी सो क्यूं छोडी जाय' वही (46) और 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर पूरबजनम को कौल — —मीरा के पदो म व्यक्त है । इष्ट मे भरोसा भी अनन्य भाव से रखा जाता था कि थारी 'भारी ना मरूँ, म्हारे रावण हारो और' वही (47)।

और इस दुनिया मे, जगत मे, घर-परिवार मे लोग मिलते हैं तो वह 'सुख रासि' होती है मगर बिछुडते हैं तो सतापकारी होता ही है । पुराण मान्यता जमी कि—'मीरा के प्रभु हरि अविनासी, मिलि बिछुरो मत कोई री।' (48)—कितनी मगलमयी कामना है जो पुराण-मान्यताओं न हम दी है कि उसके बल पर

जीवन आशा किरणें फेंकता है और उनके भरोसे सतापो को, कष्टो को सहने की ताकत मिलती है। जब तक अपने को गुणहीन, अबला और नीचा न माना जाए तब तक इष्ट के प्रति ऐसा विश्वास और इतना भरोसा उपज भी तो नहीं सकता। इसलिए—

मैं गुणहीन गुण नहिं गुसाईं, तुम समरथ महाराज।' वही (51)

—केवल मीरा की वानी नहीं है। वह लोक जीवन की जड है और हर भक्त कवि में उसका रस स्रोत उजागर मिल जाता है। 'भव सागर' का विश्वास, 'उससे पार पाने की कामना, उसके लिए 'भक्ति' व साधना' हजारो वर्षों से लोक चेतना के तत्वो मे रही है। 'तभी भी सागर मे बही जात हूँ, वेग म्हारी सुध लीजे हो।' (53) कहकर मीरा उस लोक मान्यता को अभिव्यक्ति देती है।

(घ) जीवात्मा दर्शन की मान्यताओं मे भारतीय दर्शन जीव को परमात्मा का विकरण मानते हैं और कर्म के अनुसार जीव को चौरासी लाख योनियो म भ्रमणशील। तदुपरात यदि 'जीव मुक्ति' हो गई तो वह प्रकाश पुज मे एकाकार हो जाता है अन्यथा पुन भवचक्र म फँस जाता है। यह दार्शनिक मान्यता लोक जीवन मे बहुत गहराई तक धँसी हुई है, बहुत पुरानी है और सारे सांसारिक क्रियाकलापो अध्यात्म चेतना सदाचार व आस्तिकता के मूल मे भी है। मीरा के पदो मे यह लोक मान्यता कई तरह से प्रकाशित हुई है—"म्हारो जन्म मरण का साथी, थाँने नहिं बिसरूँ दिन राती" 33 (86), से लेकर, "म्हारी प्रीत पुरबली मैं काइ करूँ, और 'म्हारे भौ भौ रो भरतार' तक उसने इसी लोक मान्यता को अभिव्यक्त किया है। 'पुरबजनम को कोल' (19) मे भी वही मान्यता मुखर है। और, इस मान्यता के आधार पर ही मीरा की भक्ति की टेक टिकी हुई है उसका 'प्रभु के मिलने का विश्वास टिका हुआ है और एकात समर्पण का दुराग्रह भी।

इसी जीवात्म दर्शन की मान्यता के आधार पर जीव 'दास' है और परमात्मा 'तरणतारण' है 33(1) वह परमात्मा 'सतन सुखदायी' है, 'भगत बछल' (2) है और अविनाशी होने से उसके बिना जीव का कोई दूसरा आधार है ही नहीं, वह 'जीवन प्राण आधार' (4) है। उसे 'जीवन मूर जड़ी' (11) भी कहा गया है और यह भी कि 'हरि रूस्या क्त जाणा।'

उस परमतत्व को चाहे जिस रूप म जीवात्म भजे, लक्ष्य वही होता है कि 'भव सागर में बही जात हो, वेग म्हारो सुध लीजे है,' मार्ग चाहे भजन का हो, सत्सग का हो, साधना का हो। मीरा के समय मे नाथपथ सिद्धो और लोक देवताओं की सिद्धियो का भी मेड़ता के लोकमानस पर गहरा प्रभाव था। अत मीरा के पदों म जीवात्म दर्शन के निरगुनिया तत्व भी प्रकाशित हो गए हैं।

वह 'जोगी' हो गया है जो 'आसन मांडि गुफा मे बैठा', 33(189) है। उसकी साधना बडा कठिन है और 'जोगी से प्रीत करके' काहू न सुख लह्यो' क्योकि जोगो किसी का मीत नही होता। वह तो 'ज्योति स्वरूप' होता है जिसकी साधना 'सुन महल मे दिवला जलाकर रात दिन बलते रहने' मे हाती है। साधना सम्बन्धी ऐसे लोक विश्वास लोक मे आज भी हैं।

(च) विवाह विरह आदि के रीति सकेतों मे उसी तरह सामाजिक और पारिवारिक जीवन की तत्कालीन लोक रीतियो के छिटपुट सकेत भी मीरा के पदो मे मिल जाते हैं। मीरा को 'अपने मनमोहन का 'बाका' रूप भाता है— 33(7) जा बताता है कि बाके राजपूत' समाज म आकर्षण के केंद्र रहते होंगे। 'टेढी पाग लर लटके' म किसी बाक राजपूत नवयुवक को देखा जा सकता है।

सामाजिक रीति रही हागी कि राजपूत किशोरी इधर-उधर नजर न डाले, घर परिवार म पर्दानशीन रहे वरना लोग और कुटुम्बी सब टीका टिप्पणी करेंगे। राजघराने म तो वह मर्यादा और भी कठोर हाती थी—तभी मीरा के मुक्त व्यवहार पर—'लोक कुटुम्बी गरजि बरजहिं, बतियां कहत बनाई' 33(10)। ससुराल मे तो वह मर्यादा रीति और भी अधिक कठोर हाती थी, फिर चित्तौड जस राजघराने मे तो राजरानी को तो लाज रखनी ही थी। परन्तु मीरा तो— 'जेठ बहू की कान न मानू घघट पड गई पटकी' (24) ऐसे म ही तो मीरा का कहा जाता था— बड घर म जनम लियो है, नाचो दै दै तारी।'

बर पायो हिंदवाणे सूरज, थे काइ मनधारी। 33(30)

यानी रीति थी कि 'बडे घर की वहू' असूयम्पश्या [illegible] कुल की मर्यादा रहती है। उसकी कुल मर्यादा की रीति थी कि [illegible] आभूषण पहिरो और आपार भोगा का भोग करो। (वही) [illegible] भगवा, बांधे कठी माला' यानी 'साधु सगति' वहाँ प्रतिबन्धित [illegible]। वहाँ तो 'साधु मात पिता कुल मेरे, सजन सनेही ग्योनी' ये (वही) [illegible] विचार म रीति अलग थी—कि साधु सता का साथ करने से—

'लाजै पीहर सासरो' [illegible],
'सबही लाजै मेडतिया जी', [illegible]। वही (29)

एक तरफ तो ऐसी रीति थी और [illegible] के समय मगन होकर नाचन और [illegible] की [illegible]
वही (34)

तथा छाछ का भोजन करना' 9(205-13) ऐसा दह मीरा के लिए था, सिर्फ इसलिए कि मीरा को राजरीतियो की कठोर मर्यादा स्वीकार नही थी और वह साधु-संतो से ज्ञान और भक्ति की अपनी लगन छोडना नही चाहती थी।

राजपूत घरानो मे पति सदा युद्धरत रहता था और पत्नी उसके लिए शुभ कामना करते हुए प्रतीक्षारत रहती थी। 'ऊँचे भवन चढि चढि' पति का 'पथ दखना' और 'आने की भनक' मिलन पर 'मोतियन चौक पूरना', 'आरती सजाना' 'नवछावरि' 33(148) करना, 'मगल गाना' 33(54) ऐसी—रीति थी। और पत्नी का यही कुल धम था, यही उसका शील था और यही मर्यादा थी।

दुहाग की स्थिति म या पति द्वारा उपेक्षित होने पर पत्नी को 'अनसिंगारे रहने', 'भूमिशयन करने' और 'परासचित' करने की रीति थी।

> "फाड़ँगो चीर, करू गल कथा रहूँगी बैरागण होइ री।
> चुरियाँ फोरूँ, माँग बखेरूँ, कजरा मैं डालू धोइ री।'
> 33(48) या कि

> ' बास्या कस्या टूकड़ा ये भाभी और मिलेगी खाटी छाय।
> रो रो भूखाँ मरो ये भाभी, नही मिलेगो हरि आय।'
> 9(205 13)

वैसे ही विरह की स्थिति म दीपक न जोने', 'सिर के केस खुल रखने', सिंगार पटार न करने' और 'रूखा सूखा खान की रीति थी। वह आज भी मारवाडी गाँवो म मिल जाती है—

> सीप मर्‌यो पाणी पिय, टाक मरयो अन खाय।

और घर म होते हुए भी पति 'पट न खोले' और 'मुख न खोले' 33((68) तो पत्नी के लिए मरणयोग ही बनता था कि वैसी स्थिति मे—'लइ कटारी कठ सरूँ, मरूँगी विष खाइ' (वही) एसी रीति भी रही होगी। पति कामना के लिए गणगोर, करवा चौथ जैसे व्रत उपवास तो सावजनिक थे और आज भी हैं मगर अन्तर्वामना की पूर्ति के लिए कन्याएं 'छागे लघन' 33(74) भी करती थीं।

आमतौर पर परदेस गए प्रीतम के सदस आने जाने वाले पथिको से मिलत रहत थे, भेजे भी जाते थे, जिनके हवाल पुराने लोक गीतो मे मिलते हैं—'वाट, वटाउडा म्हारा मायेला, ऐके सनेसो जइ केजा रे।' किन्तु मीरा के पदों मे 'पतिया भेजने' 33(77) की रीति का हवाला भी है—

> "पतिया मैं कैसे लिखू लिखि ही न जाय।
> कलम घटत मेरो कर कपत, हिरदो रह्यो घर्राइ।'
> 33(77), 9(123)

'सूरज का तप करना' भी 'पति मगल और मिलनेच्छा' के लिए एक रीति थी। 33(120)—

इण सखरिया री पाल, मीरा बाई सापडे।
सांपड किया असनाना, सूरज सामी जप करे।

और अन्तत विवाह सम्बन्धी रीति का भी एक प्रसग मिलता है जिसमे प्रासगिक रूप से 'कन्या को हल्दी चढाने', 'छापन कोटि जान' आन 'तारण बांधन' 33(27) की रीतियो के सकेत भी हैं।

(छ) जन्मांतर से मुक्ति चाहने की धारणा मे लोक मे जीवात्मा को कर्म बधन में बँधा हुआ और भव सागर म आवागमन के चक्र म फँसा हुआ माना जाता है। यह बार बार का जन्म और मरण जीव का कष्ट है। उससे मुक्ति की धारणा दर्शनो से होकर लोक मानस मे गहराई तक धँसी हुई है। हर भक्ति और साधना का मन्तव्य इसी मुक्ति की चाहना मे होता है। इसीलिए मीरा ने भी अपने परमात्मा को 'अगम तारण तरण' 33(1), 'सतन सुखदायी' (2), 'भगत बछल' (2), कहकर याद किया और 'पिय के पलगा जा पौढूगी' (14), तारो अब मोही' (15), 'चरणा लिपट रहूँ री' (18), 'धणीमिल्या छै हुजूर' (21), 'बडेघर ताली लागी रे' (वही) 'जनम जनम का सोया मनवा सतगुर सबद सुण जागा' (26), 'जनम मरण सू छुटकी' (24), 'गिया अचल सुहाग' (27), अपनी कर लीजै' (28), 'गिरधर जी भरतार' (30), भव सागर तट जास्यां' (38), 'मीरा को प्रभु राख लइ छै'(41), 'जात मे जोत मिला जा'(50), 'लीज्यौ कठ लगाई'(73), 'अग से अग लागवो हो (104) 'मीरा प्रभु गिरधर मिल, ज्यू पाणी मिल गयो रग' (105), कब हरि राखै पासडियाँ' (108), 'जोत मे जोत रली' (119) 'जम का फदा निवार'(132), 'आवागमन निवार'(133) 'भव सागर तटि आयो' (157), जीव परम पद पावै' (160) 'जुगन जुगन स बिछडी मीरा घर मे लीन्ही लाय' (193), 'काटा जमकी फासी'(194), 'भज उतरै भवपार' (196), 'साहब पाया आदि अनादि, ना तर भव मे जाती' (197), सुरत चली जहूं मैं चली री' (201)—इस तरह की अभिव्यक्तियो से जन्मातर से मुक्ति की चाहना व्यक्त की है।—ये सभी अभिव्यक्ति रीतियाँ लोक मे बहुप्रचलित हैं, चाहे कुछ मीरा की अपनी उपज हो सकती हैं—जैसे—'घर मे लीन्ही लाय', सुरत चली री जहू मैं चली', मीरा को प्रभु रख लई छै'।

(ज) ससारी कार्य व्यापार आदि के सकेतों मे भी मीरा की सामाजिक चेतना के कुछ हवाले उजागर हो गए हैं, जैसे कि मोल तोल के व्यापार-व्यवहार की बात— मैं तो लियो छै गोविंदा मोल' के प्रसग मे 'लियो छै तोल', 'लियो छै आखिन खोल' 33(19)। उसी तरह 'कब की ऊभी अरज करत हूँ, अरज करत

भयो भोर', वहीं (5) मे सामती युग की लोकचर्या और सामतो भूमिधरों की उदासीन वत्ति स प्रेरित व्यवहार का हवाला मिलता है। ग्वालो की वत्ति, व्यवहार, नटखटपन आदि के हवाले भी सभवत मीरा के अनुभव क्षेत्र से परे के नही थे, मगर उनमे सहजता और प्रत्यक्ष अनुभूति का अभाव जरूर है—'कालिंदी के तीर हो कान्हाँ गइयाँ चराय' (6) कहकर इति श्री कर दी गई है, मगर बांके रजपूती के बाने' मे अनुभूति तीव्रतर है—33(7) म 'टेढोपाग लर लटकै' के साथ हर बात मे 'बाकपना' है। लोक चेतना की सजगता यहाँ मुखर जान पडती है।

ऐसी बात भी हम नही कह सकते कि मीरा 'पत्नी धम या स्त्री धम' के लोक व्यवहार से शून्य थी। यदि वैसा होता तो प्रेम भक्ति की उसकी अनुभूतियो मे एकातनिष्ठा, समपण और अकुलता के तत्व प्रभावकारी नही बनत। कुछ एक पदो में अभिधात्मक रूप से भी स्त्री-व्यवहार के हवाले मिलते —हैं

'जिहि जिहि विधि रीझे हरि, सोई विधि कीजे हो।' (13)

'जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे साई खाऊँ।
जहाँ बिठावै तित ही बैठूं, बेचे तो बिक जाऊँ।' (17)

किन्तु जब वह कहती है कि 'लोक लाज कुल की मरजादा यामे एक न राखूगी' (14) तो इससे यह भी ध्वनित होता है कि वह नितान्त व्यवहार शून्य नहीं थी।

नृत्य वाद्य आदि के व्यवहारो का हवाला भी मिलता है और भजन कीतन मे चुटकी देकर मगन होने के लोक-व्यवहार का भी—'नाच्या दे दे तारी' हाली मवाली, कामदार, सरदार, वैभव, वैभवहीनता राजकाज सम्बन्धी और वित्त व्यवहार सम्बन्धी लोक व्यवहार के हवाले भी मिल जाते हैं—

"हाल्याँ मोल्या सू काम नही रे, सीर नहिं सिरदार।
कामदारां सू काम नही रे, मैं तो जाप करूँ दरबार।
काच कथीर सू काम नही रे, म्हारे लोह चढे सिर भार।
सोना रूपा सू काम नही रे म्हारे हीरां रो बोपार।" 33(21)

ससुराल मे सास-बहूकी कान, घूघट, मरदाना के व्यवहारो का भी हवाला मिलता है—'सास-बहू की काण न मानूं घूघट पट गई पटकी।' (24) लोक व्यवहार की नीति 'आप काज महाकाज' के हवाले भी मिलते हैं—

"लूण अलूणो ही भलो हे अपणे पिया को साग।" और
"मालर अपणो ही भलो ह, जाने निपजे चीज।" तथा
वर हीणो अपणो भलो हे कोढ़ी कुष्टी काय।
'चौमास्ये की बावडी और बहत निर्झर का पानी' (28) इनमे शुद्धता स्वास्थ्य और निश्छलता के लोक व्यवहार का हवाला भी है और लोक प्रतिष्ठित

सदाचार के हवाले भी हैं—

' चोरी करां न मारगी, नहिं मैं करूँ अकाज।
पुन्न के मारग चालतां जी, झक मारो ससार। (29)

मारवाडी लोक मे 'राजा-ठाकर के अत्याचार होते तो किसान महाजन आदि राज त्याग कर चल जाते थे।' यह लोक व्यवहार मेडता की स्थापना के समय भी चरितार्थ हुआ था कि जालोर, सिवाना, नागोर, अजमेर पटटे के लोग वहाँ आ आकर बसे थे। 'राजा रूठे नगरी राखें' वाला लोक व्यवहार मीरा के पदो मे भी आया है—

राणो जा रूठ्या, वारो देस रखासी।
हरि रूठ्यां क्त जास्यां हो माई। (38)

तीर-तरकस, कटार जैसे अस्त्र शस्त्रो के व्यवहार के हवाले भी मीरा के पदो म हैं। वे सहज अनुभव आधारित ही हैं। 'अपणे घर का परदा कर ले' (41), मे 'परदे के व्यवहार' की अतिरजना है और छोकीली बहुओ के प्रति 'पहरा, चौकी' के लोक व्यवहार का हवाला भी है—

"पहरा भी राख्या चौकी बिठादया ताला दियो जडाई।" (46)

आवागमन के साधनो मे—सांढिया भेजना, ऊँटो पर भार कसना, रीया (नागौरी) बैलो के रथ जुतवान का हवाला भी है (47) और 'पतिया भेजने' के दूत का भी। घर आए प्रीतम पाहुने के आदर सत्कार का लोक व्यवहार भी है—'मोती चौक पूराऊँ वाल्हा, तन मन तो पर वारी' (54) और रुग्णता आदि के समय 'वैद गिरी' का भी हवाला है—'बावल वैद बुलाइया रे, पकड दिखाई म्हारी बाँह' (74)। पिय के परदेस' रहने पर 'दीप न जलाने' का मारवाडी लोक व्यवहार तो है ही' (79), 'देस-परदेस मे सदसा पहुँचने का अदेसा' भी व्यक्त हुआ है। (78), 'आने वाले के स्वागत मे डगर बुहारने' का व्यवहार भी है (102), और नगर मे घोषणा ढिढोरे या ढोल की चोट पर होती थी (वही) इसका सकेत भी है। हाथी और अकुश (106) पाराधि और मृग (105) ऋतुओ के अनुसार पव, उत्सवो के *व्यवहार (116), लिख लिख पतियाँ सदेसा भेजना (123),* चाकरी म खाली दरसन और सुमिरन पाना यानी बेगार (154), के सकेत भी यत्र-तत्र हैं। तुलसी और हरिदास की तरह मीरा ने भी अनुभव किया था कि—'लोकडिया राम नाम लत लाज मरे छँ (161), गाँव मे लोग इधर उधर डोलते फिरते हैं मगर हरि-मदिर जाते उनके पैर दुखते हैं, घर का काम धाम छोडकर वे झगडे फसादा का नाटक देखने जरूर दौड जाते हैं। भाँड नट, भावी, गणिकाओं के नृत्य मे रात रात भर बैठे रहते हैं मगर भक्ति भाव म उनका मन नही लगता। (वही) तथापि

सभवत गावो मे प्रात कालीन लोक व्यवहार जल्दी उठकर दूध दुहने, दही बिलोने और छाछ की मटकियाँ भर कर मालिको के यहाँ पहुँचाने का चलन काफी आम था (168)।

इस तरह से चतुर्दिक ससारी व्यवहारो के सकेत मीरा के पदो मे आए हैं जो उस समय के लोक जीवन के कुछ चित्र प्रस्तुत करते हैं। और इन चित्रो की प्रस्तुति मे तथा अपनी अनुभूतियो मे लोकतात्त्विक प्रभाव लाने के लिए मीरा ने कुछ ऐसी रूढोक्तियो का प्रयोग भी किया है जो भाव विशेष या स्थिति विशेष के लिए लोक शैली मे परम्परा से रूढ हो चुकी मालूम होती हैं।

(viii) रूढोक्तियों के प्रयोग मे समाज सावजनिक अनुभवो अनुभूतियों, लोक व्यवहारो, कामनाओ आदि की अभिव्यक्ति के लिए कुछ भाविक प्रयोगो को रूढ बना लेता है। ऐसी रूढोक्तियाँ हमे लोक-काव्यो मे, लोकगाथाओ मे मिलती हैं। वे अपना विशिष्ट प्रभाव रखती हैं—यथा—

जिणि देसे सज्जण वसइ, तिणि दिसे वज्जउ वाउ।
उआ लगे मो मागसो, क हो लाख पसाउ। (ढोला मारू)
चिता अहण ज्यों नरां, त्यों द्रिढ अग न थाइ। (वही)
पति लुप्पै लुप्पै जनम, पति बचै बँचाइ। (पृथ्वीराज रासो)
पिय मागै तिस अद्दरे सोये सकल सरीर।
वह रजपुतनि कुवकरी, सुमतन कही जहोइ। (परमार रासो)
अहो आदि मातपिता मूल जान, पछे तीरथ आठ सटठ प्रमान।
(पृथ्वी रासो)
मातु हेत पितु तजिय, पिता के हेत सहाहर। (रतन बावनी)
गानिका गनिक काव्य की ठग विद्या परवीन। (पृथ्वी रासो)
मरदा खेती पग मदन मत्थि समापन हत्थ। (पृथ्वी रासो)
सती सूरमा पुरुष को मरतहि मगल होय। (हम्मीर रासो)
तीन सहस रजपूत खाइ अमल घूमे खडे।
खडे कृपाण को सूत, राम नाम मुखसे रटैं। (गोरा बादल की कथा)
बारहु भूसन सजे सुहागन, औ करिहके सोलहसिंगार। (अल्हा खड)
करि दतोन असनान, ध्यान गोरख को धार्यो। (रासो)
भूम सेज सुख सयन गग मडल कर धारय। (पृथ्वी रासो)
हियडउ रतन तलाव ज्यूँ फुटी दइ रिस जति (ढोला मारू)
काढि कलेजउ आपणउ भोजन दिउली सुज्झ (वही)
यहु तन जारी मसि करूँ, धूआ जाहि सरग्ग।
मुझ प्रिय बददस होइ करि बरस बुझाइ अग्गो। (वही)

सज्जण गुणे समुद्द तूं, तर तर थक्की तेण।
अवगुण एक न सभरइ, रहूँ बिलबी जेण। (वही)
ऊँची चढ़ि चातुगि जिउ, मागि निहालइ मुध्ध। (वही)
सुसनेही समदा परइ, बसत हिया मझारी (वही)
बावहिया निलपखिया, बाढत दइ दइ लूण। (वही)
प्रिउ मेरा मई प्रिउ की, तू प्रिउ कहइ सकूण।
पथी हाथ सदेसउइ, धण विक्लती देइ। (वही)
जोवण हस्ती मद चढयउ, अकुस लइ ग्रिरि आइ। (वही)
दादुर मोर टहक्क घण, बीजहली तलवारि।
सूती सेजइ एकली, हइ हइ दखू म मारि। (वही)
हइ रे जीव निलज्ज तू, निकस्यू जात त सोहि।
प्रिय बिछुहत निकस्यउ नहि, रहाउ लजावण मोहि। (वही)
विरह महाविस तन बसइ, ओखद दियइ न जाइ। (वही)
आजे रली बधामणा आजे नवला नेह।
सखी अम्ही णी गोठ मइ, दूधे बूठा मेह। (वही)
वाही थी गुण वेलडी, वाही थी रसवेलि। (वही)
ओछइ पाँणी मच्छ ज्यू, वेलत थयउ विहाण। (वही)
विरह बाघ वनि तनि वसइ, सेहर गाजइ आह (वही)
दीह गणता णह घस्याँ। (बीसल दे रासो)

—इस तरह की रूढोक्तियाँ अनुभूतियो के साधारणीकरण मे सहायक होती हैं और लोक मे गहराई के साथ असर करती हैं।

मीरा के पदों मे भी ऐसी रूढोक्तियो का प्रयोग मिलता है। उन्हे हम कुछ शीर्षको मे रखकर देख सकते हैं—

(अ) दार्शनिक और धार्मिक पक्ष म,
(ब) सामाजिक और नतिक पक्ष मे,
(स) वियोग और शृगार पक्ष मे,

(अ) दार्शनिक और धार्मिक पक्ष मे इस पक्ष मे जीवात्मा या भक्त के लिए 'दास' और परमात्म के लिए 'प्रभु' क प्रयोग की रूढि प्राचीन है। मीरा के पदो मे छाप है— दासी मीरा लाल गिरधर', 33(1) मीरा के प्रभु गिरधर नागर', 33(12) मीरा कहै मैं दास रावरी' 33(4)। जहाँ प्रेम भक्ति मे विरह और आकुलता व्यक्त होती है वहाँ जीवात्मा को 'जोगन', बैरागन' कहने की रूढोक्ति प्रेम काव्यो मे भी मिल जाती है—'बालजी, मैं बैरागन हूंगी हो' और 'फाड़ूंगी चीर करूँ गलकथा, रहूँगी बैरागन होइ री', 33(48) वैसे ही सत पथ मे

परमात्म के साथ सुरति-निरति का खेल करना, सुन्न महल मे पिया के साथ एकाकार होना सहज सुमिरन करना—ये सब रूढोक्तियाँ मीरा के पदों मे मिल जाती है—

"तेरो ही उमरण तेरो ही सुमरण, तेरी ही ध्यान धरूँ री।"
वही (18)

"सुरत निरत का दिवला सँजोले, मनसा की करलें बाती।
प्रेम हरी के तेल मगा ले, जगे रह्या दिन राती।" (20)

ससार की असारता सम्बन्धी रूढोक्तिया भी—

चदा जायेगा, सूरज जायेगा, जायेगी धरणि अकासी।
पवन पाणी दानू ही जायेगा, अटल रहे अविनासी। (वही)

और

'ना घर तेरा ना घर मेरा, गावँ मीरा दासी।" (वही

तो सूफी काव्यो से लेकर लौकिक कहावतो तक मे देशव्यापी रूढोक्ति है।

भक्ति मे मीरा ने दरबारी रूढोक्ति भी डाली है—'कामदारां सू काम नहीं रे, मैं तो जाम करू दरबार' (21)। यह वैसी ही रूढोक्ति है जैसे—

"गग जमुन सो काम नही मेरे मयो समद सू सीर।' (वही)

भक्ति की सापेक्षता मे जगत को 'चौमास्यां की वावडी' (28) कहना, 'छोलरिया' और 'डाबरियाँ' (21) 'बाड को काँटो (34) कहना भी प्रसिद्ध रूढोक्तियाँ हैं। उसी तरह 'अमृत प्याला छोडिके कुणपीवे कडुवो नीर (20) भी रूढोक्ति है। सांसारिक सुख सुविधाओ को नकारने के लिए उनकी तुच्छता को व्यक्त करने के लिए उन्हें काँच कथीर', मोती माणक' पट पाटम्बर' (25) कहकर व्यक्त करना भी रूढोक्ति है। सांसारिक सम्बन्धो के परिहार को टूट गया ज्यू तागा' (26) कहने की रीति है तो 'शील, सदाचार' को चूनड' (30) कहा गया है। साँकडी गली मे प्रभु का मिलना या सतगुरु का मिलना (36) ताकि वापस न लौटा जा सके, भी रूढोक्ति है जिसने अन्य रूपो म 'भरी सराय रहीम लाखे' वाली अभिव्यक्ति भी है।

भक्ति मे परीक्षा और परीक्षा में खरा उतरने की अभिव्यक्ति के लिए 'कचन दहत अगनि मे निकसतबारवाणी' (41) वाली रूढोक्ति है तो भक्ति की मस्तता के लिए 'अमल' की— यो तो अमल म्हारो कबहू न उतरे' (44)।

धार्मिक पक्ष में मीरा ने 'जोगी प्रकरण में' प्रिय से एकमेक होन की व्यजना के लिए प्रेम काव्यो की इस रूढोक्ति का उपयोग किया है—

ऊपर चदण की चिता बनाऊँ, अपने हाथ जला जा।
जल बल भई भस्म की ढेरी अपणे अंग लगा जा। (50)

भक्ति मार्ग की कठिनाई के लिए, 'पथ दुहेलो, आडा औघट घाट', (49) 'सूली ऊपर सेज' (72) जैसी रूढ़ोक्तियों का उपयोग है तो उस मार्ग में बाधा बनने वाले 'दिच्छन ने करें', (37) 'सूल' (45) कहे गए हैं। जैसे प्रेम काव्यों में नायिका 'चातक' और 'पपीहे' की तरह कुरलाती है, वैसे ही मीरा की भक्ति में भी—

ज्यूँ चातक घन कौ रटै मछरी जिमि पाणी हो' (87) की रूढ़ोक्ति आई है।

परम तत्त्व के दर्शन बिना दरद दिवाणी होना' 'तलफ तलफ जिय जाना' तो बहु प्रचलित रूढ़ोक्ति है मगर मीरा ने 'ले कटारी कंठ सरना' और 'विष खाकर मरने' (68) का भी रूढ़ोक्तिवत प्रयोग किया है।

जीवात्मा के लिए परमात्मा तो एक ही है, 'जीवात्मा' लाखों हैं। इस दार्शनिक अर्थ के लिए रूढ़ोक्ति है—'तुमसे हमकूँ एक हो हमसी लाख करोरि'। इसी उक्ति का अन्य रूप है—'म्हें तो बुरी छाँ, थाँके भलो छै घणेरी, तुम हो एक रसराज' (109)।

—दर्शन और धर्म के पक्ष की ऐसी रूढ़ोक्तियाँ पुराने समय से चली आती हैं और मीरा के बाद के भक्तों में भी उनका चलन मिलता है।

(ब) सामाजिक और नैतिक पक्ष में उसी तरह सामाजिक और नैतिक जीवन में भी रीति-रिवाज, व्यवहार नीति से सम्बन्धित रूढ़ोक्तियों का चलन है। जिस समाज में राजा शाही और सामंतवादी परम्परा रही हो, वहाँ हर छोटे की उपेक्षा बड़ों द्वारा होती है। पत्नी से पति बड़ा है और भक्त से भगवान। इसके लिए अन्तर्निहित वेदना व्यक्त करने की रूढ़ोक्ति है—

"हम चितवत तुम चितवत नाहीं," और "तुमसे हमकूँ कबरे मिलोगे, हमसी लाख करोरि।" (5) रैदास में भी यही रूढ़ोक्ति है। इसी का एक नमूना लोक-काव्यों में मिलता है—'सज्जन, गुणे समुद्द सू, सरतर म्हको तेण, (ढोला मारू) इसलिए बड़े के हुजूर में खड़े होकर अर्ज की जाती है। यह सामाजिक रीति मीरा में भी है—"ऊभी ठाढ़ी अरज करत हूँ," (वही) और "अरज करते भोर हो जाती थी" तब भी 'सुनवाई' नहीं होती थी। सामंतवादी समाज में यह 'हुजूर' "बड़भागण रीझता था।"(13)

भक्ति या प्रेम के मार्ग में सामाजिक मर्यादा, कुल गौरव आदि बाधक होते ही आए हैं। ऐसे प्रसंगों में लोकव्यवहार के प्रति रूढ़ोक्तियों का चलन भी हुआ ही है। लोक कुटुम्बी बरजि बरजहिं, बतियाँ कहत बनाई। (10) कहकर मीरा ने उसका हवाला दिया है। जब तक बाधाएँ नहीं होती, परीक्षा नहीं होती, तब तक प्रेम या लगन की तीव्रता भी नहीं उभरती। इसलिए—"कुल कुटुम्बी आन

बैठे, मानहुँ मधुमाखी" (22) वाली रूढोक्ति है। इसीलिए प्रेम काव्यों मे "प्रेमी के प्रति रसबेल बड़ी कठिनाइयो से बोई जाती है और उसे आसुओं से सीचा जाता है। प्रेम काव्यो मे—

"वाही थो गुणवेलड़ी, वाही थी रसबेलि" और मीरा के प्रयोगो मे—"असुवन जल सीचि सींचे प्रेम वेलि बाई।" लोक मर्यादा मे पति के प्रति एकांगी निष्ठा बड़ी महत्वपूर्ण मानी जाती है—"वर हीणो अपणो भला कोढी कुष्टी कोय।" और "ताके मन सिधारता हे भला कहे सब लोय।"(25)—ऐसी रूढोक्ति का प्रयोग है। और प्रेम के पथ पर घर-बार, नात रिश्ते तो टूटते ही हैं। उसके लिए रूढोक्ति है—"मातपिता सुत कुटुम कबीला टूटि गया ज्यू तागा।"(26)

'सत्यमेव जयते' वाली बात जैसे सामाजिक जीवन मे है वैसे ही प्रेमियो के प्रेम मार्ग मे भी है। 'सत्' पर अडिग रहने वाली मीरा इसीलिए प्रयोग करती है—चोरी करा न मारली जी, नहिं मैं करूँ अकाज।

पुन के मारग चालता जी, झक मारो ससारा (29) ऐसी नैतिकता कभी हार नही मानती जिसमे—

'भाव भगत भूखण सजे सील सतोक सिंगार।"(30)

—और ऐसा आत्मबल होता है तब चाहे प्रेमिका हो, चाहे भक्त हो, चाहे साधक हो वह 'टेक' पकड़ लेता है और उस टेक के लिए वह चाहे 'नाम बिकाने' चाहे प्रेम बिकाने,' चाहे 'गिरधर हाथ बिकानी', चाहे 'सता हाथ बिकानी'(30) की रूढोक्ति काम मे लेता है क्योंकि जब 'बिक ही गया' तो उस पर 'घर धणी' का या अमानतदार' का क्या जोर चलेगा ! ऐसी बेबाक अवस्था मे ही 'पर्दा चाहने वाले के लिए' रूढोक्ति होती है—' छोड दई कुल की कानि, कहा करि है कोई, या कि 'अपणे घर का पर्दा कर ले।'(41)

'छीजन' का आशय व्यक्त करने के लिए रूढोक्ति है—

मीप मर्‌यो पाणी पिवे रे, दाम मर्‌यो अन खाय।(47) यह विरह मे 'भोजन न भावे' की रूढोक्ति की पोषक उक्ति है। समाज मे निबल धणी के मुकाबले 'सबल धणी'(47) का साथ निर्भीकता प्रदान करता है, उसी तरह 'राखण हारो (47) कोई और हो तो रूढोक्ति बनती है—'थारी मारी ना मरौं (47) क्योंकि सामाजिक मान्यता है कि मरना जीना तो परमात्मा के हाथ है।

सामाजिक और नैतिक मान्यताओ के वशीभूत किशोरियो का इधर उधर भटकने से सावचेत किया जाता है—"चढती बैस, नैण अणियाले तू घरि घरि मत डोल।' (62)

कष्ट पर कष्ट पड़े तो 'दाध्या ऊपर लूण लगायो'(83) का प्रयोग है यह लोक मे मुहावरे की तरह भी प्रचलित है। और 'मदमाता हाथी अंकुश से ही वश मे आता है' इस नैतिक सत्य को रूढोक्ति का रूप दिया है—

"यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूँ मदमातो हाथी।
सतगुरु दस्त धरयो सिर ऊपर अंकुस दे समझाती।(106) यही उक्ति प्रेम गाथाओ मे है—

"जोबण हस्ती मद चढयड, अकुस लइ धरि आइ।" (ढोला मारू) हाथी हो तो अकुश से वश मे करे, घोड़ा हो तो पागड़ा डाल दे, मगर 'प्रीतम चचल' हो तो रूढोक्ति है—जो तुम जाओ मेरी बाखरियाँ, जरि राखूं किवारिया।"(165)

इस तरह प्रचलित सामाजिक नैतिक मान्यताओ के लिए कुछ प्रसिद्ध और कुछ मौलिक रूढोक्तियो के प्रयोग मीरा के पदो मे मिलते हैं।

(स) वियोग और सिंगार के पक्ष मे प्रेम काव्यो म शृगार और वियोग के पक्ष ही प्रबल होते हैं। मीरा का शृगार और वियोग अव्यक्त सत्ता के प्रति है जिसमे भक्त की मर्यादा सीमा रेखा बनाती है। इन पक्षो मे कुछ ऐसी रूढोक्तियाँ हैं जिनका प्रयोग मीरा ने भी किया है—ऐसे प्रयोग के अवसर वियोग वेदना के तीखेपन मे, उपालभ मे, व्याकुलता म, प्रतीक्षा मे, मिलने की आकांक्षा में आए हैं—

पिया के बिना 'सब जग खारो लागत'(16) 'भोजानिया नहिं भावै', 'नींदलडी नहिं आवै" तो बहुत अभिधामूलक हैं और ज्यादातर इन्ही रूढोक्तियो का प्रयोग मीरा के पदो मे हुआ है, किन्तु इनके साथ जहा 'अब काहे की लाज सजनी'(22) 'छांडि दई कुलकी कानि' जैसी रूढोक्तियाँ सम्पुष्ट देती हैं वहाँ अनुभूतियाँ तीव्रतर हो जाती हैं। 'राज किये ज्यांना करणी दीजे,' 'महल अटारयाँ हम सब त्यागा' जैसी उक्तियों से भी अनुभूति सघन हो जाती है। भक्ति की टेक को प्रखर बनाने म 'मल मेरा सीस लहो'(31) 'सबका मैं बोल सहू (वही), 'कोई निन्दो कोई बिन्दो'(35)—जैसी रूढोक्तियाँ भी आशय को सबल बनाती हैं क्योकि वे लोक-धरातल और भाषा के प्रयोजन मूलक रूप मे से उभरी हुई हैं। 'काजल टीकी त्यागने' और भगवाँ चादर पहनने'(37) मे विरोध वक्रता आशय को कई गुना बढ़ा देती है। 'विष को प्यालो' और नाग गले मे पहिरिया'(42) वाली रूढोक्ति तो इतनी प्रखर हो गई है कि लोग उसका इतिवृत्त तक खोजते रहे हैं जबकि 'वियोग' क प्रलाप मे ऐसी इच्छा प्रेम काव्यो मे आम बात है। अतर इतना ही है कि वहाँ ऐसा काम खुद वियोगी करता है और मीरा क पदो मे वह काम 'राणा' कर रहा है। 'विरह महाविस तन बसइ'—की रूढोक्ति तो ढाला मारू मे कई बार आई हो इसी तरह से 'मरूगी कटारी मार,' "जोगण होय सरू चहुँ ओर,' 'तेरे कारण जोगण हूंगी' 'रहूँगी बैरागण होइ री'—ऐसी रूढोक्तियाँ जैसे प्रेम कथाओ में आती हैं, वसे ही मीरा के पदो मे भी हैं। बल्कि उनसे भी आगे—

अगर चदण की चिता वणाऊँ, अपणे हाथ जला जा।
जल बल भई भसम की ढेरी, अपणे अग लगा जा।(50)

जैसी रूढोक्ति मे एक नवीनता भी है जो प्रेम गाथाओ की रूढोक्ति से काफी भिन्न है—

यहु तन जारी मसि करूँ, धुआ जाहि सरग्ग।
मुझ प्रिय बददल होइ करि, बरसि बुझावइ आगी। (ढोला मारू)

"ऊँचे चढकर प्रिय की प्रतीक्षा करना" जैसी प्रेमगाथाओ मे हैं वैसी ही रूढोक्तियाँ मीरा के पदो मे हैं—'ऊँचे चढि चात्रगज्यू मागि निहालइ मुध्ध" जैसे ढोला मारू मे है, मीरा मे उसकी छाप है—'निस दिन जोऊँ बाट पिया की' (73) 'कबकी ठाढी मैं मग जोऊं' (79), 'निस दिन पिव को पथ निहारूँ,(91)' 'म्हैल चढै चढि जोऊँ म्हारी सजनी' (141) 'ऊँचो चढ चढ पथ निहारूँ।'(106)

विरह म 'प्राण न छूटने का खेद भी प्रेम गाथाओ की तरह मीरा के पदा मे रूढोक्ति बद्ध होकर आया है। मीरा के प्रयोगो मे—"पिंड मा सू प्राण पति निकासि क्यू नहिं जान' (68) तो प्रेम काव्यो मे है—'हह रे जीव निलज्ज नूँ निकस्यू जात न तोहि (ढोला मारू)।

सावण, पपीहा मोर प्रेम गाथाओ मे और मीरा के यहा भी विरह निवेदन की समान रूढोक्तियो वाले बन कर आए हैं।—

दादुर मोर टवक्क घण, वीजउली तरवारि।

सूती सेजइं हेकली, हइ हइ दइव न मारि।—प्रेम काव्यो मे है तो मीरा के यहाँ भी—'सावण बह गए अजहूँ न आये।'(69) 'दादुर मोर पपीहा बोले दामिन दरक डरावैं'(76)—जैसी रूढोक्तियाँ हैं।

उधर 'पथी हाथ सदेसडो' मारू भेजती है तो मीरा भी वैसी ही रूढोक्ति से 'पतिया मैं कैसे लिखू बनाय'(77) अपनी अनुभूति प्रकाशित करती है। उधर विरह वेदना की असह्यता मे मारू—

'काढ़ि कलेजउ आपणउ भोजन दिउली लुज्य करती है और 'कागा सब तन खाइयो चुन चुन खइहो माँस। दो नैना मत खाइयो, पिया मिलन की आस। —वाली नायिका भी प्रेम-गाथाओ महै तो मीरा के पदों मे भी वैसी ही रूढोक्तियाँ हैं—

'काढ़ि कलेजो मैं धरूँ रे कौवा तू ले जाइ।
ज्यां देसाँ म्हारे पिव बसै व देखै तू खाइ।' (74)

और

'लेइ कटारि कठ सरइ, मरूँगी विष खाइ। (68)

पपीहे की 'पीव बाणी' की रूढोक्ति भी मीरा के पदो म लोक मानस का बिम्ब बन कर आई है—

"बाबहिया निल पखिया, बाढत दइ दइ लूण ।
प्रिउ मेरा मैं प्रिउ की, तू प्रिउ कहइ स कूण ।" (ढोला मारू)—

वैसे ही मीरा के यहाँ—

पपइया रे पिव की वाणि न बोल ।
सुणि पावैली विरहणी रे, थाँरी राखली पख मरोड ।
चाच कटाऊँ पपइया रे ऊपरि कालर लूण ।
पिव मेरा मैं पिव की रे तू पिव कहै स कूण ।(84)

उधर बीसल दे रासो मे विरहणी के नख दिन गिनते गिनते घिस जाते हैं तो मीरा के यहाँ भी—

गिणता गिणता घस गई रेखा, आँगकिया की सारी ।(78)

दोनो ही तरफ 'विरह नागण काया डसती है'(76) और 'बाघड बिरह (120)' सताता है । दोनो ही तरफ 'रसबेल, मीरा के यहाँ, 'प्रेमबेलि' बोई जाती है और चातक, मीन, चकोर के प्रतीको का उपयोग रूढोक्तियो मे किया जाता है ।

इस तरह से विरह और शृगार के पक्ष मे मीरा ने लोक मे प्रचलित रूढोक्तियो का प्रयोग किया है जो उसके पदो को लोक मानस मे पैठने लायक बनाते हैं ।

3 लोक सस्कृति के तत्त्व

कवि अथवा भक्त अपने समाज और सस्कृति की उपज भी होता है और उसका वाहक भी होता है । समीक्षाकारो ने लोकसस्कृति की खोज करते समय कविता मे शकुन, धारणा, विश्वास आदि के सकेत और समावेश ढूढने के उपक्रम किए हैं । आम तौर पर इस के अन्तगत (i) शकुन, (ii) स्वप्न, (iii) सदाचार धारणा, (iv) कमवाद (v) भाग्यवाद, (vi) नेम धरम, (vii) जतर मतर टोना टोटका, (viii) ज्योतिष प्रकृति (ix) सयुक्त परिवार आदि बातें खोजी बताई जाती हैं । ये बातें पूव मध्य युगीन समाज तथा सामती लोक जीवन के सास्कृतिक तत्त्वो मे गिनी जाती हैं ।

मीरा के पदो मे भी इनके बिखरे बिखरे सकेत मिल जाते हैं —

(i) शकुन लोक जीवन मे शकुनो पर पूरा शास्त्र बना हुआ है । अग उपागो के फडकने धडकने से लेकर छिपकिली, चिडियाएँ, ब्राह्मण, हरिजन, महाजन, आदि, जातियो, दूध, दही आदि पदाथ और पशु, पक्षी से लेकर जीवित मृत चीजो तक को शकुन-अपशकुन से बाँधा गया है ।

मीरा की 'पदावली'(33) मे शकुन का सकेत देने वाला कोई पद नही मिलता, किंतु एकाध पद मे 'कागा को सदेश वाहक और शकुन वाचक

बनाया गया है—'काग उडावत दिन गया, बूझू पिंडत जोसी हो।'33(116)

उसी तरह 'मीरा' (9) के प्रामाणिक शीर्षक वाले पदो म भी शकुन परक सकेत नाम मात्र को और प्रच्छन्न हैं—'थारा सबद सुहावणा हे जो पिव मेल्या आज, चाच मढाऊँ थारी सोवणो रे, तू मेरे सिरताज। 9(419 53) कौए को सदेश वाहक भी बनाया गया है—'प्रीतम कूं पतिया लिखूं, कउवा तूं लै जाइ' (वही)

(ii) स्वप्न भी लोक संस्कृति का शकुन परक एक तत्त्व रहा है। मीरा के पदो मे एकमात्र स्वप्न प्रसग है जो उसकी अति मानसिक अवस्था बताता है कि 'माई म्हांने सुपने मे परण गया जगदीस।33(105) उसके स्वप्न मे बरात भी आती है, हल्दी भी चढ़ती है, तोरण भी बधता है और मीरा उसे सच मानकर अपने सुहाग को अचल मानती है। इसके अलावा स्वप्न का कोई सकेत नही है मात्र एक पद म सपने से चौंकने की बात है—'चमक उठी सपने सुध भूली।'(76)

(iii) सदाचार धारणा शील सतोष, सदाचार की धारणा लोक तत्त्वों का एक महत्वपूर्ण घटक है। सामाजिक जीवन, सहयोग, परमार्थ, आत्म कल्याण की आवश्यकता-वश सदाचार और शुद्ध जीवन की धारणाएँ विकसित हुई होंगी।

मीरा के पदो मे इस लोकतत्व के काफी प्रयोग मिलते हैं—

"भगति देख राजी हुई जगति देख रोई।" 33(15)
"चोरी न करस्यां न जीव सतास्यां, काई करसी कोइ म्हारो।" (23)
'कालर आपणो ही भलो, जामे निरजे बीज।' (25)
"छैल विराणा लाख को हे अपणे काज न होय।" (वही)
'वर हीणो अपणो भलो ह, कोढी कुष्टी काय।" (वही)
'चोरी करा न मारगी जी नहिं मैं करूं अकाज।"
पुन्न के मारग चालता जी झक मारो ससार।" (29)
"भाव भगत भूषण सजे सील सतोख सिगार।' (29)
'मान अपमान दोउ धर, पटके, निकसी हूँ ग्यान गली।" (32)
' चढती वैस नैण अणियाले, तू घरि घरि मत डोल।' (62)
"मन कू मार सजू सतगुरू सूं दुरमत दूर भगाऊं। (92)
वो मन मेरो बडो हरामी ज्यूं मदमातो हाथी।
सतगुरू दस्त धर्यो सिर ऊपर अकुस दे समझाती। (06)
'मात पिता तुमकू दियो, तुम ही भल जानो हो।
तुम तजि और भतार को, मन मे नहिं आनो हो।
(129)

"म्हाँ मैं औगुण घणा छै हो प्रभुजी थें ही सहो त सहो। (136)
"इत उत चित्त चलै नहिं कबहू, डारी प्रेम जजीर। (155)
सब घट दीसै आतमा, सबही सो न्यारी है।
दीपक जोऊँ ज्ञान का, चढ़ू अगम अटारी हो। (158)
"आप ही आप पुजाय के रे, फूले अग न समात।
अभिमान टीला किये बहुत कहु जल कहाँ ठहरात।
जो तेरे हिय अन्तर की जानत, ता सो कपट न बने। (162)
"रीति छोड़ अनरीति करो ना।" (173)
"चोमास्या की बावडी ताको जल क्यू पीजै।"
"पहली ज्ञान मान नहिं की हो मैं ममता की बाधी पोट।
सुणियो मेरी बगड पडोसन, गेले चलती लागी चोट।" (1 4)
'मात पिता तो जनम दियो है, करम दियो करतार।
कइरे लाइयो, कइरे खरचियो, कइरे कियो उपकार।
दिया लिया तेरे सग चलेगा, और नहिं तेरे लार। (196)
'तज कुसग सतसग बैठ नित।" (199)
"काम क्रोध मद लोभ मोह कू, चित से बहाय दीजै। (वही)

(iv) कमवाद लोक जीवन मे कमवाद और पुनजन्म की धारणाए भी काफी पुरानी और व्यापक हैं। जीव के कर्मानुसार उसका भोग और अगला जन्म मानने के विश्वास के आधार पर चौरासी लाख जीव कोटियो मे जीव का भ्रमण, तदनन्तर मनुष्य योनि और वहा भी जीव साधना न करने पर पुन भवचक्र मे आवागमन—ऐसी मान्यताएँ आम लोगो मे हैं। तदनुसार मनुष्य जीवन पा कर भक्ति, सत्कम आदि का व्यवस्थापन किया गया है।

मीरा के पदो मे लोकतत्त्व के ये घटक भिन्न भिन्न प्रकार से व्यक्त हुए हैं—
'गाय गाय हरि के गुण निसदिन, काल ब्याल सू बाँची" 33(16)
—बार बार जीव का जनम और मरण ही भव चक्र है। इस जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त होना, परमात्मा स्वरूप हो जाना भी कमवाद की एक उपपत्ति है। 'मेरी उनकी प्रीत पुराणी' (17) मे भी आत्म परमात्म के कारण काय सम्बन्ध का आशय है। 'पूरब जनम को कौल' (19) के मूल मे पुनजन्म की धारणा है। 'जनम जनम का सोया मनवाँ' (26) के मूल मे भी भव चक्र का आधार है। और 'मीरा को गिरधर मिल्याजी, पूरव जनम के भाग' (27) मे भी वही बात है। भव सागर तर जास्याँ (34) मे आवागमन से मुक्ति की चाहना आधार स्वरूप है। और, उसकी प्रतिपत्ति स्वरूप प्रयत्न है कि—

'यह ससार बाड का काँटा ज्याँ सगत नहिं जास्या।' (34) तथा

राम नाम का झाझ चलास्या, भव सागर तर जास्या। (38) मे भी जीवन्मुक्ति की कामना है। मीरा इसीलिए अपने को 'गिरधर नागर की जनम की दासी 11(40) कहती है और चाहती है कि 'जात मे जोत मिला जा।'' (50)

''भौ सागर मे बही जात हूँ' (53) कहकर बारम्बार के जनम मरण का दुख व्यक्त किया गया है और 'पूरब जनम की प्रीत हमारी' (150) कहकर जीव और ब्रह्म के सनातन सम्बन्धो को कर्मवादी ढाँचे मे व्यक्त किया गया है। पुनर्जन्म के आधार पर ही आत्मा का 'जनम जनम की क्वाँरी' (78) कहा गया है।

कर्मवाद और पुनर्जन्म की धारणाओ को सार्थकता देने के लिए ही कई बार 'गिरधर' के लिए 'अविनासी' पद का प्रयोग हुआ है। 'मीरा दासी जनम जनम की' (101) कहकर अविनासी परमतत्व और आवागमन मे फँसे जीव का आशय उभारा गया है।

''निन्दा करसी नरक कुड मॉजासी' 33(23) में कर्मानुसार भोग का आशय विद्यमान है। और 'तुम प्रभु पूरन ब्रह्म हो, पूरन पद दीजे हो।' (129) मे जीवन-मुक्ति की चाहना है क्योकि यो ससार सब बह्यो जात है, लख चौरासी धार (133) इसलिए मेरा आवागमन निवार' (वही) की विनती करती है। उसका मानना है कि 'राम नाम बिन मुकति न पावै, फिर चौरासी जावै।' (160) और लोकमत है कि 'माता पिता तो जनम दिया है, करम दियो करतार' (196) इस-लिए जैसा कर्म वैसा भोग। मीरा ने तो सत गुरु पाया, कर्म कमाए अत

साहब पाया आदि अनादी ना तर भव मे जाती। (197)

—इसके पीछे पूरा जीवन दर्शन है—ज्ञाता का—

बदे बदगी मत भूल।
चार दिनों की कर लै खूबी, ज्यू दाडिम दा फूल।
आया था ऐ लोग के कारण, भूल गमाया मूल। (198)

कर्मवाद म सत्कर्म का सार भी पदों मे आया है—

'राम नाम रस पीजै", 'तज कुसग सतसग बैठ नित।"

और "काम क्रोध मद लोग मोह कू चित से बहाय दीजै।' (199)

तब "जनम जनम के खत जु पुराने नामहि लेत फटे रे' (200)

(v) भाग्यवाद लोक मानस मे पूर्व जन्म की धारणा ने भाग्यवाद को 'कर्म भोग' की प्रति पत्ति के रूप म स्थापित किया हुआ है। एक दो पदो मे मीरा ने 'पूरब जनम को कौल' कहकर उस ओर सकेत किया है और भाग्यवाद की व्यजना एक पद म भी है—

करम गति टारे नाहिं टरी।
सतवादी हरिचद से राजा, नीच घर नीर भरे।
पाच पाडु अर सती द्रौपदी हाड हिमाणं गरे।
जग कियो बलि लैण इद्रासण सो पाताल धरे। 33(190)

—भाग्यवाद सम्बन्धी अय उदाहरण नही मिलता। सिवा इसके कि एक पद मे भाग्य लिख्यो सो ही पायो (189) कहा गया है।

(vi) नेम धरम मीरा कालीन समाज मे लोक जीवन भौतिक वाछाओ से सम्पृक्त नही था। परलोक सुधार की मायताएँ सजीव थी। प्राय हर परिवार स्वच्छ जीवन के लिए कुछ नेम धरम पालता था। मीरा के पदो मे कुछ ऐसे सकेत आए हैं जो लोक जीवन के उस तत्व का हवाला देते हैं—

"चरणाम्रित का नेम हमारो, नित उठ दरसण जास्यां। 33(34)

—और सहज साधना नेम भी—

'मेरे पिया मेरे हिये बसत है, ना कहु आती जाती। (20)

—तिलक माला और कठी धारण करने का नेम भी पाला जाता था—

"चूडो म्हारे तिलक अर माला, सील बरत सिणगारो। (23)
"म्हारे पीहरिये रा लोक भले रो बाधे कठी माला।" 9 ( )

साधु सगत और सत्सग भी धम-कम का अग था। उस पर मीरा ने अपनी भक्ति की टक ही स्थापित कर रखी थी।

"जहाँ जहाँ देखू म्हारो राम, तहाँ सेवा करूँ। (55) भी एक नेम था। इसके अलावा 'नेम धरम' मे नित प्रति ध्यान धरत हूं दिल मे' (88) भी एक उपाय था। 'कीर्तन करना' (91), 'सुरत समाधि लगाना' (92), 'मन की इच्छाओ पर अकुश लगाना (106)—ऐसी क्रियाओ के सकेत मीरा के पदो मे मिलते हैं। ऐसे नेम धरम आज भी लोक जीवन मे आत्म साधना के पोषक हैं।

(vii) जतर मतर आदि लोक मानस मे जसे भक्ति, मुक्ति की चाहना और नेम धरम की मायताएँ होती हैं, वैसे ही जादू मतर, टोना टोटका और भावी के पूव बोध की लालसा भी होती है। मध्ययुग का जन मानस इनसे सम्पृक्त था। अनुष्ठान, पूजा पाठ आदि भी उन्ही भावनाओ से प्रेरित होते थे।

मीरा के पदो म जतर मतर, टोना टोटका से सम्बन्धित सकेत नही मिलते—'मीरा पदावली और मीरा व्यक्तित्व एव कृतित्व के प्रमाणिक कहे जाने वाले पदो मे—सिवाय एकाध नामोल्लेख के—'चितवन म टोना 33(95) किन्तु ज्योतिष से सम्बन्धित कुछ सकेत जरूर मिलते हैं। इससे पता लगता है कि सम्भ्रात घरानो मे और सामान्य जनो मे ज्योतिष, पत्रा आदि का चलन तो आम था किन्तु

जतर मतर टोना टोटका उन समुदायों मे प्रचलित रहे होंगे जिनकी पहुँच वेद जनों तक नही होगी। अथवा यो कहे कि मीरा का व्यक्तित्व अन्तत राज-मर्यादाओ और सस्कारो से मण्डित था। उसकी वेदना भक्ति मे 'वद्य' तो है, मगर जतर मतर नहीं है, प्रिय को रिझाने हेतु टोने टोटके भी नहीं हैं। यह मीरा के व्यक्तित्व की दृढता का परिचायक माना जा सकता है। वह अपने प्रियतम की प्रतीक्षा पहर केस तक कर सकती है, विरह वेदना मे 'तडप सकती है, उसके 'आग लगने' के लिए 'जल बल भसम की ढेरी' बन सकती है, पर बाहरी उपायो से वशीकरण, आकर्षण के उपाय नहीं कर सकती। उसकी आत्मनिष्ठा की परिचायक यह स्थिति हो सकती है। द्रष्टव्य—

किन्तु जासीडा को बधाई' 33(142) देना वह नही भूलती क्योकि उसने शोध के प्रिय आगमन की भावी कही होगी और 'अब घर आये स्याम' (वही) ता बधाई।

> 'काग उडावत दिन गया, बूझें पिंडत जोसी हो।
> मीरा विरहिणी व्याकुली, दरसण कब होनी हो। 33(116)

(viii) प्रकृति भक्तो, सतों, कवियो सबके लिए प्रकृति भाव निरूपण का बहुत सशक्त माध्यम रही है। मीरा के साथ भी यही बात है। प्रेम गाथाओ मे तो मन के साथ, 'थोभा भाचै घर हँम, खेलण लागी खाट' तक भी कवि जन जा चुके हैं। मगर, मीरा न प्रकृति को कही तो विषय वर्णन के साथ अपनी अनुभूतियो से उसे सम्पृक्त किया है तो कही काव्य रूढियों की तरह उसे सहायक बनाया है।

दृश्य वर्णन के रूपो म कालिंदी के तीर गऊएँ चराते, कदम तले बशी बजाते कृष्ण' 33(6) हैं, 'मूसलाधार वर्षा मे डूबता व्रज' है, जमना तीर' का स्मरण है, 'असुवन से सींची पली प्रेम की बेल' (15) है, डाबरिया, छीलरिया, चौमास्याँ की बावडी, झरना, गगा, जमना, दरियाव, समद के सकेत-सुमिरण हैं। 'कालर अपनो' के साथ निपजै चीज' (25) की स्मृति है, 'बन बन भटकने' के साथ 'पथ दुहेला' और 'आडा ओघट घाट' (49) भी हैं जिनमे शायद पुष्कर और अरावली के घाटा की याद हो। 'मतवारे बादल' के साथ 'वर्षाकालीन' प्रकृति का चित्र है (81) मारवाड की 'काली पीली घटा' और पाणी भरी भूमि' (82) है। बारहमासे का चित्र है (116), 'सरवरिया की पाल और उस पर प्रतीक्षा करती सूप पूजा करती महिलाएँ हैं (120), और 'रिमझिम सावन की' उद्दीपक 'नन्हीं नन्ही बूदें' (117) भी हैं। 'फागुन और उसकी फुलझडियाँ (151) भी हैं। और सबके साथ ब दावन' की झाँकी भी है (163)।

काव्य रूढियो के रूप में प्रकृति का उपयोग नानाविध हुआ है—'कवल कोमल' 33(1), 'मवद रसाल' (3), 'बारिज भवां अलक टेढ़ी मनो' (7) 'सुन्दर

वदन कमल दल लोचन' (8) 'कुंडल की अलक झलक कपोलन पर छाई। मनो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई' (9) 'अधर बिंब' (9) 'दसन दमक दाडिम दुति' (वही) 'चमके चपला सी', 'वदन चदा परकासत हेली' (10) 'पिया जीवन मूर जडी' (11) 'असुवन जल सींचि सींचि प्रेम वेल बोई।' 'अब तो बेल फैल गई आणदफल होई'(15) 'काल व्याल सू बाची' (16), सुरत निरत का दिवला, मनसा की बात , प्रेम हरी का तेल' (20), छीलरिये म्हारो चित्त नही रे, डावरिये कु ण जाव।'

'गंगा जमुना से काम नही र हिं तो जाय मिलू दरयाव', (21) 'कुल कुटुम्बी आन बैठे सानहुं मधुमाखी' (22), चौगास्यां की बावडी ज्या कू नीर न पीजै। हरि नारे अम्रत झरै, ज्यां की आस करीजै' (28) यह ससार बाड का कांटा' (34), 'ये तो राणाजी म्हनें इसडा लागो ज्यूं ब्रच्छन मे कैर' (37), 'सीप भइयो-पांणी पिवे रे, टाक भरयो अन्न खाय' (47), 'अगर चदण की चिता बणाऊं। जल बल भई भसम की ढेरी आपणे अग लगा जा।' (50), 'चरण कँवल की दासी' (51), 'तोडत जेज करत नहिं सजनी, जैस चमेली कै फूल' (58), 'आबा की डाल कोइल इक बोले, मेरा मरण अर जग केरी हांसी।' (61) 'सांझ भई परभात' (68), 'रैण अंधेरो बीज बिच चमके, तारा गिणत निरास' (वही) 'सावण कहि गए अजहु न आये' (69) 'गगन महल पै सेज पिया की' (72), 'पाना ज्यू पीली पडी रे, लोग कहे पिंड रोग (74), 'रहा रहा पापी पापीहा रे पिव को नाम न लेइ , (वही) काढि कलेजो मे धरू रे, कागा तू ले जाइ' (वही), 'दादुर मोर पपीहा बोले कोयल सबद सुणावैं। घुमट घटा ऊलर होई आवे, दामिनि दरक डरावैं', (76), 'बिरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिय जावे', (वही) 'स्याम बिना जियडो मुरझावे जसे जल बिन बेली , (80)

"मतवारे बादल आये रे, हरि को सनेसो न लाये रे।
दादर मोर पपइया बोले, कोयल सबद सुणाएं रे।
कारी अधियारी बिजरी चमकै, विरहिणी अति डरपाये रे।
गाजै बाजै पवन मधुरिया, मेहा अति झड लाये रे।
कारो नाग बिरह अति जारी, मीरा मन हरिभाय रे। (81)

और वैस ही—

बादल देख डरी हो स्याम म्हैं बादल देख डरी।
काली पीली घट ऊमरी, बरस्यो एक घरी।
जित जोऊं तित पाणी पाणी हुई, हुई भोम हरी। (82)

—इससे भिन्न पपीहे की घातक बाली—'रे पपइया प्यारे कब को चितार्‍यो ! उठि बैठो वा ब्रिच्छ की डारी, बोल बोल कंठ सार्‍यो।' (83)

पपीहा और कौआ प्रेम काव्यों में बहु प्रयुक्त जीव हैं। पपीहा तो अवांछित है—चोंच कटाऊं पपइया रे अपरि कालर लूण। पिव मेरा मैं पिव की रे, तू पिव कहे स कूंण। (84) और कौआ सुहावणा है—'चाच मढाऊं थारी सोवणं रे, तूं मेरो सरताज।' (वही) चातक और मछली विरह के प्रतीक हैं—'ज्यूं चातक घनकू रटै मछली जिमि पानी हो।' (87) सप विरह है—'कहाँ काहें कित जाऊं मेरी सजनी, मानो मरप डसी', (88) 'कमठ, दादुर और मीन म अतर है—'कमठ दादर बसत जल म जल से उपजाई। मीन जल से करत बाहर, तुरत मर जाई।' (89) 'विरह बारण बौरी भई, ज्यूं काठहि घुन खाइ।', (89)—एक उपमा है जो 'विरह पिंजर की बाड सखी री', (92)—दूसरे तरह की जा प्रकृति के विरल उपयोग हैं।' विरह म 'छमासी रैण' हाना भी एक काव्य रूढि है, तो पारधि ज्यूं चूकै नहिं, मृगी बेधि दई आय, शिकारी जीवन से उठाई गई उपमा है। 'रसिक मधुप के मरम को नहिं समझत कँवल सुभाइ', और 'पानी पीर न जाणइ मीन तलाफि मर जाइ', (105) मे मानवीकरण अनोखा है यद्यपि 'दीपक जु दया नही, उडि उडिमरत पतग', (वही) मे सूफियाना तरीका है। 'मन मदमाता हाथीं', (106)—यह लोक काव्यो की देन है जिस पर राजपूती छाप है।

अलग अलग महीनो मे मरुधर की प्रकृति भी मीरा के पदा में प्राकृतिक सामाजिक परिवेश के साथ उभरी है—

' जेठ महीने जल विणा पछी दुख होई हो।
मार असाढां कुरल है, घण चात्रग सोई हो।
सावण में झड लागियो, सखि तीजां खेलें हो। तो,
भादरवें नदियाँ वहें, दूरि जिणि मले हो। और,
सीप स्वाति ही झेलती, आसोजां सोई हो।
देव काती मे पूजहे, मेरे तुण होई हो।
मगसर ठड वहोनी पडे, मोहिं वेगि सम्हालो हो।
पोस मही पाला घणा, अब ही तुम न्हालो हो।
महा मही वसत पचमी, फागां सब गावें हो।
फागुण फागा खेल है, वणराइ जरावें हो।
चैत चित में ऊपजी, दरसण तुम दीजें हो। और,
वैसाख वणराइ फूलवें, कोइल कुरलाजें हो। (116)

सरवरिया री पाल (120) भी है जो 'साँपडने' असनान', करने के लिए सांस्कृतिक व्यापार के लिए केन्द्र है। उधर लाक काव्या की तरह 'अखिया ति नदिया वह ज्यूं सावण की' (122)वाली अतिशयोक्ति भी है और पाँख नहिं उडि

ज्ञावण' (122) वाली कल्पनोक्ति भी है। एक तरफ विरह 'नागण' है तो दूसरी तरफ वह 'बाघड' (126) भी है। उसके कारण 'ज्यू चकवो रैण न भावै जी' (वही) और 'ज्यूं जल त्यागा मीना जी' से उपमा है। 'सावन' तो कई रूपो मे है—"सावन भादा उमडो, बरखा रितु आई हो। भौंह घटा घन घेरि के, नैनन झर लाई हो।' (129) वाला भी है और,

"बदरा ने घेरी माई।' (140) जैसे 'डाकू लुटेरे' घेर लें कि—

इत घन गरजे, उत घन लरजे, चमकत बिज्जु सवाई।
उमड घुमड चहुँ दिस तैं आया, पवन चले पुरवाई।
दादुर मोर पपीहा बोलैं, कोयल सबद सुणाई। (140)

—पूरी लुटेरो की फौज का नमूना हैं जो सुख चैन लूटने आए हैं। वही सावन दूसरी तरह स भी है कि—

उमग्यो इन्द्र चहुँ दिसि बरसे, दामिण छोडी लाज।' (141)

—मिला की वाछा म—

मगल बाद्य दादुर मार पपइया बालै, कोइल मधुरे साज।

और नायिका की तरह—

धरती रूप नवा नवा धरिया, इन्द्र मिलण कैकाज। (141)

—मारवाड मे कभी होली पर मावठे भी जोरदार होते हैं—

—गणगोर पर भी—

"काली पीली बादल मे बिजली चमकै, मेध घटा घनघोर छँजी।

परन्तु—

दादुर मोर पपीहा बोल, कोयल कर रही सोर छैजी। (143)

—में केवल काव्य रूढि का निभाव है क्योकि मावठे की बरखा मे ये सब प्राकृतिक व्यापार होते नही। अकसर करके सावन ही प्रिय आगमन का अवसर होता है—

झुक आई बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन मे उमग्यो मेरो मनवा भनक सुनी प्रिय आवन की।
उमड घुमड चहुँ दिसि से आयो, दामण दरक झरलावण की।
नन्ही नन्ही बूदन मेहा बरसे, सीतल पवन सुहावण की। (144)

सावन मारवाडी लोक जीवन मे विशेष महत्व रखता है, तभी मीरा ने बहुलता से उसे बखाना है—'सावण दे रह्या जोटा रे' (145) और 'बदलारे तू जल भरि ल्यायो' (147)। वैसे ही 'फागुन पर भी मीरा के पद अपेक्षाकृत ज्यादा हैं।

सूर की गोपियों ने मीरा से ही आँसू बहाना सीखा था कि

"कागद ले राधा बाचण बैठी, भर आई छाती।
नैण नीरज मे अब वहै रे वाला, गगा बहि जाती।
पाना ज्यू पीली पडी री वाला, अन नहि खाती।
हरि विण जिवडो यू वलै रे वाला यू दीपक सग वाती। (186)—कुछ

अनोखापन ही है जो लोककाव्यो के लिए भी नया ढंग है।

और राजमहलो की होज' और 'फव्वारो' वाली प्रकृति भी मीरा के पदो मे

है—चलो अगम के देस काल देखत डरै।

वहा भरा प्रेम का होज, हस केल्या करै। (192)—'प्रेम की राह', 'ऊची

नीची राह रपटीली, पाव नही ठहराइ।' (193) 'बीता समय' तो 'विरछ के ज्यू पात टूटे, बहुरिन लागे डार' (195) से समझाया गया है तो 'चार दिना का जीवणा' को 'ज्यू दाडिम का फूल' (198) कहा गया है।

इस तरह से प्रकृति आलबन रूप मे उद्दीपन रूप में, अलकार रूप मे व्यक्त हुई है और उसमे राजघराने से लेकर लोक धरातल तक के तत्व समाविष्ट हैं।

(ix) सयुक्त परिवार मध्य युग मे कृषि आधारित जीवन, युद्ध, सघर्ष और सम्मिलित जीवन प्रणाली के कारण, परिवारो का रूप एकात्मक था। राजघरानो मे तो बहु विवाह और राज सचालन की आवश्यकताएँ सयुक्त परिवार से ही पूरी होती थी। मीरा के पदो मे एक दो स्थानो पर सयुक्त परिवार के 'उसके अनुभव' व्यक्त हुए हैं। प्रेम भक्ति की टेक, साधु सगति का दुराग्रह भजन-कीतन और बैरागी जीवन जीने की उसकी टेक ने परिवार मे उथल पुथल कर दी थी—

'कुल कुटुम्बी आन बैठे मानहु मधुमाखी' (22)—मधुमक्खियो की तरह

सीख देने, समझाने वालो की भीड लग जाती थी। नणद, भाभी, सखी, सहेली, जेठानी, धायँ—सब, इसलिए कि उसने' राज कुल की लाज गमाई, साधा के सग मे भटकी। (24) छोटे समझाते या बडे—

"जेठ बहू की काण न मानूँ, घूँघट पड गई पटकी।' (24)—ऐसा उसका

आग्रह था। उल्टे वह अपनी 'सखियो' को समझाती थी—

"आवो सहेल्या रली करा हे, पर घर गावण निवारी। (25) क्योकि खाली

समय मे महिलाओ का एक ही काम रहता था कि पास पडोस म जाकर "महिला पुराण, निंदा, स्तुति की चर्चा की जाए। अपने पोहर मे भी और ससुराल मे भी मीरा ने कुटुम्ब परिवार का सहयोग नही पाया। सीधे ही-सीधे पाई और इतनी पाई कि अन्तत—

मान पिता सुन कुटुम कबीला, टूट गया ज्यू तागा।' (26)

धाय माई की नजर मे मीरा—

"गेली दीखै मीरा बावली, सुपना तो आल जजाल।" (27) और
"माई कहै सुण धीयडी, काहे गुण फूली।"
"लोक सोवै सुख नीदडी, थू क्यूं रैणज भूली।" (78)

सास के उससे सवाल थे—

"औरज पूजै गोरज्या जी, थें क्यूं न पूजो गौर? (29)

और उलाहने भी—

"बाल सनेही गोविंदो ये तो साध सता का काम।
थें बेटी राठोड की थाने राज दियो भगवान। (वही)
लाजै पीहर सासरो, माइतणो मोसाल।
सब ही लाजे मेडतिया जी, था सूं बुरो कहै ससार। (वही)

नणद तो बार-बार बरज बरज कर हार गई! अत मे चेतावनी देने लगी—

'थाने बरज बरज म्हैं हारी, भाभी मानो बात हमारी।
राणे रोस किया था ऊपर, साधा मैं मत जारी। (30)

—फटकार भी—

कुल को लाग लगै छै भाभी, निंदा हो रही भारी।
साधा रै सग बन बन भटकी, लाज गमाई सारी।
बडा घर में जनम लियो छै, नाची दै दै तारी।
वर पायो हिंदवाणै सूरज, थें काई मन धारी! (वही)

फिर समझाने सम्बोधने के अनुभव भी कि—

भाभी बोलो वचन सभारी!
साधा की सगत दुख भारी, मानो बात हमारी।
छापा तिलक गलहार उतारो, पहिरो हार हजारी।
रतन जडित आभूखान पहिरो, भोगो भोग अपारी।
मीरा जी थें चलो महल मे, था ने सौगन म्हारी। (वही)

तथापि मीरा का हठ कि—

'बरजी मैं काहू की नाहि रहूं।' (31) 'म्हे तो गोविंद का गुण गास्या,' 'नित उठि दरसण जास्या, 'हरि मिंदर मे निरत करास्या' (31)—और 'राणा को न भावे' तो मीरा को भी— नहि भावै थारो देसडलो रगसडो। (35) राणा आदि बैर भी रखते थे—'राणाजी थें क्याने राखो म्हा सूं बैर।' (37)—कुल कुटुम्बी न मानें, बैर रखें तो—'सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हारो कइकरसी।' (38) 'आपणो

रखासी' (वही)—खैर इतना कि—

'विष रो प्याला राणाजी भेज्या' (39) 'राणाजी थें जहर दियो मैं जाणी' (41) 'पेट्या वासक भेज्या जी 9 (42)। रोज ही रोज—

"सास लडै मेरी नणद खिजावै, राणा रह्या रिसाय।
पहरो भी राख्यो, चौकी बिठादयो, ताला दियो जडाय। (46)

तब असहनीय अनुभव हो गए कि—

"थारी मारी ना मरूँ, म्हारो राखण हारो और। (47)

और अतत "कर मूरापण नीसरी, म्हारे कुण राजा कुण राव' (47)। इस तरह से सयुक्त परिवार और राजनीति के शिकजे से टूट कर मीरा न अनुभव किया—

"माता पिता सुत कुटुम कबीला सब मतलब के गरजी।'

और भी—

"म्हारो सगपण तो सूँ सवारया, जुग सूँ नही बिचारी।' (54)

"यो ससार सगो नहि कोई" (130) की वेदना के साथ अतत मीरा को हरिशरण होना पडा—

"अब मैं सरण परीरे रामा, ज्यूं जाणे त्यूं तार। (131)
या जग मे कोई नहिं अपणा, सुणियो श्रवण मुरार।"

इस तरह मीरा के पदो मे लोकतत्वों के कम से कम नो घटको के हवाले मिलते हैं। इनके अलावा लोक जीवन के नरय, शाक्ष, जोग साधना आदि के फुटकर सकेत भी हैं चाहे रूपक योजना म ही हो या नामोल्लेख के रूप मे।

4 शैली तत्व

साहित्य अपने परिवेश और लोक मानस की उपज होता है। भक्ति साहित्य लोक से लोक के लिए होता है, अत उसमे लोक भाषा, शब्द-सम्पदा और उक्ति सम्पदा का उपयोग होता है। मीरा के पदो के साथ भी ऐसा ही मानना चाहिए।

लोक मे गीति तत्व, सस्वर अभिव्यक्ति के प्रमाण बहुत पुराने हैं। सामवेद तो गीतियो का वेद ही कहलाता है। प्राकृत मे, अपभ्रश म, कथागीतियों के अलावा पद गीतियों और चर्या गीतों के नमूने सिद्धो और बौद्ध पथियो क जमाने से चले आ रहे हैं। लोक मे ही पद शैली म भावाभिव्यक्ति जनमी और पनपी थी। सस्कृत के नाटको में पद गीतियो को प्राकृत में रखने की परम्परा भी यही बतलाती है।

नाथ पंथियों और हठयोगियों मे से होत हुए पदों का प्रचार कबीर, नामदेव,

नानक, सूर, तुलसी आदि के, हर तरह के, भक्ति साहित्य मे मिलता है।

बताया जाता है कि 44 (406) पद-रचना ग्राम रागो की एक विधा थी और उसका सम्बन्ध कई तरह के रागो से होता था। "स्वर विभूषित राग-रीतियाँ साहित्य मे शब्दार्थ की साधना बन कर पद कहलाई।" पद परम्परा का प्राचीन प्रमाण—हिन्दी मे—सिद्धो के चर्या पदो मे मिलता है। उनके साथ अरु, कामोद, गउडा, गूजरी, देशीरव, बराडी, बगाल, भैरवी आदि रागो के नाम मिलते हैं। इससे पता लगता है कि पद गेय होते थे चाहे उनमे छन्दो का निभाव हो सके अथवा नही। सिद्धो के बाद पदो का विकास नामदेव, कबीर, रैदास दादू आदि मे भी मिलता है। वैष्णव भक्ति मे भी पद-रचना की गेय परम्परा ही भक्ति की प्रकाशिका रही है। रामानन्द के बाद पद साहित्य की परम्पराएँ वैष्णव भक्तों मे सतो मे, श्रृगारवादियो मे और सगीतकारो मे कुछ भिन्नताओ के साथ विकसित होती बताई जाती हैं। राजस्थान मे कान्हडदे प्रबध मे फिर धन्ना, पीपा, बालनाथ, जसनाथ आदि पंथो मे पद साहित्य प्रचुरता के साथ प्रचलित था और यह सब मीरा का पूर्ववर्ती साहित्य था।

मीरा के समय तक भक्ति परक पद साहित्य का विपुल भडार प्रचलित था। उनमे भक्त की छाप, टेक और इष्ट को छोडकर अभिव्यक्ति की शैली और सांचे लगभग समान थे।

यही कारण है कि विनती, प्रार्थना, असारता अवतार वदना आदि के पदो मे सभी भक्तो के पद लगभग समान मिलते हैं।

मीरा के पदो के साथ रागो का भी उल्लेख मिलता है। कम से कम 27 रागो के नाम उसके पदो के साथ मिलते हैं (वही) जिनमे आनद भैरो, जोगिया, कान्हडा, तिलग, प्रभाती, पूर्वी, एक ताला, मल्हार, आसावरी, काफी, टोडी, विहाग, मारू आदि मुख्य हैं। इन रागो को भाव प्रकारो से जोडकर भी बताया जाता है, जसे—जोगिया को करुणा के भावो से, आसावरी, पीलू, भैरवी श्रृगार से। मीरा के पदा मे करुणा, व्यथा और श्रृगार की प्रधानता है।

गेयता की दृष्टि से मीरा के पदा मे भावना प्रवणता, अनुभूति का तीखापन और स्वानुभूति परकता अधिक प्रधानता रखती है। उसके पदों मे बाह्य वस्तु परकता नही है बल्कि स्वानुभूति परकता प्रखर है इसीलिए वे पद रसिक जनों को अधिक उद्दीप्त करते हैं, जैसे—'आये मेरे अगना, फिरि गये सजना, मैं अभागन रही सोय री !", 'सेज अलूणी, भवन अकेली, रैण भयकर भेस। अब सलूणे प्रीतम प्यारे, बीते जोबन बेस !"—जैसे पदो में 12 9, 12 9 कही 8 8 11 मात्राओं के क्रम से स्वर का उतार चढाव भावों को जगाने और उद्दीप्त करने का काम करता है और वह उद्दीपन तथा विभाजन स्वानुभूतिपरक होने से सीधा ही रसिक के मन मे उतर जाता है। उसे अभ्यास नही करना पडता।

गेयता के साथ छंद रचना का भी विशेष सम्बन्ध होता है यद्यपि पद रचनाओं मे छंदोबद्धता का कठोरता से निभाव अधिकतर नहीं मिलता। हम मीरा को शास्त्राबद्ध कवयित्री नहीं मानना चाहिए, वह स्वयं सिद्ध भक्त थी—ऐसा हम कह सकते हैं। जिन समीक्षकों ने मीरा पदो मे छन्द विधान की खोज की है उनका यही मत है कि इन पदो म किसी एक छन्द का निभाव नहीं है, कई जगह दो-तीन छंदो का मिश्रण है और कई जगह एक छन्द होते हुए भी सवत्र वह लक्षणबद्ध नहीं है। इसका कारण यह कि मीरा छन्द रचना करने नही बैठी थी, तब गेयता के प्रवाह मे छन्द लक्षण टूटते-बनते भी रहे होंगे।

बताया जाता है कि मीरा के पदो मे 16 मात्रा के चौपाई छन्द से लेकर 32 मात्राओं वाले समान छदो के उदाहरण मिल जाते हैं जिनमे सार (28 मात्रा), सरसी (27 मात्रा), विष्णु पदी (26) दोहा (24), ताटक (30), कुडल (22), चांद्रायण (21), सुगीत (25) को पहचाना जा सका है, तथापि पदो म कहीं मात्राएँ कम ज्यादा हैं तो कहीं यति स्थानो मे भी अतर है। अत छद शास्त्र के निगमन की कसौटियाँ मीरा पर लागू करना सुसगत नही होगा। वहाँ तो भावना प्रवणता का आस्वादन करना ही प्रधान लक्ष्य रहना चाहिए। वैसे गीति तत्व के विचार से सार, सरसी, विष्णुपद और कुडल छन्द अधिक प्रवाही माने जाते हैं।

जैसे—पग घुघरू बाँध मीरा नाची रे। (1612)
मैं तो मेरे नारायण की हो गइ आपहि दासी, रे। (16 12/2)

अत के 3 3 गुरु स्वर को खुलापन देकर आलाप और तान की सुविधा भी प्रदान करते हैं। मीरा अधिकतर पद इस शैली के हैं जो अत मे ऽ या ऽऽ या ऽऽऽ के लक्षण रखते हैं—यथा—पदो के चरणांत मे—"लैसी माई, मानू, चलास्या' दासी रे, नासी रे, हासी रे, अविनासी रे" 'राची रे, नाची रे, मदमासी रे, आरोगीरे" 'आणी, बाराबाणी, पाणी, औराणी, सनकाणी, लपटाणी।"

मीरा के कलापक्ष की समीक्षा करते हुए समीक्षकों ने मीरा को मेडता वासिनी मानकर उसकी भाषा मे पुरानी राजस्थानी की छाप खोजने के प्रयत्न किए हैं। हमे सोचना चाहिए कि जब किसी सत या भक्त की बानी लोकव्यापी हो जाती है, लोगो की जबान पर चढ जाती है तब वह भाषा विशेष के साँचे और ढाँचे की सीमा तोडकर ही वैसा कर पाता है। कबीर, दादू, रैदास, मीरा के लिए हम इस तथ्य को ध्यान म रखना चाहिए। ऐसे साहित्य मे अधिक स अधिक हम (1) उसकी शब्द सम्पदा और (2) उसकी उक्तिगत सरचना को ही समझने की कोशिश कर सकते हैं क्योंकि उनम ही उस साहित्य की मूल बातें सुरक्षित रह सकती हैं और परिवेश को प्रमाणित कर सकती है—

मीरा के पदो मे शब्द सम्पदा के स्वरूप को देखना चाहे तो उन्हे कई प्रयोजन निष्ठ वर्गों मे देखने की जरूरत होगी, यथा भक्ति सम्बन्धी, उपासना सम्बन्धी नितनेम, लोक जीवन से सम्बन्धित विविध वस्तुएँ, काम, व्यापार, प्रकृति आदि उसी तरह उक्ति सम्पदा के प्रसग मे हमे कथन रीति मे पद योजना या सरचना, मुहावरे, रूढोक्तियो, कहावतो और सास्कृतिक निरुपणवाची कथनो को देखना पडेगा। उनसे मीरा के समय की लोक भाषा और अभिव्यजना के स्वरूप का आभास मिल सकेगा।

(1) शब्द सम्पदा मीरा भक्त थी। उसकी भक्ति पर लोकतात्त्विक कारणो से सगुण भक्ति धारा का प्रभाव भी था और सत एव नाथ साधना का भी। उसके पदो मे अपने इष्ट के लिए जिन शब्दो सम्बोधनो का प्रयोग हुआ है, वे लोक मानस और समन्वित साधना का प्रमाण देते हैं—यथा—

(i) मीरा के इष्ट, गिरधर नागर, गोकल का बिहारी, हरी, गोव्यद, मन मोहन, साँवलिया, बलबीर, 33 (123), सावरो, साँवरिया चतर-भज नाथ, श्याम सुदर भी हैं, बन्दाबन चद की है, मोहनलाल, बिहारी भी।

(ii) दीनानाथ, प्रभुजी, प्रभु, और

(iii) राम के साथ साथ

(iv) जोगी, जोगीडा, सामी, स्वामी अविनासी, सतगुरु, खसम, रमैया भी हैं और

(v) प्रियतम, प्रिय, पिया, सजन, प्रान आधार, धणी होने के अलावा

(vi) महाराज, ठाकुर, रावल, हुजूर, नरेस, भी हैं, और गरीब निवाज 33 (109) भी।

इतने सारे नामो से सम्बोधन बताता है कि लोक मे ईश्वर वाचक नामो में सम्प्रदायवादिता नही थी। मीरा की अपनी छाप तो 'प्रियतम' वाचक थी और 'ठाकर' वाची प्रयोगो का चलन राजघरानो मे था।

स्वय मीरा ने अपने लिये 'मीरा, दासी मीरा, बाई मीरा, जन मीरा 33 (160), दास मीरा (161)—जस सम्बोधनो का प्रयोग किया है जिनमे उसकी विनय पूर्णता झलकती है। 'बाई' मे राजपूती छाप है।

अपनी भक्ति के लिए मीरा ने भगति रसीली 33(16), दास रावरी 33(4) धणी मिल्या छै हजूर (21), गिरधर रगराती (20), अपणे सया सग साँची प्रभु गिरधर नागर, (24) सो गया अचल सुहाग (27), अपणी कर लीजे (28), गोविंद मिल्या जी (29), प्रभु हरि अविनाशी (31), सरण सबल गिरधर की

(38), जनम जनम की दासी (40), दासी अपणी जाणी (41), बांह गहे की लाज राखज्यो (42), साँवलिया वर पावां (43), भजन भाव में मस्त डोलती (45), राम अमल माती रहे (47), मीरा व्याकुल विरहिणी (49), जोत मे जान मिला जा (50), चरण सरण है दासी (54), प्रेम पियारा मीत (61), चेरी भई बिन मोल (62), लाज राखो महाराज (64), तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी (67), मीरा दासी राम रती (68), बैद साँवलिया होइ (72), लीज्यो कठ लगाई (73), पिया दरसण दीजो मोहि (74) रमैया बिन नींद नहि आव (76), पीया सो प्रीत खरी (82), प्रीत रसीली बसी (88), पिया की उमग अति लागी री (91), तुम चरणा आधार (93), मैं भई रावरी (100), अग से अग लगावो हा (104) चरणन की चेरी (128), सहज वर वैराग (162), जीव परम पद पावै (160), छाज मे वर बदूयो (174) साँवलियां सू प्रीत ओरन सूँ आखड़ी (192) भज उतरे भव पार (196), ताहि क रग मे भीजे रे (199), इस तरह के पदो का प्रयोग किया है। इनसे पता लगता है कि इनके पीछे कभी भक्ति का, कभी शरणागति का, कभी साधना का, कभी दाम्पत्य का भाव प्रधान रहा है। यह मानना ठीक नहीं होगा कि मीरा की भक्ति केवल दाम्पत्य भाव की ही थी यद्यपि उसमें दाम्पत्य भावना एक प्रखरतर विशेषता थी। उसके कारण उसकी भक्ति मे एक मतवालापन था, एक हठ था और विशेष तरह का आग्रह भी था। उसे मीरा की भक्ति का स्थायी भाव कह सकते हैं।

इसी तरह नितनेम, धरम-करम सम्बन्धी जैसी शब्दावली आई है, उसमें—परसि हरि के चरण, 33(1) प्रणाम (2), मगन भई मीरा (2), सतन सुखदायी (3), अरज करत हूँ (5), दरस की भूखी (6) चरण कँवल लपटानी (8), सुरत जमाऊँ (12), हिरदे धरि लीजे हा (12) गिरधर आये नाचूंगी (14), रमैया नैं देखबो करूँरी (18), जगे रहा दिन राती (20) बधि वार-पार हूं गो ग्यान गुरु गाँसी (22), जिण मारग साध पधारे उण मारग म्हें जास्यां (23), साधा के सग मैं भटकी (24), साधा दरसण जाती (26) सेवा साधु जनन की (29), सत गुरु सरण लहूँ (31), सुमिरन थाल हाथ म लीना (32) चरणाम्रित को नम (34), नित उठ दरसण जास्यां (वही) निरत करास्यां (वही), घुंघरिया घमकास्यां (वही), गुण गास्यां (वही), हाथ धोय जब देखण लागी (45), उठत बैठत राम (47), भजन करै वही ठौर (47), रहूँगी बैरागण हाय री (48), प्रम भगति को पैंडो ही न्यारा (50), तेरे ही कारण जोगण हूँगी (52), भगवाँ भेस धरूं तुम कारण (70), छाने लघन मैं कियारी (74), मन कू मार सजूं सत गुरु (92), सोनी सुरत जगाऊ (वही), जोग धारणा (93) बन-बन बीच फिरूंगी (94), पल पल तरा रूप निहारूं (106), दीपक जोऊं ग्यान का (158) इस तरह के भक्ति और साधना रूपों का हवाला है।

इसका आशय यह होगा कि मीरा के समय साधु संतो और लोक मानस मे सभी पुरानी रीतियो का समन्वय हो चुका था। तभी मीरा की भक्ति के रूपो मे स्मरण, ध्यान, भजन, कीर्तन, नर्तन, दर्शन, चरणामृत आदि के साथ ध्यान, समाधि और भगवाँ वेश धारण करने की बातें आई हैं। ज्ञान चर्चा भी।

लोक जीवन की क्रियाओ, व्यापारो से सम्बन्धित शब्द-सम्पदा विविध है और अपने समय के सामाजिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक स्थितियो के हवाले देने मे सक्षम भी है। वस्त्राभूषणो के, पर्व उत्सवो के विश्वास, धारणा आदि अमूर्त व्यापारो के, स्वप्न शकुन, नत्य, वाद्य, पशु, पक्षी, परिवार, नाते रिश्ते आदि से सम्बन्धित शब्दो का, मीरा के पदो के आधार पर, पूरा कोश बनाया जा सकता है।

ऐसी शब्द सम्पदा का उपयोग या तो नामोल्लेख के रूप मे हुआ है या मीरा की भक्ति के उद्दीपक साधनो के रूप मे, यथा—

> क्षुद्र घंटिका कटि तट शोभित नुपुर सबद रसाल।
> मीरा प्रभु संतन सुखदायी, भक्त बछल गोपाल। 33(3)

मारवाड़ मे आज भी छोटे बच्चों की कमर मे किंकिणि वाली करधनी पहनाई जाती है और उसकी आवाज पर बच्चे ठुमकते रहते हैं। इस गोपाल रूप के साथ 'संतन सुखदायी' और 'भगत बछल' की भावना जोड़ी गई है। उसी तरह से 'बकट छवि' (7), के लिए कृष्ण के बांके छैल छबीले रूप के वाचक शब्द सजोए गए हैं। उनमे मीरा की अपनी लोक संस्कृति के तत्त्व भी हैं—' टेढ़ी पाग लट लटके।"

ऊभी ठाढ़ी अरज करत हूँ—मे सामंतवादी संस्कृति की झलक है। त्रिकुटी महल, झरोखा, सुन्न महल, सुरत, सुख की सेज, पिय के पलग, सुमिरन, सुरभी आसन, मेखला, माला, मुद्रा, खप्पर—ऐसी शब्दावली जोधपुर, मेड़ता नागौर के लोक जीवन म व्याप्त नाथपंथी योगियो, सिद्धो और लोक देवताओ के प्रभाव के संकेत देती है।

सुंदर, सुहावणा, मोहन, नटवर, बकट छवि—जैसे शब्द जोधपुरी राठौड़ो की सहज सुंदरता और आकर्षक व्यक्तित्व और तद्रूप सौंदर्य बोध के वाचक हैं।

ढोल, डोरी, घुघरू, कछनी पखावज, ताल मदंग, निरत मुरली, चग, डफ, मोरचग,—जैसी शब्दावली लोकप्रचलित नृत्य वाद्य, मस्ती, मगनता की संकेतक है तो बाजूबंद कड़ूला, नौसर हार, सिंदूर, रतन जड़ित आभूषण, चूनर, लँगो, घाघरो, चूड़ो, तिलक, मोती माणक—जैसी शब्दावली तत्कालीन साज सज्जा का हवाला देती है।

मोती चौक, आरती, सुमिरण थाल, मोती न्यौछावरि, मगल गीत—जैसी शब्दावली राजपूती परम्परा, स्वागत, उत्सव की रीति नीति के वाचक हैं।

आम, कोयल, पपीहा, मोर, बिच्छू, केर, झिरमिट, बादल, कठ चुन, काली

साथ अर्थ की सगति भी बैठ रही है। वैसे ही 'बडे घर ताली लागी रे 33(21) वाले पद मे छोटी-बडी स्थितियो का तुलनात्मक सरणियों से जो विरोध वक्रता पैदा हो रही है, वह चमत्कारी अर्थ देती है— छीलरिये, डावरिये' की तुलना मे 'दरयाव की सरचना, 'हाल्या मोल्या और कामदारों' की तुलना मे 'दरबार' 'कांच, कथीर, लोहा' की तुलना मे हीरा रो ब्योपार'—इस तरह से 'बेधि बार-पार ह्वै ग्यो ग्यान गूह गांसी' (22) की सरचना भी अर्थ की अतिशयता पैदा कर रही है।

'तो' सरचना वाली उक्तियां अर्थ मे निश्चयात्मकता और बल पैदा करती हैं— कोई निंदो कोई बिंदा म्हें तो गुण गोविंद का गास्यां' (23)। क्रियापद के पास होने से अर्थ का भार 'गुण' पर नही, गोविंद' पर चला गया है।

इस तरह से वाक्य सरचना और पदक्रम की मीरा की अपनी विशिष्टता है जो उसके अर्थ को पैना और बेधक बनाती है—

'भाभी, बोलो बचन बिचारि'मे (30) 'था ने सौगन म्हारी' (30) म' बरजी मैं काहू की नाहि रहूं' (31) मे सरचना बदल दें तो अर्थ का तीखापन खतम होकर रह जाएगा।

जब उक्ति लोक मे प्रचलित मुहावरो, रूढोक्तियो से मिलती-जुलती होती है तो वह लोकानुभव को जाग्रत करने वाली और हृदयग्राही हो जाती है। रूढोक्तियो की चर्चा करते हुए इस बात को हम पहले उजागर कर चुके हैं। मीरा के पदों मे ऐसी उक्तियो की भरमार है—'यह छबि देख मगन भई मीरा' 33(2), 'आप बिना मोहि कुछ न सुहावै, निरखी सब ससार', दिल के बडे कठोर' (5), 'तुमसे हम कू कब रे मिलोगे हम-सी लाख करोरि। (5), 'अरज करत भया भोर (5), 'मन बसिगो' (6), 'गजबन के सग डोलत हो' (6), 'ऊभी ठाढी अरज करत हूं (5), अरजहू अपन दुलरवा' (6), 'सुनिये बितलाय (6), 'रूप लुभानी' (7), चरण कवल मीरा लपटानी' (8), 'नैणा लोभी रे' (9), 'बतियां बहुत बनाई' (10), परहथ गये बिकाई' (10), सब लई सीस चढाई' (1), 'पल भरि रह्यो न जाइ' (9), नैणा बाण पडी (10), उर बिच साल अडी' (11), कब की ठाढी पथ निहारों (11), 'जीवन मूर जडी' (11), 'गिरधर हाथ बिकानी' (11), लोग कहैं बिगडी'(11) 'बनज बसाऊं री (12), 'हरती पलक न नाऊं री (12), 'झांकी लगाऊं री' (12), 'सज बिछाऊं री' (12), 'ग्रलि नाऊ री' (12), 'हिरदे धरि लीजे हो' (13) 'नैणा रस पीजे हो' (12) जेहि जेहि विधि रीझै हरी सोई विधि कीजे हो (13), 'बड भागण रीझ, हो' (13), प्रेमी जन कू जाचूंगी' (14), थामे एक न राखूंगी' (14) 'पलगा जा पौढूंगी, रंग राचूंगी (14), 'कहा करिहै काई' (15), 'भगति देखि राजी हुई जगती देखि रोई' (15), 'सब जग खारा लागत' (16), 'आर

पीली आँधी, दामिनि, चन्द्रकला, पाला, मेहा, काली नाग, कागा—ऐसी शब्दावली मारवाड़ी प्रकृति के भिन्न भिन्न रूपों का आभास देती हैं।

डगर बुहारना, ढिंढोरा फेरना, पारधी, बनज बसाना, तोल तराजू, निरख परख, छाने चौड़े लेना, पाँवणाँ पधारणा, फेरी देना, घर घर गवण निवार, सरवरिया री पाल सापडणो, पतिया भेजना, सनेसा भेजना, अडसठ तीरथ, व्रत नम, अष्टकरम, खेत निपजाया कालर लूण, ताला कूँची पेटी, गुलाल, चोवा, चदन, केसर, अरगजा गागर, राग छतीसू, रग तन कपड़ा, कसाई, चंडाल, बावरिया और किवरिया, दही दूध, माखन माखन रोटी' मटकी, गुजरिया—ऐसी शब्दावली लोक जीवन के विविध काय व्यापरो का सकेत देने वाली है।

मीरा के पदो की शब्द सम्पदा विपुल, व्यापक और प्रयोजनवती कही जा सकती है।

(2) उक्ति सम्पदा शब्द सम्पदा जब अथशक्ति से आवेशित की जाती है, तब वह उक्ति सम्पदा बनती है और वक्ता के आशय को, मन्तव्य को, धारणा को, और उसकी प्रेरणा को आकार देती हैं।

मीरा के पदो मे उक्ति चमत्कार कम है किंतु उक्तियों में भावना प्रवणता, अनुभूति की सहजता और मम भेदकता के तत्त्व अधिक हैं। उक्ति सम्पदा में हम मीरा के पदो मे आयी उक्तियो की सरचना, उनकी मुहावरेदानी, रूढोक्ति परम्परा और लोक बान को देख सकते हैं।

किसी उक्ति का प्रभाव उसमे अर्थवत्ता की शक्ति, उसकी सरचना से आती है। मीरा के पदो मे उक्तियो के गठन की शैली सामान्य से कुछ भिन्न ही लगती है, यथा—

जिण चरण ब्रह्माड भेटयो नखसिखा सिरी धरण 33(1)—इस उक्ति मे ब्रह्माण्ड की सीमा मेटने के साथ नखसिखा का अव्यय प्रयोग अथ को साकारता देने का काम कर रहा है। ऐसा लगता है जैसे ब्रह्माड भी आकाश से पाताल तक एक रूप हो जिसे नख से शिख तक विष्णु के चरणा न नाप कर उसकी अनन्त सीमाओ का लोप कर दिया। ब्रह्माड नापना कहने या धरती आकाश नापना कहने से उक्ति मे ऐसी अथवत्ता नही आ सकती थी। उसी तरह 'क्षुद्र घटिका करि तट सोभित' (3) मे कटि तट की सरचना अनोखी है जो 'कमर की करधनी का अथ ध्वनित कर रही हैं। 'मेरे आसा चितवनि तुमरी ओर न दूजी दोर' (5)—यहाँ भी सरचना विचित्र है जो आशा और चितवन के बीच डोर का सम्बन्ध बनाती है वह अगर टूट जाए तो निराश्रितता का अथ मार्मिक बन कर उभरता है। उसी तरह—सुर नर मुनि मोहे हो ठाकुर जादुनाथ, (6) वाली उक्ति मे 'ठाकुर' ईश्वर वाचक और 'जदुनाथ' यदुकुल शिरोमणि वाचक होकर दुगुना अथ प्रकाशन करने वाली सरचना बना रहे है, तभी सुर' 'नर' और 'मुनि' जनो के

साथ अथ की सगति भी बैठ रही है। वैसे ही 'बडे घर ताली लागी रे 33(21) वाले पद मे छोटी वडी स्थितियो का तुलनात्मक सरणियो से जो विरोध वक्रता पैदा हो रही है, वह चमत्कारी अथ देती है— छीलरिये, डावरिये' की तुलना मे 'दरयाव की सरचना, 'हाल्या मोल्या और कामदारा' की तुलना मे 'दरबार' 'कांच, कथीर, लोहा' की तुलना में हीरा रो ब्योपार'—इस तरह से बेधि वार-पार ह्वै ग्यो ग्यान गुह गांसी' (22) की सरचना भी अथ को अतिशयता पैदा कर रही है।

'तो' सरचना वाली उक्तिया अथ मे निश्चयात्मक्ता और बल पैदा करती हैं—'कोई निंदो कोई बिंदो म्हे तो गुण गोविंद का गास्याँ' (23)। क्रियापद क पास होने से अथ का भार 'गुण' पर नही, गोविंद पर चला गया है।

इस तरह से वाक्य सरचना और पदक्रम की मीरा की अपनी विशिष्टता है जो उसके अथ को पैना और वेधक बनाती है—

'भाभी, बोलो वचन विचारि'(मे (30) 'था ने सौगन म्हारी' (30) मे' बरजी मैं काहू की नाहिं रहूँ' (31) म सरचना वदल दें तो अथ का तीखापन खतम होकर रह जाएगा।

जब उक्ति लोक में प्रचलित मुहावरो, रूढ़ोक्तियो से मिलती-जुलती होती है तो वह लोकानुभव को जाग्रत करने वाली और हृदयग्राही हो जाती है। रूढ़ोक्तियों की चर्चा करत हुए इस बात को हम पहले उजागर कर चुके हैं। मीरा क पदो मे ऐसी उक्तियों की भरमार है—'यह छबि देख मगन भई मीरा' 33(2), आप बिना मोहि कुछ न सुहावै, निरखी सब ससार', 'दिल के बडे कठोर' (5), 'तुमसे हम कू कब रे मिलोन, हम-सी लाख करोरि। (5), 'अरज करत भयो भोर (5), 'मन बसिगो' (6), 'गठवन के सग डोलत हो' (6), 'ऊभी ठाढी अरज करत हूँ' (5), 'बरजहू अपन दुलरवा' (6), 'सुनिये चितलाय' (6), 'रूप लुभानी' (7), चरण कवल मीरा लपटानी' (8), 'नैणा लोभी रे' (9), 'बतियाँ बहुत बनाई' (10), परहथ गये बिकाई' (10), 'सब लई सीस चढ़ाई' (1), 'पल भरि रह्या न जाइ' (9), नैणा बाण पडी' (10), उर बिच आन अडी (11), कब की ठाढ़ी पथ निहारों (11) 'जीवन मूर जडी' (11), 'गिरधर हाथ बिकानी' (11), लाग कहूँ बिगडी'(11) 'वनज वसाऊँ री (12), 'डरती पलक न नाऊँ री' (12), 'झांकी लगाऊँ री' (12), 'सेज बिछाऊँ री (12), 'गलि नाऊँ री' (12), 'हिरदे धरि लीजे हो' (13), नैणा रस पीजे हो' (12), जेहि जेहि विधि रीझै हरी सोई विधि कीजे हो (13), 'बड भागण रीझ, हो' (13), 'प्रेमी जन कू जांचूगी' (14), याम एक न राखूगी' (14) पलगा जा पौढ़ूगी, रग राचूगी' (14), 'कहा करिहै काई' (15) 'भगति देखि राजी हुई जगती देखि रोई' (15), 'सब जग खारो लागत' (16), और

बात सब कांची (16) 'गिरधर के घर जाऊँ' (17), 'ज्यू त्यू वाहि रिझाऊँ' (17), 'जो पहिरावें सो ही पहिरूं जो दे सो ही खाऊँ' (17), 'बेचे तो बिक जाऊँ' (17), जहाँ जहा पाँव धरणी पर' (18), कोई कहे छाने कोई कहे चौडे' (19), 'बजता ढोल', 'मूहघो सूहघो', 'तराजू ताल', 'अमोलक माल', 'लियोरी आँखी खोल', 'पूरब जनम को कौल मतलब कि मीरा के पदो मे लौकिक शैली की मुहावरेदारी ही उन्हें हृदयहारी बनाती है, उनम मगन भाव और अरहडता लाती है। एक एक पद मे चार से छह तक मुहावरो की बहार दिखाई पडती है—

'खोल मिली तन गाती (20), 'ना कहू आती जाती', 'विरह कलेजो खाय' (101), 'क्यू तरसावो अतर जामी (101), 'पापी जीव न जावें' (96), 'नगर ढिंढोरा फेरती रे' (102), 'रीत छोड अनरीत करोना' (173),—जिधर भी नजर डालें चाहे जिस पद को उठा लें उसमे मुहावरेदार प्रयोग की चटक जरूर मिल जाएगी। इस मुहावरे दरिता के कारण ही मीरा के पद अथवान और सीधे चोट करने वाले बन जाते हैं।

इसके अलावा उनम कहावतो और सहज उपमा, रूपक, आदि अलकार मयता के कारण भी मीरा की उक्तियाँ विशेष प्रभाव पैदा करती हैं—'और आसिरो नाही तुम बिन, तीनू लोक मझार' 33(4), 'तुमसे हमकू कबर मिलागे, हम भी लाख करोरि (5), देस्यू प्राण अकोर' (5), 'कुटिल भृकुटी, तिलक भाल, चितवन मे टोना खजन अर मधुप, मीन, भूले मगछौना (9) भली कहो कोई बुरी कहो मैं, सब लइ सीस चढाइ' (10), चित्त चढी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अडी' (11), 'पिव के पलगा जा पौढूगी मीरा हरि रग राचूगी' (14), 'जहाँ बिठावे तित ही बैठूं, बेचे तो बिक जाऊँ' (17) 'कोई कहे छाने, कोई कहे चौडे, लियो री बजता ढोल' (19), कोई कहे मूहघो, कोई कहे सूहघो, लियो री तराजू तोल' (19), 'चदा जायगा, सूरज जायगा धरणी अकसी। पवन पाणी दोनूं ही जायेंगे, अटल रहे अविनाशी' (20) 'ना घर मेरा, ना घर तेरा, गाव मीरा दासी' (20), 'इमरित प्याला छोडिके, कुण पीवें कडवो नीर' (21), कुल कुटुम्बी आन बैठे मानहु मधु माखी' (22), 'गज से उतर के खर नहिं चढस्या' (23), 'चाट लगी निज नाम हरी की म्हारे हिवडे खटकी (24), 'साँचो पियाजी री गूदडी, देखि विराणं निवाण कू, क्यूं उपजावें खीज। कालर अपणोही भलो, जामे निपजे चीज (25), छैल विराणो लाख को है अपणे काज न होइ' (25) 'वर हीणो अपणो भलो, कोढ़ो कुष्टी कोई,' (25), 'माता पिता सुत कुटुम कबीला, टूट गया ज्यू तागा' (25), जो मास्यां की बावडी ज्यां कू नीर न पीजें, हरि नारे अमृत झरे, ताकी आस करीजे' (28), पुन के मारग चालतां जी, झक मारो संसार' (29), 'बडां घर में जनम लिया छै, नाचो दे दे तारी' (30), 'मान अप-मान दाउ धर पटके' (33), यह ससार बाड का काँटा, ज्यां सगत नहिं जास्यां'

(34), 'यें तो राणाजी म्हांने इसडा लागो, ज्यू ब्रच्छन म कँर' (37), 'राम नाम का थाझ चलास्यां भय सागर तर जास्यां' (38), 'जैसे कचन दहत अगिन म, निकसत बारा वाणी (41), 'अपणे घर का परदा कर ले, मैं अबला बौराणी (41) 'म्हनें भावे गरदनमार' (42) राठोडा री धीयडी जी सीसोदयां रे साथ। सँ जाती बैंकुठ कू म्हारी नेकु न मानी बात (42), 'या तो अमल म्हारो कबहुँ न उतरे' (44) 'सांझ भई मीरा सोवण लागी, मायो फूल बिछाय' (45) सास लडै म्हारी नणद खिजावै, राणो रह्या रिसाय (46), सीप भर्‌यो पाणी पिवे रे, टाँक भर्‌यो अन्न खाय (47), मार्‌या पराछित लागसी, म्हांने दीजो पीहर मेल' (47), 'कुल की तारण अस्तरी या तो मुरड चली राठोर' (47), कर सूरापण नीसरी, म्हारे कुण राजा कूँण राव' (47), फाडूँगी चीर करूँ गल कथा, रहूँगी बैरागण होय री चुटियां फोरूँ, मांग बिखेरू, कजरा मैं डारूँ धोय री' (48), 'पांवन चालैं पथ दुहेला, आडा ओघट घाट' (49), 'अगर चदणकी चिता बणाऊँ, अपणे हाथ जला जा' (50), 'जल बल भाई भसम की ढेरी, अपणे अग लगाजा' (50), 'जोत मे जोत मिलाजा' (50), 'रावारी हो के किण रे जाऊं' (51), तरे खातर जोगण हूँगी, करत लूगी कासी' (52) 'आत न दीसै, आत न दीसै, जोगी किसका मीत' (59) 'इमरित पाइबे बिप क्यू दीजै, कूण गाँव की रीत' (60), "मैं जाणू या पार निभैगी छोड चले अध बीच' '(61), 'चढती बैस नैण अणियाले, तू घरि घरि मत डोल' (62), 'बिरह समद मे छोड गया छो नेह की नाव चढाय' (66), 'पाट न खोल्या, मुख ना बोल्या, सांझ भई परभात' (68), 'सूली ऊपर सेज हमारी, किण विधि सोवणा होइ' (75), 'छाणे लयण मैं कियारी, राम मिलण के काज' (74), 'मास गले गल छीजिया रे, करक रह्या गल आहि' आगलिया रो मूदडो म्हारे आवण लागो बाह' (74), 'विन पिया जोत मदिर अँधियारो, दीपक दाया न आवैं' (75), 'बिरह नागण मेरी कायाडसी है, लहर लहर जिव जाव' (75) दाभन्या ऊपर लूण लगायो, हिवडो करवत सार्‌यो'(83), 'ज्यू चातक घन कू रटै, मछरी जिमि पाणी हो' (87)।

मन कू मार सजू सतगुरु सू दुरमत दुर भगाऊँ।
जाको नाम, सुरत की डोरी, कडिया प्रेम चढाऊँ।
ज्ञान को ढोल बण्यो अति भारी, मगन होय गुण गाऊ।

तन करू ताल, मन करूँ मारेचग, सोती सुरत जगाऊँ। (92) तरे कारण जोगण हूंगी, दूगी नगर बिच फेरी (24)' रूम रूम छावा भई डर मे, मिटि गई फेराफेरी (94), 'भूख गई निदरा गई, पापी जीवन जाणे दे (96),' मीरा दासी भई है पडर, पलटया काला केस (97), 'दरसण बिण मोहि जक न परत है, चित मेरो डांवाडोल मीरा कहे मैं भई रावरी, कहो तो बजाऊँ ढोल (110)',

प्राण गमायो झूरता रे, नयण गमायां सेय (102)', सबद सुणत मेरी छतियां कापैं, मीठे मीठे बैन (103)', 'भई छमासी रैन, (103), 'तुम देख्यां बिन कल न परत है, जानत मेरी छाती, (106), 'यो मन मेरो बडो हरामी, ज्यू मदमातो हाथी, (106), 'लागि लगनि छूटण की नांही, अब क्यू कीजै आंटडियां, (108), 'तुम गुणवत बडे गुण सागर, मैं हूं जो औगुण हारा, (113)' 'तुम बिच हम बिच अतर नाही जैसे सूरज घामा,' (115), साजणिया दुसमन होय बैठया, सबने लगू कडो (119)—कहीं कहावतों का प्रयोग, कहीं रूढोक्ति का उपयोग, कहीं सहज समावेश वाली उपमाएँ, कहीं रूपक, कहीं उत्प्रेक्षा, कहीं विभावना—'बिन सुर राग छत्तीसू गावैं (151), कहीं अत्युक्ति—'आंगलियारो मूदडो म्हारे आवण लागो हाथ, कहीं उदाहरण—'तुम बिच हम बिच अतर नाही, जैसे सूरज घामा, कहीं विरोध वञ्चना और कहीं नितात लौकिक प्रयोग—फाटत छाती, बोलो बचन सम्हालि, दरस की भूखी, हमसी लाख करोर, पियत पिमूख न भटके, चरणा लिपट पडूंगी—ये सब मिलकर मीरा की अभिव्यक्ति को पैनी, तीखी, चुटीली और सहज भाव से मन मे उतरने वाली बनाते हैं। उसकी उक्तियाँ जितनी सपाट बयानी वाली हैं, उतनी ही लोकानुभूतियों से सम्पृक्त हैं। उनमे कवियो की सी कसरत भी नहीं है, जड़ाव और सजाव नहीं है, इसी कारण शायद ये उक्तियाँ जन जन की हो गई हैं, सर्वव्यापक हो गई हैं और युग जीवी बन गई हैं।

उपसहार

मीरा का युग मध्यकालीन सामती युग था। युग ऐमा जिसमे भक्ति, ज्ञान, वैराग, वीरता और बलिदान की पाच धाराएँ समातर बहती थी। एक सुदीर्घ सास्कृतिक परम्परा ने उन सबका एकमेक करके ऐसे लोक धरातल का निर्माण कर रखा था कि उसमे से उनके तत्वो को अलग करना सभव नही था। मीरा से कुछ पहले नामदेव, कबीर, रैदास, लगभग समकालीन पापा, सेन, सूरदास, वल्लभाचाय, विट्ठलदास आदि थे। मारवाड की भूमि मे लालनाथ, बालनाथ, जभोगी, रामदेवजी जैसे सत और पीर अपने पूरे प्रभाव के साथ लोकचर्चित थे। ऐसे मे मीरा के व्यक्तित्व ने जा भक्ति की बान पकडी तो वह सबके प्रभाव से एक अनोखी ज्योति बनकर प्रकट हुई। उसी पूव काल मे ढोला मारू, सोहणी-महिवाल, पद्मणी, बीसलदे रासो परमार रासो (आल्हाखड) जैसे लोककाव्य, भरथरी, गोपीचन्द, गोरख मछिदर जैसे नाथ कुछ एसा परिप्रेक्ष्य बना गए थे जिसम आम आदमी की आम अनुभूतियो, राग विरागो और अल्हड धारणाओ को वाणी मिली थी। मीरा की अभिव्यजना का यही धरातल था। इसी कारण उसके पदो म हमे ऐसी तीखी अल्हड उक्तियाँ मिलती हैं जो लोक भाषा मे, लोक व्यवहार मे, ही होती हैं, तथाकथित साहित्य मे प्रयुक्त परिनिष्ठित और सीमित अभिव्यक्ति मीरा के पदो का लक्षण नही हो सकती।

इसी कारण हम पाते हैं कि मीरा के कुछ पदो म कबीर, नामदव, धमदास, गोरख, तो कुछ मे नरसीभगत, सूर, तुलसी, हरिदास और कुछ मे सूफियाना आशिक मिजाजी मिलती है। ऐसी समानता का कारण यही है कि ये सब लोक साधक थे। लोक मगल उनका क्षेत्र था और लोकमानस के साथ वे तदाकार हो गए थे, सारे देश मे लोकमानस—किसी समय विशेष मे—किसी सीमा तक एकाकार होता है और किसी सीमा तक उसमे आँचलिक प्रस्थान भेद भी होता है। उदाहरणतया 'भक्ति या ज्ञान तत्व की प्राप्ति अमूल्य धन है'—यह लोक-मान्यता हजारो वष पुरानी है और सस्कृत से लेकर आज तक उसे भक्तो, सतो, कवियो ने अपने ढग से वाणी दी है—

"निधन को धन राम हमारो निर्धन को धन राम।
चोर न लेवे, घटहु न जाव, भीर पडे पै आवे काम।"

—यह कबीर की वाणी है तो—

"हमारो निरधन को धन राम।"
"हाय न खरचत, चोर न लूटत, गाढे आवत काम।"

—यह तुलसी की। इधर—

"पायो जी मैंने राम रतन धन पाया।"
"खरचे नहिं कोई चोरन लेवे, दन दन बढत सवायो।"

— मीरा ने गाया है। एक तरफ कबीर 'साधना पथ की कठिनाई' गा गए कि—

"मिलना कठिन है कैसे मिलेगी प्रिय जाय।"
"ऊँची जेल यह रपटीली, पाँव नही ठहराय।'
"लोकलाज कुल की मरजादा, देखत मन सकुचाय।"
' नैहर बास बसो पीहर मे, लाज तजी नहिं जाय।"

तो दूसरी तरफ मीरा ने लोकलाज त्यागने मे सकोच नही किया—

' लोकलाज कुल की मरजादा या मे एक न राखूगी।'

बल्कि—

'छाँडि दई कुल की कानि कहा करि है कोई"

—यद्यपि उसके लिए भी—

' गली तो चारो बद हुई हैं, मैं हरि सू मिलू कैसे जाय।"
"ऊँची नीची राह रपटीली, पाँव नहिं ठहराह।"

—वाली स्थिति थी।

जब भक्त और सत लोक धरातल पर जीते हैं तो उनके काव्य के उपजीवक लोक अवचेतन मे से आते हैं। इसी कारण हमे सब भक्तो सतो मे काफी समान अभिव्यजना दिखाई देती है—

कबीर के लिए भी 'परमात्मा जोगी था और उससे मिलने की तडप लौकिक तडपन जैसी तीखी थी'—

"कोई मिलावो मोहि जोगिया जोगिया बिन रह्योई न जाय।"
हौं हिरनी पिव पारधी हो मारे सबद के बान।"

—तो मीरा के मानस मे भी यही लोक चेतना घुमड रही थी—

"पिया बिन रह्योई न जाई।"
और ' है ऐसो कोई परम सनेही, तुरत सदेसो लावै।"

—तो, दोनो मे एक सी वेदना और एक सी भाषा भी है—

उसी तरह रैदास भी लोक मानस के रमैया थे और मीरा भी। तो मीरा और रैदास की कुछ अभिव्यक्तियां भी लगभग समान मिल जाती हैं—

रैदास गाते हैं—

'जो तुम तोरो सैंया मैं नाहि तोरू रे।"
"तुम संग तोरिक सजना कौन संग जोरू रे।'

—उधर मीरा उलाहना देती है—

"रावरी होइ के किणरे जाऊ, तुम ही हिवड़ा ये साज।"

—अगर रैदास के यहां ब्रह्म-जीव के नाते—सरवर-मछिया दीपक-बाती, चांद चकोरा के हैं तो मीरा के यहां "तुम बिच हम बिच अंतर नाही जैसे सूरज घामा" की व्यंजना है।

अगरचे सूर, तुलसी, कबीर रैदास, सबने 'असार संसार और दुर्लभ मनुष्य जन्म की बातें की हैं तो मीरा ने भी की हैं—

"नहिं ऐसो जनम बारम्बार।"
का जानू कछु पुण्य प्रकटे माणसावतार।"

—सूरदास इसी को यू कहते हैं—

"नहिं अस जनम बारम्बार।"
पुरबलौं धौं पुन्न प्रगट्यो, लह्यो नर अवतार।'

और तुलसी इस तरह से कहते हैं कि स्वर वही है, वाणी भिन्न हो गई है—

'अब लौं नसानो अब ना नसैहो।"
"राम कृपा भव निसा सिरानी, जागे फिर ना डसै हों।"

—सूर अपनी गोपियों के माध्यम से 'गोविंद की प्रीत से हटकी रहने, लोक-लाज टूटने, चौड़े आ जाने की बातें कराते हैं—

'माई री गोविंद सों प्रीत करत, तब ही काहे न हटकी री।"
"अब तो बात फैल गई, भई बीज बट की री।"
घर घर नित इहै बेर बानी घट घट की री।"
'मैं तो यह सब सही, लोक लाज पटकी।"

—मगर मीरा ता बचपन से ही कहती है—

'तू मन बरजे माइहो म्हनें साँधाँ दरसण जाता।" और
लोकलाज कुण काण जगत की, दइ बहाय जास पाणी।" कहकर सूर को पीछे छोड देती है।

रह जाता, उसकी बानी लोक बानी बन जाती है और अपने अपने ढग से व्यापक भूगोल मे, व्यापक देश-काल मे वह लोकवाही हो जाती है। इन व्यापकताओ के बीच मूल को छान निकालना कठिन काम हो जाता है। गोरख, कबीर, रैदास, सूर, तुलसी की तरह मीरा को छान निकालना भी कठिन काम कहा जाएगा। तथापि मीरा के पदो मे हम कुछ लक्षण ऐसे खोज सकते हैं जो 'मीरा की पहचान' बनाने वाले कहे जा सकते हैं, यथा—

(1) कबीर, सूर, की तरह पदो मे मीरा" 'दासी मीरा' की छाप एक पहचान कही जा सकती है।

(2) पदो मे आत्मनिष्ठता की प्रधानता। तदनुसार ही 'म्हें', म्हारी', हम' के सम्बोधनो को एक पहचान बना सकते हैं।

(3) उक्तियो मे, राजस्थानी लोकजीवन की रूढीक्रिया, कहावतो मुहावरो की अधिकता को एक पहचान बना सकत हैं। आम तौर पर हर पद मे उक्तियो की वह लौकिकता ही मीरा की मुख्य पहचान बन सकती है कि उनके कारण ही मीरा की अभिव्यक्ति मे खरापन, तीखापन, अल्हडता और सपाट बयानी आती है। सार रूप मे कथन शैली म एक ओर हम 'कबीर' को रखें—अक्खडपन म तो दूसरी ओर हमें मीरा को रखना चाहिए अल्हडपन मे—

(4) भाषा के शब्द रूपो को, व्याकरणिक गठन को, आधार बना कर हम पहचान नही बना सकते क्योकि जब बानी सार्वदेशिक हो जाती है तो उसका स्थानिक व्याकरण जीवित नही रहता। फिर, बानी युगजीवी हो जाए तो रूपाकार शेष नही रह जाता, भावना ही भावना रह जाती है। अत मीरा के पदा की पहचान हमे उसके पदो मे व्यक्त— (i) टेक (ii) हठीलापन, (iii) एकागी समपण और (iv) धारदार गति से करनी चाहिए।

(5) यह भी नही भूलना चाहिए कि "कितनी भी लोको मुखी हो गई हो, अभिव्यक्ति मे कितनी भी धारदार हो गई हो, अतत मीरा राजघराने की राठौर कया थी गुहिलौत-बहू थी और राज मर्यादा उसके रक्त मे थी।"

अत मीरा के पदो को बहुत सावधानी के साथ—खास करके सयोग, वियोग से जुडे पदो को भावना भूमि पर परखने की कोशिश होनी चाहिए। इस दृष्टि मे एक आयाम यह भी जोड लेना चाहिए कि मीरा के जीवन क्रम के जितने मुकाम थे, पदो को उनसे सहयोजित करके देखना बेहतर होगा—यथा—(i) किशोरअवस्था, (ii) विवाह सुख की अवस्था, (iii) वैधव्य की वह अवस्था जो राणा सागा की

सूरदास यदि 'गोविंद को मोल' लेते हैं तो मीरा भी वही करती है—

"हम नन्द नदन मोल लिये।"

"जम की फाँस काट मुकराये, अभय आजात किये।" (सूर)

तो मीरा ने—

"माई री मैं तो लियो गोविंदो मोल।"

"कोई कहै छाने कोई कहे चौड़े लियो री बजता ढोल।"

एक तरफ किन्ही गदाधर भट्ट नाम के कीर्तनकार का एक पद मिलता है—
9(242)

"हूं तो स्याम रंग राचो।"

देखि बिकाय गई वह मूरति, सूरति माँहि पगी।'

तो मीरा के पद मे कुछ अल्हड़ अभिव्यक्ति है—

"मैं अपन सैयाँ सग साँची।"

"अब काहे की लाज सजनी परगट ह्वै नाची।"

वल्लभ छाप के कृष्णदास और मीरा (दोनो समकालीन) के कुछ पदो मे भाव साम्य मिल जाता है—

"तनक हरि चितवी मेरी ओर।"

"मेरे तो मोहन तुम्ही एक हो, मो सो तुमको लाख करोर।"

ठवकी ठाढी मैं अरज करत हूं, सुनि हो नदकिशोर।" (कृष्णदास)

ऐसे ही भाव मीरा के अलग अलग पदो मे मिलते हैं—

"तनक हरि चितवो जी हम ओर।"

"हम चितवत तुम चितवत नाही, दिल के बडे कठोर।"

—एक-दूसरे पद मे—"तुमसे हमकू एक होजी, हमसी लाख करोर।"

और एक तीसरे पद में—' ऊभी ठाढी अरज करत हूँ साँझ भयो परभात।'

—ऐसे ही निर्गुनिया छाप वाले मीरा के पदा म भी सतो की बानी के साथ समानता मिल जाती है। इन सबका कारण यही जान पडता है कि पूरे लोक मानस मे धर्म भक्ति, वैराग, साधना, नीति, सदाचार, व्यवहार, दर्शन, ससार, जगत, काम, क्रोध लोभ मोह स्वार्थ, परमार्थ आदि के बारे म सोच समान धरातल पर स्पंदित होता था।

यह मान लेना कि मीरा के पद किन्ही अन्य जनो के हैं और उन्हे मीरा की छाप से छपा लिया गया है, अच्छा निष्कर्ष नही होगा। प्रक्षेपो की मान्यता के कारण मीरा के पदो म अनेक विभ्रता और विविधता मिलती है। हकीकत यह कि जब कोई सत या भक्त लोक तत्वो का सिद्ध बन जाता है तब वह व्यक्ति नहीं

रह जाता, उसकी बानी लोक बानी बन जाती है और अपने अपने ढग से व्यापक भूगोल मे, व्यापक देश-काल मे वह लोकवाही हो जाती है। इन व्यापिकताओ के बीच मूल को छान निकालना कठिन काम हो जाता है। गोरख, कबीर, रैदास, सूर, तुलसी की तरह मीरा को छान निकालना भी कठिन काम कहा जाएगा। तथापि मीरा के पदो मे हम कुछ लक्षण ऐसे खोज सकते हैं जो 'मीरा की पहचान' बनाने वाले कहे जा सकते हैं, यथा—

(1) कबीर, सूर, की तरह पदो मे 'मीरा' 'दासी मीरा' की छाप एक पहचान कही जा सकती है।

(2) पदो मे आत्मनिष्ठता की प्रधानता। तदनुसार ही म्हैं', 'म्हारी', 'हम' के सम्बोधनो को एक पहचान बना सकते हैं।

(3) उक्तियो मे राजस्थानी लोकजीवन की रूढ़ोक्तियो, कहावतो मुहावरो की अधिकता को एक पहचान बना सकते हैं। आम तौर पर हर पद मे उक्तियो की वह लौकिकता ही मीरा की मुख्य पहचान बन सकती है कि उनके कारण ही मीरा की अभिव्यक्ति मे खरापन, तीखापन, अल्हडता और सपाट बयानी आती है। सार रूप मे कथन शैली मे एक ओर हम 'कबीर' को रखें—अक्खडपन मे तो दूसरी ओर हमे मीरा को रखना चाहिए अल्हडपन मे—

(4) भाषा के शब्द रूपो को, व्याकरणिक गठन को, आधार बना कर हम पहचान नहीं बना सकते क्योकि जब बानी सार्वदेशिक हो जाती है तो उसका स्थानिक व्याकरण जीवित नही रहता। फिर, बानी युगजीवी हो जाए तो रूपाकार शेष नही रह जाता, भावना ही भावना रह जाती है। अत मीरा के पदो की पहचान हमे उसके पदो मे व्यक्त—(i) टेक, (ii) हठीलापन, (iii) एकागी समर्पण और (iv) धारदार गति से करनी चाहिए।

(5) यह भी नही भूलना चाहिए कि "कितनी भी लोकोन्मुखी हो गई हो, अभिव्यक्ति मे कितनी भी धारदार हो गई हो, अन्तत मीरा राजघराने की राठौर कन्या थी, गुहिलोत बहू थी और राज मर्यादा उसके रक्त मे थी।"

अत मीरा के पदो को बहुत सावधानी के साथ—खास करके सयोग, वियोग से जुडे पदो को भावना भूमि पर परखने की कोशिश होनी चाहिए। इस दृष्टि मे एक आयाम यह भी जोड लेना चाहिए कि मीरा के जीवन क्रम के जितने मुकाम थे, पदो को उनसे सहयोजित करके देखना बेहतर होगा—यथा—(i) किशोरअवस्था, (ii) विवाह सुख की अवस्था, (iii) वैधव्य की वह अवस्था जो राणा सागा की

मृत्यु तक रही, (iv) वैधव्य की वह अवस्था जो रत्नसिंह के शासन के समय थी, (v) वैधव्य की वह अवस्था जो मेवाड़ त्याग से लेकर सम्पूर्ण निराश्रयता के समय तक थी और (vi) द्वारिकावास के समय की अवस्था। इन छह अवस्थाओं में मीरा के पदों को वर्गीकृत करके देखा जाए तो मीरा के पदों का कुछ प्रमाणिक स्वरूप उभर सकता है।



सन्दर्भ संकेत

[सन्दर्भ देते समय पहले तो सन्दर्भ संख्या दी गई है। उसके बाद कोष्ठक मे पृष्ठ संख्या और पद संख्या।]

संकेत ग्रन्थ का नाम

1 महाराणा सांगा—हरविलास शारदा
2 भारत का इतिहास—खण्ड III
3 राजस्थान के अभिलेखो का सांस्कृतिक अध्ययन—डा० श्याम प्रसाद व्यास
4 राजस्थान के मेड़तिया राठौड़—डा० हुकम सिंह भाटी
5 सांस्कृतिक गुजरात—गोपाल नारायण बहुरा
6 सोलहवी सदी मे राजस्थान—डा० मनोहर सिंह राणावत
7 परम्परा (पत्रिका) भाग 63 64—सपा० नारायण सिंह भाटी
8 मारवाड़ रा परगना री विगत—मुहता नैणसी—प्रथम भाग
9 मीरा व्यक्तित्व और कृतित्व—पद्मावती शबनम
10 मारवाड़ का इतिहास—रामकरण आसोपा
11 मीरा का जीवन वृत्त और काव्य—कल्याण सिंह शेखावत
12 आल्हा खण्ड
13 हिन्दी वीर काव्य मे सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति—डा० राजपाल
14 उदयपुर का इतिहास—गौ० ह० ही० च० ओझा
15 वीर भूमि चित्तौड़—राम वल्लभ सोमानी
16 जैसलमेर की ख्यात [संवत 1513 मे चित्तौड़ पर राणा कुंभा का राज्य था। उसकी पुत्री दिलकवर जैसलमेर के कुंवर देवीदास को ब्याही गई थी। संवत 1585 मे लूणकरण भाटी को चित्तौड़ के राणा सांगा की पुत्री सरस कवर ब्याही थी और उसने अपनी पुत्री राज कवर—उदैसिंह को ब्याही थी।]
17 मीराबाई ऐतिहासिक व सामाजिक विवेचन—डा० हुकुमसिंह भाटी

18 जयमल वश प्रकाश
19 मारवाड रा परगना री विगत—नैणसी द्वितीय भाग
20 मुगल कालीन सगुण भक्ति काव्य का सास्कृतिक विश्लेषण—डा० रत्नचन्द शर्मा
21 चुरु मडल का इतिहास—गोविन्द अग्रवाल
22 दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता
23 मीरा स्मृति ग्रथ—सपा० 'शलभ'
24 मारवाड का इतिहास—विश्वेशरनाथ रेऊ
25 वश भास्कर—सूर्यमल्ल मीसण
26 पूव आधुनिक राजस्थान—डा० रघुबीर सिंह
27 मुगल कालीन सगुण भक्ति काव्य का सास्कृतिक विश्लेषण—डा० रत्नचन्द शर्मा
28 मध्यकालीन राजस्थान मे धार्मिक आदोलन—डा० पेमाराम
29 मध्यकालीन भारतीय सस्कृति—डा० गौ० ही० ओझा
30 मीराबाई री परची—परम्परा 1984
31 मीरा एक अतरग परिचय—नीलिमा सिंह
32 मीराबाई—डा० राजेन्द्र मोहन भटनागर
33 मीराबाई की पदावली —परशुराम चतुर्वेदी, सवत, 2012
34 रामचरित मानस—गो० तुलसीदास
35 मीरा मगल—मरुवाणी 3 1
36 राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० हीरालाल माहेश्वरी
37 लोक साहित्य विज्ञान—डा० सत्येन्द्र
38 हिन्दी उपन्यासो मे लोक तत्त्व—डा० इन्दिरा जोशी
39 यहाँ हमने आचाय परशुराम चतुर्वेदी, डा० कल्याणसिंह शखावत तथा पद्मावली शबनम द्वारा चयनित पदो का सहारा लेकर लोकतात्त्विक अध्ययन किया है।
40 हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल
41 कबीर ग्रथावली —सपा० श्याम सुन्दरदास
42 सत साहित्य मे प्रतीक विधान—डा० मुहम्मद अहसन
43 राजस्थानी कहावत कोश—भगीरथ कानाडिया
44 मीराबाई—डा० प्रभात
45 ढोला मारु रा दूहा—डा० भगवती लाल शर्मा
46 मीरा सुधा सिंधु—स्वामी आनन्द स्वरूप

—×—